जैनहितैषी.

अर्थात्

(जैनमित्र वा जैनभास्कर)

मासिक पत्र.

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा संपादित।

चतुर्थ भाग	कार्तिक वीरनिर्वाण संवत २४३४।	अंक ३७ वां

नियमावली।

१। इस पत्रका वार्षिक मूल्य डाकखर्चसहित अग्रिम १।) और पीछेसे २) रु० है। छह महीनेतक जिनका मूल्य आजायगा वह अग्रिम समझा जायगा।

२। यह पत्र विना मगाये भी अनेक महाशयोंके पास भेजा जायगा। प्रथम अंक पहुंचनेपर यदि कोई महाशय कार्डद्वारा सूचना देंगे अथवा दूसरा अंक लौटा देंगे तो उनका नाम काट दिया जायगा। जो महाशय न तो नाम काटनेके लिये कार्ड भेजेंगे और न दूसरा अंक लौटावेंगे वे महाशय पक्के ग्राहक समझे जायंगे। और उनको ६ अंक भेजकर सातवां अंक **वी. पी.** द्वारा भेजा जायगा।

३। जो भाई साफ २ हिंदीके सिवाय उर्दू, अंगरेजी व [illegible] वगैरहमें चिट्ठी भेजेंगे उनकी तामील नहिं होगी।

पत्र व मूल्य भेजनेका पता—**पन्नालाल जैन,**

जौंनकरकी चाल पो. **कालबादेवी** (मुंबई.)

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः ।

जैनहितैषी ।

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

चतुर्थ-भाग. | कार्तिक वीर निर्वाण संवत् २४३४ । | अंक ३७ वां.

मंगलाचरणम् ।

यो विश्वंवेद्यवेद्यो जननजलनिधेर्भंगिनः पारदृश्वा
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयम् ।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं सर्वदोषद्विषन्तं
बुद्धं वा वर्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥ १ ॥

श्रीमद्भट्टाकलङ्कदेवः ।

वृंदावनविलासका एक नमूना ।

अथ जिनेन्द्रस्तुतिर्लिख्यते ।

(छंद शेरकी रीतिमें तथा और २ रागनीमें भी बनै है)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं दुखहरन तुमारा बाना है ।
मत मेरी बार अबार करो, मोहि देहु विमल कल्याना है ॥ टेक ॥
त्रैकालिक वस्तु प्रतच्छ लखो तुमसों कछु बात न छाना है ।
उर आरत मेरे जो वरतै निहचै सब सो तुम जाना है ॥

अवलोकि विथा मत मौन गहो नहिं मेरा कहीं ठिकाना है ।
हो राजविलोचन सोचविमोचन मैं तुमसों हित ठाना है ॥ श्री० ॥ १ ॥

सब ग्रन्थनिमें निरग्रंथनिनें निरधार यही गणधार कही ।
जिननायक ही सब लायक हैं सुखदायक छायकदान मही ।
यह बात हमारे कान परी तब आन तुमारी सरन गही ।
क्यों मेरी बार विलंब करो जिननाथ कहो वह बात सही ॥ श्री० ॥२॥

काहूको भोग मनोग करो काहूको स्वर्गविमाना है ।
काहूको नागनरेशपति काहूको ऋद्धिनिधाना है ॥
अब मोपर क्यों न कृपा करते यह क्या अंधेरजमाना है ।
इनसाफ करो मत देर करो सुखवृंद भरो भगवाना है ॥ श्री० ॥ ३ ॥

खल कर्म मुझे हैरान किया तब तुमसों आन पुकारा है ।
तुम हो समरत्थ न न्याव करो तब बंदेका क्या चारा है ॥
खल घालक पालक बालकका नृपनीति यही जगसारा है ।
तुम नीतनिपुन त्रैलोकपती तुमही लगि दौर हमारा है ॥ श्री ० ॥ ४ ॥

जबसे तुमसों पहिचान भई तबसे तुमहीको माना है ।
तुमरे ही शासनका स्वामी । हमको शरना सरधाना है ॥
जिनको तुमरी शरनागत है तिनसों जमराज डिराना है ।
यह सुजस तुम्हारे साँचेका जस गांवत वेद पुराना है ॥ श्री० ॥ ५ ॥

जिसने तुमसे दिलदर्द कहा, तिसका तुमने दुख हाना है ।
अघ छोटामोटा नाशि तुरित सुख दिया तिन्हें मनमाना है ॥
पावकसों शीतल नीर किया औ चीर बढा असमाना है ।
भोजन था जिसके पास नहीं सो किया कुबेर समाना है ॥ श्री० ॥६॥

चिन्तामन पारस कल्पतरू सुखदायक ये परधाना है।
तुअदासनके सब दास येही हमरे मनमें ठहराना है ॥
तुअभक्तनको सुरइंद्पदी फिर चक्रपतीपद पाना है।
क्या बात कहों विस्तार बडी वे पावें मुक्ति ठिकाना है॥ श्री० ॥ ७॥

गति चार चुरासीलाखविषै चिन्मूरत मेरा भटका है।
हो दीनबन्धु करुणानिधान, अबलों न मिटा वह खटका है॥
जब जोग मिला शिवसाधनका, तब विघन कर्मने हटका है।
तुम विघन हमारा दूर करो, सुख देहु निराकुल घटका है॥ श्री० ॥८॥

गजग्राहग्रसित उद्धार लिया, ज्यों अंजन तस्कर तारा है।
ज्यों सागर गोपदरूप किया मैनाका संकट टारा है॥
ज्यों सूलीतैं सिंहासन औ बेडीको काट विडारा है।
त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु मोंको आस तुमारा है॥ श्री ० ॥ ९॥

ज्यों फाटक टेकत पाँय खुला औ सांप सुमन करि डारा है।
ज्यों खड्ग कुसुमका माल किया बालकका जहर उतारा है॥
ज्यों सेठ विपत चकचूरपूर घरलछमीसुखविस्तारा है।
त्यों मेरा संकट दूर करो प्रभु मोंको आस तुमारा है। श्री० ॥ १०॥

जद्दपि तुमको रागादि नहीं यह सत्य सर्वथा जाना है।
चिनमूरत आप अनंतगुनी नित शुद्धदशा शिवथाना है॥
तद्दपि भक्तनकी भीति हरो सुख देत तिन्हे जु सुहाना है।
यह शक्ति अचिंत तुम्हारीका क्या पावे पार सियाना है॥ श्री० ॥११॥
दुखखंडन श्रीसुखमंडनका तुमरा प्रन पर्म प्रमाना है।
वरदान दया जस कीरतका तिहुं लोक धुजा फहराना है॥

कमलाधरजी कमलाकरजी करिये कमल अमलाना है ।
अब मेरि विथा अवलोक रमापति रंच न बार लगाना है ॥ श्री० ॥१२॥
हो दीनानाथ अनाथहितू, जनदीन अनाथ पुकारी है ।
उदयागत कर्मविपाक हलाहल मोह विथा विस्तारी है ॥
ज्यों आप और भविजीवनकी ततकाल विथा निरवारी है ।
त्यों वृंदावन यह अर्ज करै प्रभु आज हमारी बारी है ॥ श्री० ॥१३॥

इति जिनेंद्रस्तुतिः समाप्ता ॥ १ ॥

हमारा पुनः प्रादुर्भाव ।

पाठक महाशय ! आपको स्मरण होगा कि यह पत्र आजसे ६ वर्ष पहिले दोबार बंद होकर तीसरीबार निकला था, और ३१ वे अंकसे ३६ अंकपर्यंत निकलकर फिर बंद हो गया था । परंतु हर्ष है कि आज यह पत्र अनेक प्रकारकी आशाओंको धारण करके नये उत्साह और नये साहसके साथ चौथा बार पुनः प्रकाशित होता है ।

महाशयो! जिस समय इसका तीसरीबार प्रादुर्भाव हुआ था । वह समय और था, और आजका समय और है, उस समय अखबारोंके पढनेके फायदोंको जाननेवाले बहुत थोडे थे । आज हमारे भाई अखबारोंके पढनेसे कुछ २ लाभ समझने लग गये हैं । उस समय हमने इस पत्रके ५०० ग्राहक बनानेके लिये बडा भारी प्रयत्न किया था । बलके इस पत्रके ग्राहकोंको धर्मपरीक्षा, दौलतविलास, अकलंक स्तोत्र, उपदेशसिद्धांतरत्नमाला ये **चाररत्न** विना मूल्य लुटाये थे तो भी इसके कुल ८० ग्राहक हुये थे और आज वह समय है कि विना उपहार दिये ही २ रु. मूल्यवाले **जैनमित्र** पत्रके १००० ग्राहक हैं । उस समय हमारी अवस्था भी ऐसी नहीं थी कि इस हितैषीपत्रके उत्तमोत्तम हितोपदेश प्रचार करनेके लिये प्रतिमास ५०।६० रुपयोंका खर्च उठा सकें । इस समय हमारे **जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय**से इसका मासिक खर्च भलेप्रकार चल सक्ता है । उस समय हमारे इस कार्यके सहायक कोई नहीं थे इस समय कई लेखक हितैषी ऐसे सहायक हैं कि हमारे अभावमें भी यह पत्र निरंतर जैनसमाजकी सेवा करता रहैगा, इसीकारण

ही आज हम नये उत्साह और नये साहससे इसके पुनः प्रकाशित करनेमें समर्थ हुये हैं। आशा है कि जैनधर्मके प्रभावसे और सुपाठक ग्राहक महाशयोंकी कृपासे यह पत्र उन्नति करता हुआ आपकी सेवा करने और हितसाधनेमें पश्चात्पद नहिं होगा।

अबकी बार इस पत्रमें सम्पादकीय टिप्पणी, संपादकीय लेख, मनोविनोदक चुटकुले, पंच, ग्रन्थसमालोचनके अतिरिक्त एक फारम अतिमनोहर हितोपदेशी नाटक अथवा उपन्यास भी प्रत्येक अंकमें रहैगा। वर्त्तमान वर्षमें आरानिवासी श्रीयुत बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीका लिखा **मनोरमा उपन्यास**के १६ पृष्ट प्रति-अंकके साथ देना निश्चय किया है। इसके पश्चात् कविवर भाई नाथूरामजी प्रेमीकृत **ज्ञानसूर्योदय नाटक** लगाया जावैगा।

इस पत्रके तृतीयबार प्रकाशित होनेके समय धर्मपरीक्षादिग्रंथ विनामूल्य उपहारमें देनेका साहस किया था। परंतु अबकी बार हम अपने समस्त ग्राहकोंको जिनका मूल्य मंगसर महीनेके भीतर २ आ जायगा उनको कवित्तवंध प्रवचनसार, तीसचौवीसीपाठ, वर्त्तमानचौवीसीपाठ आदि ग्रंथोंके कर्त्ता काशी निवासी स्वर्गीय कविवर वृंदावनजीकृत **वृंदावनविलास** नामका एक अत्युपयोगी ग्रंथ जिसमें संकटहरण, बृहत्संकटहरण, छंदशतक, पदसंग्रह आदि समस्त कविताओंका संग्रह है **विनामूल्य भेटमें** भेजा जायगा। मूल्य पत्रका डांक व्ययसहित वही १।) रु० ही रहा।

सम्पादकीय टिप्पणियां।

जैनसिद्धान्त पाठशाला मोरेना।

हर्ष है कि मोरेना राज्य ग्वालियरमें जैनधर्मके सूर्य विद्वद्वर्य श्रीयुत पंडित गोपालदासजी बरैया आनरेरी मजिष्ट्रेट मोरेनाके अभूतपूर्व साहससे हालहीमें श्रीदिगम्बरजैनसिद्धान्तपाठशाला नामकी एक पाठशाला स्थापित हुई है। जिसमें राजवार्त्तिकालंकार, गोमट्टसारजी, समयसारजी, आदि जैनधर्मके सिद्धांत ग्रंथोंका पाठ व गूढाशय बडी सरलतासे पढाये जाते हैं। वर्त्तमानमें भाई वंशीधर, लोकचंद (पं. बलदेवदासजीका पुत्र) भगीरथजी वर्णी आदि ८ विद्यार्थी हैं। अध्यापकीका कार्य उक्त पंडितजी ही चलाते हैं क्योंकि हमारी

समाजमें जैनधर्मके सिद्धान्तोंके गूढाशय प्रकाश करनेवाले एक मात्र आप ही हैं। आशा है कि यदि यह पाठशाला दिनोंदिन उन्नतिपर चढती गई तो शीघ्र ही जैनधर्मके जानकार विद्वानोंका प्रादुर्भाव होने लगेगा। जो विद्यार्थी जैनधर्मके गूढ सिद्धान्तों और महान् ग्रंथोंको पढ़ना चाहें वे शीघ्र ही अपने भोजनाच्छादनका प्रबंध करके मोरेना चले जावें और जिनको उच्चकक्षाके जैनन्याय व्याकरण साहित्यादि पढने हों वे **स्याद्वादपाठशाला काशीमें** चले जावें।

स्याद्वादपाठशाला काशी.

श्रीमती स्याद्वादपाठशाला काशी की ता. १२ जून सं. १९०५ से दिसंबर सन १९०६ तककी १॥ वर्षकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई है जिसके देखनेसे बडा आनंद होता है कि इस पाठशालाके संचालक महामंत्री सज्जनोत्तम बाबू देवकुमारजीके प्रबंधसे बहुत ही सन्तोषदायक फल प्राप्त हुआ है. सुना है कि वर्तमानवर्षमें भी प्रबंध बहुत अच्छा है. जिससे प्रसन्न होकर इस पाठशालाके सरक्षक दानवीर सेठ **माणिकचंदजी जे. पी.** महाशयने इस पाठशालाको चिरस्थायी करनेके लिये धर्मात्मा महाशयोंसे २५००० हजार रुपये एकत्र करनेका बीड़ा उठाया है। जिनमेंसे १५ महाशयोंसे १५००० हजार रुपये तो लिखवा लिये गये हैं। आशा है कि शेष दशहजारका कार्य भी शीघ्र ही पूर्ण कर देंगे।

सम्मेदशिखरजीका मामला.

खेद है कि आजकल जिसप्रकार हमारे यहांके सर्कारी कर्मचारियोंने स्वदेशी आन्दोलन करने वाले स्वदेशहितैषी बंगालियों पर अत्याचार करना प्रारंभ किया है। उसी प्रकार बंगालके अंगरेज प्रभुओंने जैनियोंके धर्ममंदिर सम्मेदशिखरजी तीर्थराजपर भी घोर पापाचारके कारण अंगरेजोंकी हवाखोरीके लिये बंगले बनवानेका संकल्प कर लिया है। जिसके कारण जैनसमाजमें बडी भारी हलचल मच गयी है। तीर्थराजकी रक्षाके लिये हजारों जगह चंदा हो रहा है. हजारों जगहोंसे बंगालके लाट साहबकी सेवामें जैनियोंकी अर्जियें गई. लाट साहबने शिखरजीपर चढ करके मोका देखकर साफ २ कह दिया कि " सब पहाड पूजनीय नहीं है, इस

कारण अंगरेजोंके बंगले बधनेमें जैनियोंकी कोई हानि नहीं है" जिससे जैनियोंके कलेजे बैठ गये—इस समय हमारे जैनी भाई किंकर्तव्यमूढ हो गये हैं। हमारी समझमें जैनी धनाढ्य महाशयोंको चाहिये कि अपना सर्वस्व खोकर भी तीर्थराजकी रक्षा करैं—यदि चाहैं तो हमारे यहांके धनाढ्य ऐसे २ मौजूद हैं कि—एक ही धनाढ्य पहाडको खरीद सक्ते हैं. सब मिलकर तो चाहे जो कर सक्ते हैं। धनाढ्य महाशयो चेतो ! ये धन आपके साथ नहीं जायगा, यदि तीर्थराजके लिये न्योछावर करदेंगे तो अवश्य ही साथ चला जायगा और दुनियामें आपका यश रह जायगा। इस समय चिलकानानिवासी सज्जनोत्तम लाला मंगलसेनजीका कहा हुआ एक दोहा (जो कि अलीगढकी आदिसंस्कृतपाठशालाके टूट नेपर बनाया था) याद आता है कि—

"**क्या करूं धन है नहीं, होता तौ किस काम** (का ?) ।
(क्योंकि) **जिनपै है उन सम कहा, नहिं होते परिणाम** ॥ १ ॥"

जैनबोर्डिंग स्कूलोंमें धर्मशिक्षा ।

आजकल हमारे अंगरेजी पढे बाबुलोगोंनें धर्म वा समाजकी उन्नति एकमात्र अंगरेजी विद्याकी उन्नतिसे ही समझली है जिससे वे लोग अपने जैनयङ्गमेन्सएसोसिएसन वा उसकी शाखा महासभामें प्राय:उसीके गीत गाया करते हैं. उनके सिवाय कोई २ विद्वान तथा अंगरेजोंकी चापलुसी करनेवाले धनाढ्य महाशय भी अंगरेजीकी उन्नतिसे ही सब उन्नति समझते हैं। इसीकारण ही यहांके दानवीर सेठजी साहब अंगरेजी पढनेवालोंके लिये जगहं २ जैनबोर्डिङ्गस्कूल खोलनेका यश लूट रहे हैं, अभिप्राय इनका शायद यह है कि सरकारी बोर्डिगोंमें रहकर निरी अंगरेजी पढनेवाले विद्यार्थी प्राय: धर्मसे कोरे व असदाचारी हो जाते हैं। सो जैनबोर्डिङ्गमें रहकर पढनेसे वे धर्मसे विमुख व भ्रष्टाचारी नहिं होंगे क्योंकि बोर्डिङ्गोंमें सुपरिन्टेन्डेन्ट व अध्यापकोंकेद्वारा अंगरेजी पढनेके साथ २ जैनधर्म व सदाचारोंकी शिक्षा भी दी जाया करती हैं। सो बहुत ठीक है. यदि जैनधर्म और सदाचारशिक्षाका जैसा चाहिये वैसा प्रबंध किया जाय तो यह उद्देश किसीप्रकार सिद्ध हो सक्ता है. परन्तु हमारी समझमें धर्मशिक्षा व सदाचारशिक्षाका यथेष्ट प्रबंध सायद कहीं भी नहीं होगा. क्योंकि बंबईका बोर्डिङ्ग सबसे पहिले स्थापन हुवा है सुरूसे आजतक हम उसे देखते आये

हैं इसके सुपरिन्टेन्डेन्ट अन्यमती व वेही पहिलेके पढे भ्रष्टाचारी बी. ए. आदि रहे हैं. भला इनके द्वारा सदाचारकी शिक्षा किसप्रकार हो सक्ती है. धार्मिक शिक्षाकी बात ही रहने दीजिये सालभरके ३६५ दिनोंमें सिर्फ २॥ दिन धर्मशिक्षा होती है. अब आपलोग ही विचारकर देखलें कि २॥ दिनमें जैनधर्मकी शिक्षा कहांतक हो सक्ती है ? इसीप्रकार सायद अहमदाबाद, कोल्हापुर, जबलपुर आदिकी बोर्डिङ्गोंमें होती होगी। इसकारण हम सेठजी साहबसे प्रार्थना करते हैं कि, यदि बोर्डिङ्ग स्थापन करनेका अभिप्राय साधना हो तो अधिक नहीं तो वर्षभरके २१९०० घंटोंमेंसे कमसेकम ३६५ घंटे तो अवश्य ही जैनधर्मकी शिक्षा दिलानेका प्रबंध कीजिये और सदाचारशिक्षाके लिये सुपरिन्टेन्डेन्ट भी सदाचारी और धर्मात्माको नियत करना चाहिये या और कोई प्रबंधकरना चाहिये जिससे मूल उद्देश सिद्ध हो। नहीं तो हमारी समझमें बोर्डिङ्गका होना न होना एकही है।

समाचारपत्रोंपर आक्षेप

जो भाई समाचारपत्रोंके उद्देश्योंको नहिं समझते ऐसे भोले भाई प्रायः कहा करते हैं कि आजकल जैनगजट जैनमित्र वगैरह पत्रोंमें दूसरोंकी निंदाके सिवाय कुछ भी नहिं छपता ऐसे पत्रोंसे सिवाय हानिके कुछ लाभ नहिं होता. उनको चाहिये यह समझना चाहिये कि समाचार पत्रोंका मुख्य उद्देश्य क्या है ? यदि समाचार पत्र बुरे कार्योंकी निंदा करके उसके दोष न दिखावे. और उत्तम कार्योंकी प्रशंसा करके उनके गुण न दिखावे तो बुरे काम करनेवाले बुरे कामोंको कैसे छोडेंगे और उत्तम कार्योंको कैसे ग्रहण करेंगे ? समाचारपत्रोंका मुख्य प्रयोजन तो यही है कि भलेकी प्रशंसा और बुरोंकी निंदा जिसको तीव्रसमालोचना कहते हैं करैं। सोई वर्तमानमें जितने अखबार हैं सब इसीप्रकार निंदा प्रशंसा करते हैं. और तो क्या सरकारकी तरफसे कोई अन्याय कार्य हो जाता है तो सरकारकी भी निंदा करते हैं। हमारे यहांके जितने पुरान हैं उनका भी यही उद्देश्य है. पद्मपुराणमें रावणादिकी निंदा और रामचंद्रादिकी प्रशंसा है। श्रावकाचारोंमें पापकार्योंकी निंदा पुण्यकार्योंकी प्रशंसा की जाती है. यदि ऐसा नहिं किया जाय तो सांसारिक वा पारमार्थिक कोई भी कार्य नहि चल सक्ता है। हां इतना ध्यान अवश्य रहना चाहिये कि वह निंदा वा प्रशंसा झूठी वा प्रमादपूर्वक किसीको बदनाम

करनेके ही निमित्त न हो। और जो कोई ऐसे प्रमादपूर्वक झूंठी निंदा करता है उसको उसका फल भी मिलता है।

महासभाका अधिवेशन।

कुछ दिन हुये सहयोगी **जैनगजट** महासभाका साप्ताहिक पत्र सज्जनोत्तम श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुखतार अदालत देवबंदकी संपादकीसे देवबंदसे ही संपादित होकर निकलता है सो बाबू साहबने महासभाके अधिवेशन करानेके लिये जयपुर दिल्ली आगरा आदिके जैनी भाइयोंको शीघ्र ही निमंत्रण भेजनेकी प्रार्थना कई लेखोंसे कियी है परन्तु अभीतक हमारे यहांके कहांके भी भाइयोंके कानपर जूं तक नहीं रेंगी हैं सो बडे खेद और लज्जाका स्थान है। हमारी समझमें **महासभाका अधिवेशन बंबईमें होना चाहिये** क्यों कि यहांके भाइयोंका और प्रान्तिकसभाके मुख्य मुख्य कार्याध्यक्षोंका कई वर्षोंसे उत्साह है कि महासभाका अधिवेसन बंबईमें हो, बलके पारसाल जब बंबईप्रान्तिक सभाके अधिवेसनकी बाबत कमेटियें होतीं थीं, उस समय यहांके मारवाडी (फतेपुरयां) भाइयोंने बडे जोरके साथ प्रस्ताव किया था कि "प्रान्तिकसभाका अधिवेसन गजपंथाजी न होकर बंबईमें ही किया जाय और साथ २ महासभाको भी निमंत्रण देकर उसका भी अधिवेसन यहींपर कराया जायगा तो जैनधर्मकी और महासभाकी बडी भारी प्रभावना होगी" परंतु इस प्रस्तावका विरोध जगत्प्रसिद्ध दानवीर सेठ माणिकचंदजीने किया था कि–"महासभाका बुलाना कुछ हंसी खेल नहीं है उसके लिये बडा भारी खर्च उठाना पडेगा इत्यादि उत्तर दिये थे। उसका प्रतिवाद यहांके मारवाडी भाइयोंके मुखिया सेठ सुखानंदजी वगैरहने किया था कि "खर्चकी यहां क्या कमी है सब भाई यथाशक्ति देंगे तो हजारों हो जायगे" तब सेठजी साहबकी नाकके बाल वा प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीयुत बाबू शीतलप्रसादजीने इसका विरोध किया कि— "अधिवेसनके दिन बहुत नजदीक आ गये बलके कितने ही जगहोंके निमंत्रण भी सायद महासभाके पास आ गये हैं सो अब यहांसे निमंत्रण जायगा तो महासभा मंजूर नहीं करेगी इत्यादि"। लाचार जब दानवीर सेठ और उनके प्राइवेट सेक्रेटरीकी इच्छा विरुद्ध देखी तो मुम्बईके भाइयोंने फिर इसका विरोध करना व्यर्थ समझा क्योंकि बंबईमें धर्मकार्योंके कर्ता हर्ता विधाता जो कुछ हैं

हमारे सेठजी साहब ही हैं। यहांके भाइयोंको इस बातसे बडा भारी खेद हुआ कि महासभाको कोई निमंत्रण नहिं आया था बलके इस कमेटीके अनुमान २०–२५ दिन पीछे बाबू माणेकचंदजी बी. ए. ने कलकत्ते जाकर जबरदस्ती महासभाका अधिवेसन कलकत्तेवालोंके सिरपर पटका था। अस्तु अब तो महासभाके अधिवेशनके दिन भी नजदीक नहीं है और सेठजी चाहेंगे तो दिसंबरकी जगह जनवरीमें भी अधिवेशन करना मंजूर कर सक्ते हैं। खर्चके लिये आप अकेले ही बहुत हैं तथापि सभाके अधिवेसनमें खर्चके लिये जरासी प्रार्थना कियी जायगी तो रुपयोंके ढेर हो जांयगे. अतः प्रान्तिकसभाकी प्रबंधकारिणी सभा और खास करके सेठजी साहबसे प्रार्थना है कि—**जिस प्रकार बनै महासभाका अधिवेशन अबकी बार बंबईमें कराया जाय।**

भंडारोंमें गलती सड़ती जिनवाणीमाताका जीर्णोद्धार

व

सरस्वती भण्डार।

(१)

पाठक महाशयो! आप भलेप्रकार जानते होंगे कि–कोई भी धर्म क्यों न हो उसकी उत्पत्ति वा प्रचारकी जड उस धर्मके अभिप्राय बतानेवाले ग्रन्थ हैं. उन ग्रंथोंको व उनके उद्देश्योंको नानाप्रकारसे सर्वसाधारणमें प्रचार करनेसे ही उस धर्मकी स्थिति, वृद्धि, व फलोदय हुआ है. जिस समय जैनधर्म अस्तप्राय हो गया था उस समय १०८ श्रीवर्द्धमानस्वामीने और उनके पश्चात् तीनकेवली पांच श्रुतकेवली भगवान्‌ने इस धर्मको सर्वत्र फैला दिया था तत्पश्चात् अंगधारी आचार्योंकी विरलता होनेसे धरसेन, गुणधर, कुंदकुंद स्वामी आदि आचार्योंने जैनधर्मको कायम रखनेके लिये नानाप्रकारके ग्रंथ रचना करके और अपने शिष्य प्रशिष्योंद्वारा उन ग्रंथोंका व ग्रंथोंके मन्तव्योंका सर्व साधारणमें उपदेशोंद्वारा प्रचार करके इस धर्मकी स्थिति वृद्धि कियी और उसका फल यह हुआ

कि–पूर्वकालमें जो वैदिकहिंसाका घोरप्रचार हो रहा था वह बंध हो गया। इसी प्रकार बुद्धदेव उनके अनुयायी अशोकादि राजाओंने बौद्धधर्मके प्रचारार्थ तिब्बत, ब्रह्मा, चीन, जापान वगैरह देशोंमें जगहं २ उपदेशक भेजकर बौद्धधर्मके शास्त्रोंको प्रचार करकें बौद्धधर्मका ऐसा प्रचार किया कि–आज भी पृथिवी भरके समस्त मनुष्योंमें सैंकडे पीछें ५५ मनुष्य बौद्धमतानुयायी हैं। इसीप्रकार सांख्य वेदान्त नैयायिक मतोंकें प्रचारक कपिल, शंकराचार्य गौतमादिकने भी अपने २ मतका प्रचार किया है। आप दूरकी जाने दीजिये वर्तमान समयके धर्मोंके प्रचारकी और दृष्टि देंगे तो यही प्रतीत होगा कि जिस २ धर्मका स्थापन प्रचार व फलोदय हुआ है वह उस २ धर्मके ग्रंथ और उपदेशोंके प्रचारसे ही हुआ है। देखिये नवीन मतोंमें अंगरेजोंके साथ २ एक ईसाई मत भी आया है जिसको हिन्दुस्थानका एक लडका भी खंडन करकें पादडी लोगोंको भगा सकता है. ऐसा पोच और निकृष्ट मजहब होनेपर भी उनके पादडियों और मिसनरियों-द्वारा लाखों बाइबलादि धर्मग्रंथोंके मुफत वितरण और जगहँ २ उपदेशोंके प्रचारसे हम भारतवासियोंमेंसे २५००००० लाख भ्रष्टाचारी ईसाई मतानुयायी हो गये। इसीप्रकार एक महात्मा दयानंद सरस्वतीजी हुये उन्होंने अपना दयानंदी मत फैलाया सो वह भी उनके बनाये सत्यार्थप्रकाशादिग्रंथोंके तथा इस मतके मन्तव्योंके उनके शिष्य प्रशिष्योंद्वारा प्रचार करनेसे ही स्थापन होकर वृद्धिको प्राप्त हो गया। इसीप्रकार केशवसेन बंगालीका चलाया हुआ ब्रह्मसमाज, वा प्रार्थनासमाज भी हिंदुस्थानियोंमें फैल गया है। सारांस यह है कि–जो जो धर्म स्थापन व प्रचार हुये वे एकमात्र उस २ धर्मके ग्रंथोंके प्रचारसे ही हुये हैं।

परन्तु

खेद और आश्चर्यका स्थान है कि हमारे जैनीभाई अपने अति पवित्र सर्व हितकारक सच्चे मोक्षमार्गके बतलानेवाले दयामय जैनधर्मकी उन्नति सर्व प्रकारसे उक्त समीचिन मार्गसे न चलकर उल्टे मार्गसे ही करना चाहते हैं। अर्थात् सबसे पहिला कार्य इस धर्मकी स्थितिको कायम रखनेवाले इस धर्मके बतानेवाले जैनग्रंथोंका जीर्णोद्धार और प्रचार करना है. क्योंकि हमारे आचार्योंने हमारेपर दया करकें साक्षात मोक्षमार्गकी साधनेवाली अपनी तपश्चर्याको गौण करके भी हमलोगोंके उपकारार्थ जो हजारों ग्रंथ बनाकर रख गये हैं उन समीचीन मार्गके बतानेवाले परमहितकारी हजारों ग्रंथोंको सैंकडों भंडा-

रोंमें सडा गलाकर मिट्टी कर रहे हैं. और कोई भाई उनमेंसे दो चार ग्रंथोंका जीर्णोद्धार करके प्रचार करता है तो उसके शत्रु बन जाते हैं।

भाइयो! क्या हमारे आचार्य महाशय जो हजारों ग्रंथ बना २ कर रख गये हैं सो क्या इस लिये रख गये हैं कि तुम उनको भंडारमें बंद करके गलाओ सडाओ और नष्ट करो? क्या यह आपकी महा कृतघ्नता वा महापापकार्य नहीं है? आप आज प्रायः २० वर्षसे सभायें करते हैं. पाठशालायें और बोर्डिंग स्थापन करते हैं. तथा कालेज स्थापन करना चाहते हैं. रथयात्रा प्रतिष्ठा आदिके बडे २ मेले करके लाखों रुपये पानीकी तरह बहा देते हैं. सो किस लिये बहाते हैं? पूछनेसे आप यही उत्तर देते हैं कि धर्मकी उन्नति वा प्रभावनाकेलिये परन्तु जिनवाणी माताको सडा गलाकर नष्ट कर देने और उसकी तरफ एक नजर भी नहीं देखकर सिर्फ उक्त कार्योंमें तन मन धन खर्च करनेसे ही क्या उन्नति हो जायगी? कदापि नहीं, क्योंकि सबकी जड सब कार्योंके अभिप्राय बताकर सबसे प्रेम करानेवाली तो एकमात्र जिनवाणी माता है. उसका जीर्णोद्धार प्रचार किये विना सभा पाठशालादिके कार्योंमें आपका गाढानुराग हो ही नहीं सकता। यदि होता तो क्या १२ वर्ष खटपट करते २ महाविद्यालयमें आजतक सिर्फ ५० हजार रुपये ही होते? और विद्यालयकी यह दुर्दशा होती?

भाइयो! शोचो विचारो कि हमारे सभा पाठशालादि कार्योंकी उन्नति क्यों नहीं होती? हम जो फल इनसे चाहते हैं, वह क्यों नहीं होता? हम सर्वत्र एकताका विस्तार करना चाहते हैं सो उसकी जगह दिनोंदिन विरोध क्यों फैलता जाता है? यदि एकान्तमें बैठकर या सभा सोसाइटियोंमें बैठकर सम्यक् प्रकारसे विचार करोगे तो आपको यही प्रतीत होगा कि एक मात्र पतितोद्धारिणी सर्वहितकारिणी जिनवाणी माताका भंडारोंमें गला सडाकर महा अविनय करना अर्थात उसका जीर्णोद्धार न करके उसका प्रचार न करना ही कारण है। जब आपके विचार करनेसे हमारी यह प्रार्थना सत्य प्रतीत हो और आपको भलेप्रकार निश्चय हो जाय कि जाति और धर्मकी उन्नति करनेवाले जितने सभा पाठशालादि कार्य हैं उन सबसे पहिले जिसप्रकार बनै, एक मात्र जिनवाणी माताका जीर्णोद्धार करके प्रचार करना ही प्रधान कार्य है तो सबसे पहिले इसी कार्यको करना चाहिये। जब इस कार्यका सम्यकप्रबंध हो जाय तब अथवा इसके साथ २ पाठशालादि कार्य गौणतासे करना चाहिये। अन्यथा

इस धर्मकी उन्नति होना कष्टसाध्य है क्योंकि इसाई दयानंदी प्रार्थना समाजादिका प्रत्यक्ष उदाहरण देखते हैं तो हमको यही प्रतीत होता है कि जिसप्रकार बनै अपना सर्वस्व खो करके भी एकबार जिनवाणी माताका जीर्णोद्धार करके इसका व इसके परमहितकारक उपदेशोंका सर्वसाधारणमें प्रचार करेंगे तबही उन्नति होगी।

अपूर्ण.

मनोविनोद।

(१)

आगरेमें दो बाबुओंका वार्त्तालाप।

एक बाबू—कहिये बाबू साहब आप तो वहां जाकर ऐसे मोहित हो गये कि ईदके चांदसे भी बढगये।

दूसरा बाबू—क्या करें बाबू साहब वहांपर ऐसा मजा है कि–कुछ कहनेमें ही नहिं आ सक्ता।

पहिला बाबू—मजा है सो तो हम कई जनोंके मुखसे सुन चुके हैं परन्तु यह तो बताइये कि आपने वहां जाकर काम क्या क्या किये जिनसे आपका नाम तमाम दुनियामें हो गया।

दुसरा बाबू—भाई साहब काम भी मैनें वह किया है कि जो किसीसे भी नहिं हो सक्ता। अर्थात् मेरा काम वहांके बहुशक्तिधारक कार्यकर्ताओंमें फूट डालकर अंगरेजी बाबुओंके विरुद्धाचरण करनेवाली सभापाठशालादिको जड मूलसे उखाड डालनेका था–सो मैने वहां जाते ही सबकी जड वहांके मुखिया सेठको ऐसा छकाया है कि वे मेरे चरणोंके दास हो गये और कार्यकर्त्ताओंमें फूट डालकर परस्पर विरुद्ध बना दिये, जिससे सभा पाठशाला वगेरह सब जहांके तहां ठिकाने लग गये–अब जो कुछ है सो सिर्फ नामही नाम हैं काम कुछ भी नहीं हैं।

पहिला बाबु—क्यों बाबू साहब सेठजी तो बडे बुद्धिमान हैं वे आपके वशीभूत होकर सभापाठशालादि धर्मकार्योंसे कैसे विमुख हो गये। क्या आपने उन पर कोई जादू कर दिया है?

दुसरा बाबु—वाह अभीतक आप मुझे जानते नहीं कि मैं कैसी आफतका पूतलाहूं ? प्रथम तौ मेरी जबान ही ऐसी है कि वह जादूसे भी अधिक काम करती है दूसरे मेरा मन और तन तो यंत्र मंत्र तंत्रोंका खजाना ही है। इसके सिवाय ऐसे बछियाके बाबाको वशमें करनेके लिये तो एक जुदा ही जादू है।

पहिला बाबु—वह क्या जादू है सो कृपा करके बता दें तो हम भी एक आध सेठियेको वश करनेकी कोशिश करें।

दुसरा बाबु—बतानेका तो नहीं है परन्तु आप हमारे दोस्त हैं इसलिये कह देता हूं कि वह जादू है– '**खुसामद करना**' अर्थात् सेठजीकी हॉमें हाँ मिलाना और उनका व उनके पायखाने साफ करनेवालोंका झूंठा खाना पीना तथा उनके यहांकी औरतोंकी आज्ञानुसार चलना। बस इन्हीं तीन बातोंके कारण मैंने सब कुछ कर लिया और करता रहूंगा। दुस्मन लोग मेरेपर बहुत कुढ़ते हैं परन्तु उनकी कुछ भी वश नहीं चलती।

पहिला बाबु—वाह ! धन्य है आपको और आपके मा बापको जिनके कुलमें तुमसरीसे सत्यानाशी सपूत पैदा हुये।

---

(२)

एक वैद्यराज और ब्रह्मचारी बाबूका वार्त्तालाप।

बाबूसाहब—वैद्यराजजी आजकल शीतकालके दिन हैं हमको शास्त्रका पठन पाठन व ध्यान बहुत करना पड़ता है सो मगज खाली होगया इसलिये कोई ऐसा पाक बनादो जिससे मगजमें ताकत और शरीरमें कुव्वत आ जावे।

वैद्यराज—बाबूसाहब ऐसा कोई पाक नहिं बन सक्ता जो दोनों गुण करै क्योंकि जो पाक वा दवाई शरीरमें ताकत और कामोत्पत्ति करती हैं वे मगजको ताकत नहिं देती बल्के उल्टा बिगाडती हैं। और जो पाक वा दवाइयें मगजको ताकत देती हैं वे कामोत्पादक वा विशेष बलवर्धक नहिं होतीं। सो आप जैसी आज्ञा दें वैसा ही पाक बना दिया जावे।

बाबूसाहब—यदि ऐसा है तो हमको पहिले ऐसा ही पाक बना देवें जो कि शरीरमें शक्ति और कामोत्पत्ति करै।

वैद्यराज—(हंसकर) बहुत ठीक है परसों आप आकर ले जावें।

विविधसमाचार ।

विख्यात् संस्कृतज्ञ प्रोफेसर मेकडेनल्डका संस्कृत विद्याके विषयमें अधिक परिचय करनेके लिये भारतवर्षमें आकर काशी, उज्जैन, इंदोर, अमरावती नाशिक पूना वगैरेह मुख्य २ शहरोंमें भ्रमण करनेका विचार है ।

भारतवर्षकी शराबके व्यापारसे हमारी न्यायशीला सभ्य सरकारको सन १८७४ में १७५०००० पौंडकी प्राप्ति हुईथी और सन १९०६ में ६५००००० पौंडकी प्राप्ति हुई है. तिसपर भी दिनपर दिन मद्यपानकी उन्नति होती जाती है. इसप्रकार प्रजाको सराबी बनाना सरकारको उचित नहीं है ।

मिष्टर कीर, हार्डी–विलायतकी पार्लीमेंट सभाके वहांके मजूरोंकी तरफके एक मेम्बर हैं. वे आजकल भारतवर्षकी सैर करनेको आये हुये हैं. वे सरकारी कर्म चारियोंके अत्याचारको बडी तीक्षण दृष्टिसे देखरहे हैं. आप हमारे सम्मेदसिखरजी तीर्थपर भी पधारकर वहांके बंगले बनानेका मौका देख आये हैं. देखैं विलायतमें जाकर आप क्या आन्दोलन करते हैं ।

तिब्बतमें तिब्बती भाषामें अनुवाद किये हुये २५ बौद्धोंके कानूनी ग्रंथ हैं. इनपरसे गौतमकी प्राचीन न्यायपद्धति कैसी थी और आजकालकी नवीन न्यायपद्धति कैसी हैं सो मालूम हो जायगी ।

लोकल समाचार ।

पाठक महाशय सुन करके आपको परमदुःख होगा कि एक महाशयके पदार्पणसे मुम्बईकी लोकलसभा तो कभीकी टूट गई थी और प्रान्तिक सभाका दफतर टूटा नहीं है किन्तु जिसको सभा कहते हैं अर्थात् मुख्य २ सभासदों व कार्याध्यक्षोंकी एकताका भी (उसी दिनसे जिस दिन कि उक्त महाशयके चरण सरोज बंबईमें पधारे थे) नाश हो गया था । यद्यपि उसके पीछे प्रान्तिकसभाका एक अधिवेशन भी गजपंथाजीमें हो गया था । परन्तु वह कलकत्तेकी महासभाके अधिवेशनकी समान ही एक बालख्याल मात्र था । उस समय मुख्य मुख्य कार्याध्यक्षोंकी नष्ट हुई एकताके पुनर्जीवनका उपाय भी किया गया था परन्तु उक्त महात्माके प्रभाव व सभापति साहबकी बंभोली समझके कारण कुछ भी नहिं हुआ । सारांश प्रान्तिकसभा कभीकी टूट गई, उसका दफतर मात्र है

उसका चलाया हुआ विद्यालय वा परीक्षालय उसका नाम शेष रक्खे हुये हैं. हां उस सभाके महोपदेशक जैनमित्रने अपनी उन्नति बेशक की है और भविष्यतमें भी करैगा. परन्तु खेद है कि अबके दशलक्षण महापर्वमें वह अनेकता प्लेगकी तरहं यहांके मुखिया पंचोंमें भी फैलगई। जिससे उन्होंनें आसोज बदि ३ के दिन शुभ मुहूर्तमें बंबईप्रान्तिकसभा और जैनमित्रका दफतर जो कि मुम्बईके तेरहपंथी मंदरजीमें था उठाकर बडे विनयके साथ फेंक दिया। तीन गाडी असबाब भरकर दानवीर सेठजीके हीराबाग धर्मशालामें सेठजीकी शरणमें भेज दिया क्योंकि सभाके संरक्षक सभापति ही होते हैं परन्तु खेद है कि सेठजीने सभाको स्थान रहते हुये भी महीने बीस दिनके लिये भी स्थानदान नहिं दिया. विशेष प्रार्थना करनेपर बोले कि " जिस स्त्रीको सासरेवाले कलंक लगाकर निकाल देते हैं उसको पिताके घर भी स्थान नहिं मिल सक्ता " लाचार दफतरकी मिट्टी पलीद हो रही है. भाडेका मकान भी अभीतक नहीं मिला है।

हर्षका स्थान है कि इस अनेकतामें वर्तमानमें दो छोटी २ जैनपाठशालायें अर्थात् एक तेरहपंथी मंदिरजीमें जो पहिले टूट गई थी और एक वीसपंथी मंदिरजीमें नयी स्थापन हो गई है जिनमें छोटे २ लडके बालबोधकक्षाकी पुस्तकें पढ रहे हैं किन्तु निरंतर निभजाना कष्टसाध्य दीखता है।

दक्षिण प्रान्तमें बौद्धमती विद्वानोंके गर्वको खर्वकरकैं बौद्धधर्मकी जगहं जैनधर्मको स्थापन करके जैनधर्मकी उन्नति व महा प्रभावना करनेवाले राजवार्त्तिकादिके कर्ता परमपूजनीय प्राचीन आचार्यवर्य श्रीभट्टाकलंदेवके प्रतिष्ठापाठमें " तोतेकी बींट और गोबरसे आरती करना लिखा है " इत्यादि दूषण लगाकर भट्टाकलंकदेवसरीखे प्राचीन आचार्यों और आधुनिक श्रीयुत पंडित नरसिंहदासजी सरीखे जैनधर्मी विद्वानोंका अपमान व अविनय करकें जिन्होंनें अपनी विद्वत्ताके गर्वसे १९५९ में महासभाके अधिवेशनपर मथुरामें शास्त्रार्थ द्वारा सर्वसाधारण जैनी भाइयोंपर अपनी विद्वत्ता प्रगट करके प्रभावना करी थी वे ही **सेठ पंडित मेवारामजी** साहब आजकल बंबई नगरमें पधारे हैं। हाल तो वे बम्बई शहर देखने व अपने महल सजानेके पदार्थ क्रय करने वगेरहमें ही लगे हुये हैं वक्तसिर मंदिरजीमें पधारनेको भी सावाकश नहिं मिलता है परंतु सुना गया है कि आप कई सभायें करकें आर्यसमाजादिके विद्वानोंसे शास्त्रार्थ करके बंबईमें भी जैनधर्मप्रभावनाकी धूजा फहरावैंगे। २७-१०-०७।

ॐ

मनोरमा।

आगरानिवासी श्रीयुत बाबू जैनेन्द्रकिशोरद्वारा लिखित।

पहिला परिच्छेद।

दिनभरका थका हुआ सूर्य्य जलदी २ अपनी राह तै कर रहा है और उसका प्रकाश धीरे २ कम होता जाता है। चिड़ियें अपने २ बसेरेपर पहुंचनेकी आशामें पंख फटफटाती हुई उड़ी जा रही हैं। किसान अपने २ बैल हांकते हुए अपने घरकी ओर चले जाते हैं। इसी समय बैजयन्ती नगरीसे उज्जैन जानेवाली सड़कपर एक रथ बड़े सजधजसे जा रहा है। इसमें दो सुन्दर नागौरी बैल जुते हुए हैं। बैलोंके सींग सोनेसे मढ़े हुए हैं, जिनपर जड़ाऊ काम अपनी विचित्र छटा दिखा रहे हैं। बैलोंपर जरदोजीकी झूलें पड़ी हुई हैं और सोने चांदीके गहने उनकी सुन्दरताको चौगुनी बढ़ा रहे हैं। रथपर भी क़ीमती कमख़ाबके पर्दे पड़े हुए हैं। सारथी बड़े आन बानसे बैठा हुआ रथ हांक रहा है। उसकी अवस्था चालीस वर्षके लगभग जान पड़ती है। मुखसे शान्ति तथा करुणा झलक रही है। बदनपर कीमती कपड़े पड़े हुए हैं। रथकी सजावट आदिपर ध्यान देनेसे यही जान पड़ता है कि यह सवारी अवश्य किसी सेठ साहूकारकी है।

सारथी वेगतासे रथको हाँके जाता है। बड़े आश्चर्य्यकी बात हैं कि किसी सेठ साहूकारकी जनानी सवारी जा रही है किन्तु संगमें दाई लौंडी एक भी नहीं है। रथके भीतरसे कलेजेको पानी करनेवाली रोनेकी आवाज आ रही है जिसे सुनकर पत्थरका भी हृदय मोम होता है!

यह रथमें कौन सवार है जो रोरोकर अपने कलेजेके टुकड़ेको आंखोंकी राहसे आंसूके संग बहा रही है? इसके रोनेका क्या कारण है? क्या यह मेहरसे पीहरको जा रही है जो इसप्रकार प्रलाप कर रही है? नहीं २! यदि ऐसा होता तो इसके साथ साथ कुछ अटला खटला जरूर होता परन्तु यह तो अकेली है! तो क्या सारथी इसे कहीं कपटसे लेकर भागा जाता है? यह भी संभव नहीं है क्योंकि इस विचारी अनाथिनीके रोनेपर सारथीका भी कलेजा फटा जाता है। इसको भी रोते २ हिचकी बंध गई है और आंखें लाल हो गई हैं। उसके मुखसे करुणारस टपक रहा है। भगवान् जाने क्या बात है! यह पेचीला मामला कुछ भी समझमें नहीं आता है।

वैजयन्ती नगरीसे कोई एक मंजिलकी दूरीपर एक भयानक वन है। बड़े २ वृक्ष कटहर आम महुआ पाकर पीपर ऊमर कठूमर और शीशम आदिके इतने सघन हैं कि दिन होनेपर भी यहां रात्रिके ऐसी अंधियारी छाई है और हाथसे हाथ नहीं सूझ पड़ता है। यह वन सिंह हाथी सांप विच्छू रीछ आदिका स्थान है। पहाड़ियोंका सिलसिला कोसोंतक चला गया है जिनपर झरते हुए झरने करुणामय रुदनकी छटा दिखा रहे हैं अथवा यों

कहिये कि किसीकी वेदनापर कलेजा फाड़ २ कर डाढ़ें मारकर रो रहे हैं। पर्वतोंकी गुफाएं ऐसी भयानक हैं कि यदि उन्हें पातालपुरी कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा।

सूर्य्य महाराजको अनाथिनीका रुदन असह्य हो गया अतः उन्होंने अपना मुंह रातकी काली चादरसे छिपा लिया। कमलके प्रेमी भ्रमर अनाथिनीके ऐसा कमल रथके भीतर तड़फ २ कर जान देनेकी चेष्टा करने लगे। चकवा चकवी अपने परस्पर विरहमें विना जलकी मछलीसे तड़फ रहे हैं। क्रूर तारे अपनी खिड़कियोंसे झोंक ताक कर रहे हैं और अपनी क्रूरतापर खिले जा रहे हैं। वनमें झिल्लियोंकी झनकारसे कान परे आवाज नहीं आती है।

इसी समय सारथीने रथको वीच वनमें खड़ा कर दिया। अनाथिनी अपने इष्टदेव जिनेन्द्रभगवानको पुकार २ कर रो रही है, सारथीका हृदय दया तथा करुणासे फटा जाता है। सत्पुरुषोंका हृदय दूसरोंके दुःखपर अवश्य ही द्रवीभूत होता है। वे दूसरोंकी आत्माको अपनी आत्माके समान जानते हैं अतः वे दूसरोंके दुःखसे दुःखित होते हैं।

सारथीने रथका पर्दा उठा दिया उसमेंसे एक चाँदका टुकड़ा (सुन्दर स्त्री) बाहर निकला। इस सुन्दर स्त्रीकी सुन्दर कान्तिसे अन्धेरा बीहड़ वन भी प्रकाशमान् हो गया। सुन्दर रमणियोंकी आदर्श (नमूना) अनाथिनी रथके बाहर निकली। इसके चेहरेसे शोक विपत्ति और उदासी बरस रही थी। इतनेपर भी इसकी सुन्दरतामें बट्टा नहीं लगा था। गोरे और गुलाबी गालोंपर आंसूके बूंद गुलाबपर ओसकणिकाओंकी शोभा दिखा रहे थे। अना-

थिनी एक सर्वाङ्गसुन्दर रमणीरत्न है । इसके किस २ अंगकी बड़ाई गाई जावे ? इसके वस्त्राभूषणोंपर ध्यान देनेसे यही ज्ञात होता है कि यह किसी बड़े घरानेकी स्त्री है । चेहरेसे सदाचार तथा धर्म्म स्नेहकी झलक दिखाई पड़ती है । अनाथिनी जब रथसे नीचे उतरी तब सारथी पछाड़ खाकर उसके चरणोंपर गिर गया ।

अनाथिनी आजकलके ऐसी अनपढ़ स्त्री नहीं थी । वह धर्म्म-प्रतिपालिका थी, अतः ऐसे बुरे समयमें भी उसने साहसको हाथसे नहीं जाने दिया । सारथीकी दशा तथा स्वामिभक्ति देख-कर उसे रोमांच हो आया । तुरंत ही उसने अपनी आंखोंके आं-सुओंको अपने आँचलसे पोंछा और सारथीको उठाकर कहा०—

" प्यारे सेवक ! तुम इतने अधीर क्यों हो रहे हो ! उठो अ-पने घरका रास्ता लो और मुझे भगवान्के शरणमें छोड़ो ! "

सारथी (हाथ जोड़कर रोते हुए)०—" स्वामिनी ! ऐसे बीहड़ वनमें आपको अकेली छोड़ते हुए मेरा हृदय फटा जाता है । हा-य २ मैं क्या करूं ! हे भगवन् ! हे दीनानाथ ! यह कोमलाङ्गी फूलकी सेजोंपर सोनेवाली इस कंटकमय भयानक वनमें कैसे रहेगी ? (मनमें) हाय ! सेवकाई भी क्या बुरी बला है ? इसमें आदमीको घृणितसे घृणित काम करने पड़ते हैं ! क्या मैं इतने दिनोंतक यही पाप करनेके लिये जीता रहा हूं ? हे भगवन् ! मैं निर्दोष और लाचार हूं ! जो कुछ अनर्थ कर रहा हूं, वह अपनी स्वामिनी-की आज्ञासे करता हूं ! हे दीनानाथ ! मेरे अपराधोंको क्षमा करियेगा !"

अनाथिनी—"नररत्न ! तुम्हारी बातोंसे मुझे आश्चर्य्य होता

है ! क्या तुम नहीं जानते हो कि सबका रक्षक आयुकर्म ही है ! जो आयुकर्म हमारा शेष है, तो वह हमारी भी रक्षा करेगा ! तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो ! और फिर इसमें तुम्हारा अथवा किसीका भी दोष नहीं हैं, यह सब हमारे पूर्वोपार्जित पापोंका प्रायश्चित्त है। अब तो अपने कर्मोंका फल भोगना ही है और जो कुछ भागमें है सो सहन करते ही बनेगा। तुम व्यर्थ रो रो कर मुझे भी व्याकुल कर रहे हो !"

सारथी—"स्वामिनी ! मै निर्दोष हूं ! सर्वथा निर्दोष हूं ! इ–स–मे–मेरा कुछ दो–ष–………" इसके बाद सारथीका गला भर आया रोते २ हिचकी लग गयी और वह फिर अनाथिनीके चरणोंपर गिर गया। अनाथिनीने उसे उठाकर फिर भी ढाढस दिया। वह पुनः उठा और हाथ जोड़कर कहने लगा—

"स्वामिनी ! मेरे अपराधोंको क्षमा करियेगा ! मैं विवश हूं ! पराधीन सपने सुख नाहीं—मैं सेवक हूं-जिसका नमक खाता हूं उसकी आज्ञा पालन करना ही अपना कर्तव्य जानता हूं, सेठ महीपालकी स्त्रीकी यही आज्ञा है। मैं क्या करूं ? तुम्हारे कहनेसे मैंने तुम्हें मेहर भी पहुंचाया, पर विपत्ति आनेपर कोई भी किसीको नहीं पूछता है। बुरे समयमें बाप भाई कोई भी काम नहीं आते हैं यहांतक कि अंधेरेमें अपने शरीरकी छाया भी दूर हो जाती है। हाय २ ! तुम्हारे मातापिताने भी तुम्हे शरण नहीं दिया ! हाय ! मैं लाचार हूं ! अच्छा जाता हूं ! प्रणाम—"

इतना कहकर सारथीने रथ हांक दिया। विचारेकी बुरी दशा है। अनाथिनीको छोड़कर जानेकी इच्छा ही नहीं होती है। ज-

हांतक नजर पहुँचती है, वह मुड़ २ कर अनाथिनीको देखता जाता है और आंखोंसे अविरल आंसू बहाता जाता है। थोड़ी दूर जाते जाते उसके हृदयमें अनाथिनीके निष्कपट प्रेमकी ऐसी तरंग उठी कि उसे वह संभाल नहीं सका और अचानक उसने रथको फेर ही तो दिया। बातकी बातमें वह पुनः अनाथिनीके पास आ पहुंचा। अनाथिनीने पूछा "ऐ दयालु सारथी! तू पुनः लौट क्यों आया?"

सारथी—"स्वामिनी! आपको अकेली छोड़नेका साहस नहीं होता है। मैंने बहुत कुछ जोर किया परन्तु मेरा जी नहीं मानता है। अब मैं भी लौटकर नहीं जाऊंगा और आपके साथ रहूंगा।"

अनाथिनी—"नररत्न! तू सेवकोंमें धन्य है तेरी बड़ाई मैं किस मुहसे गाऊं? किन्तु तेरा मेरे साथ रहना ठीक नहीं है। दासवृत्ति ऐसी ही होती है। तू जाकर अपने बालबच्चोंकी सुधि ले। मुझ अभागिनीके पीछे कहां २ धूल उड़ाता फिरेगा? अपने परिवारका तूही पोषक है। तेरे बालबच्चे भूखों मर जायंगे।"

सारथी—(हाथ जोड़कर) "स्वामिनी! मैं सब समझता हूं किन्तु अपने जीसे लाचार हूं। दयाकर मुझे साथ रहने दीजिये।"

अनाथिनी—"सेवकरत्न! मै बिनती करती हूं कि तू दया कर अपने घरको लोट जा, नहीं तो मैं और भी दुखी होऊंगी"

सारथी— (दीर्घनिश्वास डालकर) "खैर! अगर आपकी यही मर्जी है तो मै लाचार हूं—अच्छा जाता हूं। प्रणाम।"

सारथी छाती पीटता और आंसू बहाता हुआ अनाथिनीसे विदा हुआ और थोड़ी देरमें आंखोंसे औझल हो गया।

सारथीके जानेपर अनाथिनीने अपने व्याकुल हृदयको बहुत कुछ ढाढस दिया "जो भागमें है उसे अवश्य भोगना है, फिर अधैर्य्य होनेसे कुछ हाथ नहीं आनेको है। जो कुछ पूर्वोपार्जित पाप है उनका प्रायश्चित्त अवश्य होगा फिर रोने धोनेसे क्या लाभ है? जो कुछ विपत्ति आ गई है उसे सन्तोष तथा धैर्य्यसे सहन करूं तथा भगवानका ध्यान करूं कि विपत्तिकी घड़ी शीघ्र कट-जाय आदि।"

अब इस भयानक वनमें विचारी अनाथिनी अकेली रह गयी इस समय इस विचारीका रक्षक यहां पर भगवान्के सिवा दूसरा कोई नहीं है। अनाथिनीने अपनेको लाख धैर्य्य दिया परन्तु अबला वास्तवमें अबला ही होती हैं। स्वभावसे ही उनका हृदय कोमल होता है। अपनी दशा और जनशून्य वनकी छटा देखकर उसका धैर्य हाथोंसे जाता रहा। सारा वदन थरथर कापने लगा। गुलाबके ऐसा कोमल मुखड़ा कुम्हला गया। आंखोंसे चौधारे आंसू बह रहे हैं। आंसू काहेको एक नदी है जो उमड़ी आती है। अपने पूर्वकर्मोंको स्मरण करती है और पछाड़ खाकर धरतीपर गिर जाती है। शरीरके गहने कपड़ोंपर दो २ अंगुल मिट्टी जम गयी है।

पाठक! यह वही कोमलाङ्गी रमणी है जिसकी सेवा टहलमे पचासों दासियां हाथ बाँधे खड़ी रहतीं थीं। हाय आज कोई धरतीसे उठाकर बैठानेवाला भी नहीं है। एक दिन वह था कि

यह फूलोंकी सेजपर सोती थी। आज पूर्वोपार्जित कर्म्मोंके प्रसादसे बिचारी कंटकमयी भूमिपर तड़पकर प्राण खो रही है। रोते २ बिचारीकी बुरी गत हो गयी है! वह कलेजा पीट २ कर कहती है—हायरे! ऐसे अशुभकर्म्मोंका उदय आया कि अपने पराये सभी छूट गये। पिताने भी विसार दिया और माताने भी मेरी सुधि नहीं ली। माता! हाय २! क्या तुमने अपने गर्भमें नौ महीने-तक मुझे इसी दिनकेलिये धरा था? इस अभागिनीपर तुम्हें तनिक भी दया नहीं आयी हाय! तुमने अपने कलेजेपर ऐसा पत्थर बैठा लिया! हे भगवन्! मैं बेसहारे हो गयी! स्त्रीको दोही ठिकाना होता है मेहर या पीहर। हे दुर्दैव कर्म्म! तूने मुझसे दोनों छोड़ा दिया। कहींका नहीं रक्खा। हे दीनानाथ! अब केवल आपहीका सहारा है। पिता माता भाई बहिन सभीने मुझे त्याग दिया। हे प्राणपति! आज मेरे गलेमें फांसी तुम्हारे नहीं रहनेसे लगी। अगर तुम होते तो कोई मुझे उंगलीसे भी नहीं बता सकता था। तुम्हारे वियोगहीने मुझपर विपत्तिका पहाड़ गिरा दिया। पीहरवालोंने देशसे निःकारण निकाल दिया और मेहरवालोंने भी शरण नहीं दिया! हाय २ मै बेसहारे हो गई! हे प्राणनाथ! दया-कर स्वप्नमें भी दर्शन दो कि. मेरे डूबते हुए हृदयको तिनकेका सहारा मिले"

अनाथिनीका विलापपूर्वक रुदन सुनकर वनके पेड़ पत्ते नदी नाले तथा जीवजन्तु सभी दुखी हो रहे हैं। सिंह चीते आदि दुष्ट जन्तु तक इसके रोनेपर आंसू बहा रहे हैं।

इस प्रकार रोते २ अनाथिनी थककर एक पेड़के नीचे बैठ

गयी और श्रीजिनेन्द्रभगवानकी स्तुति करने लगी०—"हे दीनानाथ भगवान्! अब इस अनाथिनीके नाथ आप ही हैं! आप अपने ही शरणमें इस दुखिया अभागिनीको रखिये इत्यादि"

इसी समय वनमें घोड़की टाप सुन पड़ी। अनाथिनी भौंचक होकर अकचकाकर इधर उधर देखने लगी। एक सजीला जवान सिरसे पैरतक हथियारोंसे लदा हुआ रथमें सवार आता हुआ दिखाई पड़ा। नये आये हुए जवानने दूरसे अनाथिनीको देखा और उसने अपने रथको छोड़कर वही पहुंचाया जहाँ वह विचारी बैठी हुई अपने भोगोंको रो रही थी।

अनाथिनी तो नव आगत पुरुषको देखकर भयसे थर २ कांपने लगी। आँखोंमें अंधेरी छा गयी। कलेजा धड़कनसे बाँसों उछलने लगा।

यह नवागत जवान राजगृही नगरीका युवराज है आज वनक्रीड़ाके लिये इस वनमें आ निकला है। यह बड़ा ही कुचेष्टित तथा कामीपुरुष है। राजगृहकी युवतियां इसके नाम पर कान पकड़तीं हैं और अपनेको इससे छिपाये रखती हैं क्योंकि इस पापी कुलांगारने कितनी स्त्रियोंका शील भंग कर डाला है उसकी गिनती ही नहीं। आज इस पापीकी दृष्टि विचारी अनाथिनीपर पड़ी है। देखिये इसका फल क्या होता है।

जवान अपने रथसे उतर पड़ा और बिचारी अनाथिनीपर वाघके ऐसा टूट पड़ा! अनाथिनी तो भयसे मूर्छित हो गयी। जवानने उसे उठाकर अपने रथमें लेटा दिया और आप भी सवार होकर अपनी नगरीकी ओर चल पड़ा।

दूसरा परिच्छेद ।

पश्चिमकी ओर मालवादेशमें एक उज्जैनी नगरी है। नगरीके चारोंओर मजबूत शहरपनाह है जिसमें बड़े बड़े बारह फाटक बने हुए हैं। फाटकोंकी मजबूतीपर भीमके भी दांत खट्टे होते हैं अर्थात् बन्द होनेपर बडे २ सूरमा भी घुसनेका साहस नहीं कर सकते हैं। हाटबाट गलीकूचा सभी रौनकपर है। नगर-निवासी धन सम्पत्ति तथा सुख चैनमें मस्त हो रहे हैं।

इसी नगरीमें एक **महीदत्त** नामक सेठ रहते हैं। नागरिक धनी जनोंमें इनकी ध्वजा ऊंची हो रही है। शुभकर्मोंके उदयसे इस समय सेठजीका बोलवाला हो रहा है। धन जन मान बड़ाई सुख तथा चैन सभी सेठहीजीके भाग्यमें है। विद्या बल बुद्धि धन कुल और जाति आदि कर्माधीन हैं अर्थात् आदमी पूर्वजन्ममें जैसी कमाई करता है उसीकी मजूरी इस जन्ममें पाता है। पूर्व-जन्मकी कमाईके धनी सेठको इस जन्ममें सभी कुछ प्राप्त है। आपकी जाति और कुल तो उत्तम है ही सुतरां आपका धर्म्म जैन होना तो सोना और सुगन्धकी कहावतको चरितार्थ कर रहा है। सेठानीका नाम **श्रीमती** है। यह आजकलकी स्त्रियोंके ऐसी क-र्कशा तथा अज्ञानी नहीं है वरन एक उच्चकुलकी धर्मपारायणा तथा पंडिता है। यदि इन्हें शीलकी आकर तथा धर्मदिवाकर कहें तो अनुचित नहीं होगा। हमारी पूर्वपरिचिता अनाथिनीका जन्म इन्हीं श्रीमती सेठानीके गर्भसे हुआ है। घरौआ असली नाम अनाथिनीका **मनोरमा** है।

पाठक! अब मैं अनाथिनीको मनोरमाके नामसे लिखा करूंगा।

जैसा बीज और भूमि होती है तैसी ही उपज भी होती है, महीदत्त तथा श्रीमती ऐसी धर्मधुरन्धरा और शीलवतीकी पुत्री कैसी होगी? इसका अनुभव हमारे पाठकवृन्द स्वयं सहज-हीमें कर सकते हैं।

आजकल स्त्रीशिक्षाके लाखों विरोधी नजर आते हैं। यदि कोई इस कुरीतिको दूर करनेका साहस भी करे, तो चारोंओरसे उसपर ऐसे २ वाक्प्रहार होने लगते हैं कि अन्तमें उसे हार मानकर बैठ जाना पड़ता है। स्त्रियोंका सबसे बड़ा कर्तव्य अपने सतीत्वधर्मकी रक्षा करना है किन्तु विना शिक्षाके इस धर्मका पालन टेढ़ी खीर है क्योंकि संसारमे छलबल कपट तथा क्रूरता इस-प्रकार फैली हुई है कि उसमें अनायास ही अशिक्षित स्त्रियां फंस जाती हैं और अपना सर्वस्व नाश करके उभय कुलको कलङ्कित करती हैं। ऐसी अवस्थामें उनके अपने पराये कोई भी उनका मुख देखना नहीं चाहते हैं निदान उन्हें अनाथा के ऐसा दुःख तथा क्लेशमें जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त पतिपारायणता क्षमा शीलता आदि गुण भी शिक्षाहीपर निर्भर हैं। जब शिक्षाद्वारा स्त्रियां अपने धर्म्मको जान जायेंगी तब उनसे कोई भी दुराचार नहीं हो सकता है अतः लोगोंका यह कहना कि 'स्त्रीशिक्षासे व्यभिचारकी वृद्धि होती है' सर्वथा निर्मूल है।

हमारे सेठ महीदत्तजी तथा उनकी सेठानी स्त्रीशिक्षाकी वि-रोधी नहीं थीं। अतः जब मनोरमा आठ वर्षकी हुई तब एक सु-योग्य गुरुके पास पढ़नेको बैठाई गई। गुरुने भी छही महीनेमें सारी विद्याको घोलकर मनोरमाको पिला दी।

पाठक ! आप आश्चर्य करेंगे कि छही महीनेमें मनोरमा सम्पूर्ण विद्यामें पारङ्गत कैसे हो गयी ?

बुद्धिमानोंके आगें कोई बात भी असाध्य तथा असंभव नहीं है। जब रेल नही बनी थी तब हम लोग स्वप्नमें भी ध्यान नही करते थे कि दो दिनकी राह दोही घंटेमें आदमी चल सकेगा। योग्य गुरु प्राप्त होनेसे पर्वतका राई हो जाता है। प्राचीन समयके गुरु आजकलके गुरुओंके ऐसा पेटार्थी तथा स्वार्थी नहीं होते थे। पढ़ानेके उपलक्षमें वे एक टका भी नहीं लेते थे बरन अपनी गिरहसे विद्यार्थियोंको खिलाते थे। आजकल तो दो रुपये मासिकपर गुरु रक्खे जाते हैं। गुरु साहेब भी गोरु साहब हो जाते हैं अर्थात् वे अपने मूसे घासहीसे मतलब रखते हैं–'मुर्दा नरकमें जाय या स्वर्गमें जाय हमें हलुआ पूड़ीं जपनेसे काम है–' की कहावतको चरितार्थ करते हैं। संसारचक्रमें जिसे देखिये वही गुरु–बन बैठता है और चेला बनना कोई नही चाहता है किन्तु गुरु बनना दाल भातका नेवाला नहीं है। हमारे जैनसमाजमें गुरुका अधिकार श्रीमुनिराजहीको दिया गया है और पढनेके लिये भी पूर्व समयमे बालक इन्हींकी सेवामें भेजे जाते थे। क्योंकि "गु" नाम तिमिरका है और 'रु'का अर्थ है प्रकाश करना अर्थात् जो अज्ञान रूपी अन्धकारको दूर करके ज्ञानका प्रकाश करै वहीं गुरु है। शास्त्रोंमें सच्चे गुरुका स्वरूप इसप्रकार कहा है०–जिसको क्रोध, मान, माया और लोभ नहीं है तथा जिसके आरंभ और परिग्रह नहीं है एवं जो ज्ञान ध्यान तथा तपमे सदा मग्न है वही सच्चा गुरु है। संसार सागरके पार होनेकी नौका गुरु ही हैं। जब लोक

और परलोक दोनोंका भार गुरु ही पर है तब साधु महात्मा ही गुरु होनेके योग्य हैं। गृहस्थी गुरुसे तो किसीप्रकार भी उपकारकी संभावना नहीं है। सच्चे गुरुकी पहचानके लिये विशेष अनुभवकी जरूरत है। क्योंकि झूंठी जटा जूटके बढ़ानेवाले साधु टोकरियों मारे २ फिरते हैं और भोलेभाले संसारको ठगते फिरते हैं। आज कल तो "अंधा गुरु और बहिरा चेला, दोनों नरकमें ठेलम-ठेला" की लोकोक्ति चरितार्थ होती है।

संसारकी रमणियोंमें हमारी मनोरमा सभी बातोंमें आदर्शरूप हुई। सुन्दरता तथा लावण्यमें बेजोड़ थी। यदि इसका रूप सुरकन्यायें देखती तो वे भी लज्जित होतीं। यदि मनोरमाको यक्ष कुमारीका प्रतिबिम्ब कहूं तौ अनुचित नहीं होगा। समयानुसार मनोरमाका चित्र पाठकोंको अर्पण करूंगा।

जब मनोरमा सोलह वर्षकी हुई तब उसके माता पिताको उसके व्याहकी चिन्ता हुई।

सेठ महीदत्तजीने एक अनमोल माणिककी माला बनवायी और उसमें बारह करोड़ मोहर खर्च किये। माला तैयार होजानेपर सेठने अपने पुरोहितको बुलाकर कहा०—

'महाराज! आपको इसलिये कष्ट दिया है कि—मनोरमा अव-स्थानी हो गई। उसके व्याहकी चिन्ता हमारे मनमें लग रही है। "लायकहीसों कीजिये वैर व्याह अरु प्रीत।" यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है। इसलिये मैंने बारह करोड़ मोहरके लागतकी माला बनवायी है। आप इसे लीजिये और देश २ घूमकर इसका ग्राहक ठहरा-इये। जो धनी और योग्य होगा वही इसे मोल लेनेका साहस

करेगा। बस आप मालाका मोल न लीजियेगा यदि योग्य वर हो और आपके कोकशास्त्रानुसार मनोरमाके लायक हो तो उसी ग्राहकसे हमारा जुहारु कहियेगा और यही माला उसे टीका दीजियेगा।"

पुरोहितने सेठजीसे माला लेकर कहा०—"महाशय ! आपने योग्य वरकी अच्छी जाँच निकाली। ठीक है, बुद्धिमानोंके आगे कठिनसे कठिन काम भी सुलभ होजाता है। अब मैं जाता हूं।" सेठजीने पुरोहितको प्रणाम किया और पुरोहित आशीर्वाद देकर बिदा हुए।

तीसरा परिच्छेद।

कौशल देशके अधिकारमें वैजयन्ती नगरी है। इसके अधिकारमें बारह कोट हैं। वापीकूप तड़ाग बागबगीचे और देवालय आदिसे नगरी पूर्ण है। बाजार इसका चौपड़-नुमा बना हुआ है अर्थात् इस नगरीके चौरास्तोंपर खड़े होनेसे चौपड़की बनावट मालूम पड़ती है। दूसरे बाजारोंकी अपेक्षा जौहरीबाजार रमणीक है। जौहरियोंकी दूकानों पर ताकनेसे आखोंमें चकाचौंध लग जाती है। जिधर आंख उठाकर देखिये उधर ही हीरा मोती माणिक और लालके पुंज धरे हैं। दूकानोंकी सजावट और मोतियोंकी झालरपर नजर नहीं ठहरती है। जौहरियोंके ठाट बाट और आनवान देखने ही लायक है। नगरीकी अखिल सुन्दरता पर ध्यान देनेसे स्वर्गपुरीका धोखा होता है।

महीदत्त सेठके पुरोहितजीमहाराज भी हार लिये हुए फिरते २ इसी नगरी में आ पहुंचे। हार बेंचनेकी धुनमें हाट बाटकी धूल

उड़ाने लगे। चक्कर लगाते लगाते यह जौंहरीबाजारमें भी आ निकले और इनकी नजर एक जौहरी पर जा पड़ी। वह अपनी दूकानपर नीले बानातकी मिर्जई लाल किनारेकी रेशमी धोती और माथेमें लहरदार चीरा बांधे हुए बड़े ठस्सेसे बैठा था। हाथोंमें कड़ा और गलेमे हीरेकी कंठी शोभा दिखा रही थी। जौंहरीकी अड़क भड़क तथा साज सामानको देखकर पुरोहितने विचार किया कि "आश्चर्य्य नहीं कि इसीसे अपना मनोर्थ सिद्ध हो। चलकर इसकी नाड़ी टटोलूं तो सही! कहीं माला लेनेपर राजी हो गया तो पौ-बारह! देखनेमें तो एक शौकीन जवान जान पड़ता है। इस प्रकार विचार करते हुए पुरोहितजी महाराज उस जौहरीकी दूकान पर आ ही तो पहुंचे। इनको देखते ही जौहरीबच्चा उठ खड़ा हुआ और उसने प्रणाम करके इनको आदरपूर्वक अपनी दुकान-पर बिठाया। पुरोहितजी भी अशीर्वाद देकर बैठ गये। अब दोनों आदमीमें बातें होने लगी.

जौहरी—"महाराज! आप कहांसे पधारे हैं?"

पुरोहित—"मै उज्जैनीसे आता हूं। महाशय! आपका क्या नाम है?"

जौहरी—"मुझे तो लोग धनपाल कहते हैं—आप अपना मतलब कहिये।"

पुरोहित—(माला एक पट्टेकी गिरहसे खोलकर दिखाता है) मैं इस मालाको बेचना चाहता हूं। यदि आप इसे ले लेवें तो बड़ी बात है।"

जौहरी—"इसमें बड़ी बात छोटी बात क्या है मैं इसे अभी ले लूंगा। आप इसका मोल तो कहिये।"

पुरोहित—"महाशय! अगर आप बारह करोड़ मोहर दे देवें-तो मैं पाप काट दूं!"

माला देखकर उस छली जौहरी बच्चेकी लाल टपक पड़ी और उसके जीमें बेईमानी समाई। खोटे आदमीके परिणाम भी स्वभावतः खोटे हुआ करते हैं। लोभ बहुत ही बुरी बला है। इसके चपेटमें योगियोंका योग भी भ्रष्ट हो जाता है। इसीके फेरमें आकर चोरीकी लत पड़ जाती है तथा लोकपरलोक सभीसे हाथ धोना पड़ता है। जीते जी जेलखानेमें सड़िये और मरनेपर नरकमें पड़िये, चलिये धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका!

धनपालने दगाबाजीसे पुरोहितकी माला ले लेना ही निश्चय करलिया और भोलेभाले पुरोहितसे यों बातें बनाईं०—

"कृपानाथ! मैं इसे जरूर खरीदूंगा! आप थोड़ी देरतक मेरी दूकान देखते रहिये मैं अभी हवेलीमें माला दिखाकर लौट आता हूं तो दाम चुकता कर देता हूं" इतना कहकर माला लिये हुए धनपाल दूकानसे नीचे उतर पड़ा।

संसारमे सरल स्वभावी जनोंकी मिट्टी खराब है और ऐसे लोग प्रायः मूर्ख समझे जाते हैं। छली पाखंडी और धूर्त हीका सितारा चमकता दीख पड़ता है तथा ऐसे ही लोग बुद्धिमानोंकी श्रेणीमें गिने जाते हैं।

बिचारा पुरोहित नौ दो कुछ नहीं जानता था। वह एक सरल हृदयका आदमी था। प्रायः मनुष्यका हृदय दर्प्पणका काम करता है

विशेष प्रार्थना।

इस जैनहितैषी पत्रके जो महाशय ग्राहक बनना चाहें वे पहिले अंकसे ही बन जावें-क्योंकि इस पत्रमें प्रत्येक अंकके साथ जो **मनोरमा उपन्यासके** १६ पृष्ठ छपते हैं वह दूसरे, तीसरे, वा चौथे अंकसे ग्राहक बनने वालोंके पास अधूरा रह जायगा. जो पीछेसे अर्थात् दूसरे या तीसरे वा चौथे आदि अंकसे ग्राहक बनैंगे उनको यदि हमारे पास पिछले अंक होंगे तो भेज दिये जांयगे। नहीं होंगे तो उनको पूर्तिकरनेके हम जुम्मेवार न होंगे। तथा जो महाशय प्रथम अंकसेही ग्राहक बनै उनको भी सब अंक संभालके विनयके साथ रखना चाहिये नहीं तो उनका उपन्यास भी अधूरा रह जायगा।

संपादक.

छपगये ! छपगये !! छपगये !!!

श्रीशुभचंद्राचार्यविरचित योगका महान् ग्रंथ

श्रीज्ञानार्णवजी।

वचनिका सहित जगतप्रसिद्ध निर्णयसागर प्रेसमें सुंदर अक्षरोंमें छपकर जिल्द सहित तैयार होगये। यह ग्रंथ मासिक जैनमित्र सरीखे बडे आकारके ४५० पृष्ठोंमें पूरण हुवा है। प्रस्तावनामें ग्रंथ रचनेका कालनिर्णय व आचार्य महाराजका संक्षिप्त चरित्र प्रकाश करनेवाली कथाका भी समावेस हुआ है। ध्यानका (योगका) ऐसा कोई भी ग्रंथ नहीं है जो इसकी समानता करै. स्वाध्याय करनेवाले भाईयोंको इसे मगाकर अवश्य ही स्वाध्याय करना चाहिये। एक एक प्रति हरएक मंदिरजीमें विराजमान करना चाहिये। न्योछावर इसकी ४) रु. है डांकखर्च वी. पी. में मगाने से ।-) आने और पडेगा।

बृहद्द्रव्यसंग्रह वचनिका सहित।

जिसका इस्तहार हमारे सूचीपत्रमें छपा है वह अभीतक तैयार नहिं हुआ था सो अब तैयार होरहा है कार्तिक सुदी १५ तक भेजना प्रारंभ हो जायगा सो जिनको चाहिये मंगालेवें।

पन्नालाल जैन, पोष्ट-कालबादेवी, मुंबई.

Reg. No. B.

B. Gumpat Roy

विनामूल्य वृंदावनविलासकी लूट ।

हमारे जैनसमाजमें प्राचीन और आधुनिक अनेक कवि हो गये हैं। जिन्होंने जैनधर्मके अनेक विषयोंमें ऐसी उत्तम २ कविता करी है कि जिनके बांचने पढने और मनन करनेसे प्राणीमात्रका कल्याण होता है। उन कविताओंके संग्रहका नाम विलास—अर्थात् बनारसीविलास, द्यानतविलास, भूधरविलास, ब्रह्मविलास, बुधजनविलास, परमानंदविलास, पारसवि[illegible] वृंदावनविलास आदि नाम हैं. इनमेंसे बनारसीविलास ब्र[illegible] विलास तो हम छपा चुके। जो कि हाथोंहाथ [illegible]क गये। अबकी [illegible] विलासोंमेंसे दौलतविलासके पश्चात् **वृंदावन[illegible]लास**को छपाना प्रारं[illegible]—कविराज वृंदावनजीको प्रायः सभी भाई जानते होंगे क्योंकि इनका बनाया हुआ वर्त्तमान चौवीसी पाठ, व तीसचौवीसी पाठ और प्रवचनसारग्रंथ जिन्होंने देखे हैं वे इनकी मनोहर कविताके गुणोंको अवश्य जानते होंगे. इस वृंदावनविलासमें, देवगुरुशास्त्रके स्तवन, संकटहरण, गुरुस्तवन, भक्तभयभंजन कल्याणकल्पद्रुमजिनेन्द्रस्तवन अर्थात् बृहत्संकटमोचन, पद, वीनती, अंतर्लापिका, बहिर्लापिका, छंदशतक पिंगल, सकुनावली आदि—बडी उपयोगी कविताओंका संग्रह है। बडे कष्टसे खास कविवर वृंदावनजीके हातकी लिखी शुद्ध प्रतिसे लिखकर जगत्प्रसिद्ध निर्णयसागरमें छपाते हैं. मूल्य जुदा लेनेसे २) रु. लिये जायगे किन्तु जो महाशय जैनहितैषीका मूल्य १।) रु. और ~) पोष्टेज कुल १।~) मंगसर महीनेके भीतर २ भेज देंगे, उनको यह अपूर्व ग्रन्थ विना मूल्य भेजा जायगा। ग्रंथ छप रहा है. वी. पी. में किसीको भी नहिं भेजा जायगा १।~) मनीओर्डरसे भेजेंगे वे ही इसके विनामूल्य पानेके अधिकारी होंगे।

जैनी भाइयोंका दास—**पन्नालाल जैन,**

जीतेकरकी चाल, पो. कालबादेवी बम्बई.

ॐ

जैनहितैषी.

अथवा

(जैनसमालोचक)

मासिक पत्र.

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा संपादित व प्रकाशित।

चतुर्थ भाग	मार्गशीर्ष वीरनिर्वाण संवत् २४३४।	अंक ३८ वां

नियमावली।

१। इस पत्रका वार्षिक मूल्य डांकखर्चसहित अग्रिम १।) और पीछेंसे २) रु० है। छह महीनेतक जिनका मूल्य आजायगा वह अग्रिम समझा जायगा। फुटकर अंकका मूल्य ।) आने।

२। यह पत्र विना मगाये भी अनेक महाशयोंके पास भेजा जाता है। प्रथम अंक पहुंचनेपर यदि कोई महाशय कार्डद्वारा सूचना देंगे अथवा दूसरा अंक लोटा देंगे तो उनका नाम काट दिया जायगा। जो महाशय न तो नाम काटनेके लिये कार्ड भेजेंगे और न दूसरा अंक लोटावेंगे वे महाशय पक्के ग्राहक समझे जांयगे। और उनको ५ अंक भेजकर छटा अंक **वी. पी.** द्वारा भेजा जायगा।

३। जो भाई साफ २ हिंदीके सिवाय उर्दू, अंगरेजी व मूड़ी वगेरहमें चिट्ठी भेजेंगे उनकी तामील नहिं होगी.

पत्र व मूल्य भेजनेका पता—**पन्नालाल जैन,**
जौतिकरकी चाल पो. **कालबादेवी** (मुंबई.)

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

हर्ष है कि—

अनेक सुयोग्य महाशयोंने प्रथम (३७ वें) अंकसे ही कार्ड द्वारा व मूल्य भेजकर ग्राहक होना स्वीकार कर लिया है जिससे उनको धन्यवाद दिया जाता है, और उन महाशयोंको विशेषतया धन्यवाद दिया जाता है कि जिन महाशयोंने अंक लौटा दिया अथवा कार्डद्वारा ग्राहक होना इनकार कर दिया क्योंकि उनका नाम काटकर हम हमेशाहके लिये निश्चिंत हो गये परन्तु जिन महाशयोंने न तो अंक लौटाया और न कार्डद्वारा हां-ना की सूचना दी उनके लिये हमको पश्चात्ताप है। इसका कारण सिवाय प्रमादके और कुछ नहीं है अस्तु उन महाशयोंको हम फिर भी दूसरा अंक अर्थात् यह ३८ वां अंक भेजते हैं सो इस अंकके पहुंचनेपर भी यदि किसीका इनकारी कार्ड वा अंक वापिस नहिं आवैगा तो वे महाशय इस पत्रके पक्के ग्राहक समझे जांयगे और उनको ४१ वां अथवा ४२ वां अंक **वी. पी.** से भेजा जायगा। **संपादक.**

जिन ग्रन्थोंकी आपको चाह थी वे ही तीन ग्रंथ छपकर तैयार हो गये. लीजिये मगाइये और

स्वाध्याय कीजिये।

१। **ज्ञानार्णवजी वचनिकासहित**—यह ग्रंथ मुनिधर्मके उपदेश और ध्यानकी प्रक्रियाका भंडार है। यह ग्रंथ रायल ८ पेजी ४५० पृष्ठमें पूरा हुआ है छपाईकी सुंदरता तो निर्णयसागरकी जगत्प्रसिद्ध ही है मूल्य ४) डांक खर्च।=)

२। **पुण्यास्रवजी वचनिका**—यह पुण्यास्रव ढूंढारी भाषाका नहीं है। यह संस्कृतपुण्यास्रवकथाकोषकी भाई नाथूराम प्रेमीकृत स्वतंत्र सरल वचनिका है। निर्णयसागरके सुंदर और मोटे टाईपमें खुल्ले पत्रोंका छपाकर तैयार किया है मूल्य भी इतने बडे ग्रंथका दो पुट्ठों (गत्तों) सहित सिर्फ ३) रु. रक्खा है। यह ग्रंथ बालक बालिका वृद्ध युवा स्त्री पुरुष सबके स्वाध्याय करने योग्य बहुत ही उपयोगी है।

३। **बृहद्द्रव्यसंग्रह वचनिकासहित**—इस ग्रंथमें मूलद्रव्यसंग्रह-ब्रह्मदेवसूरीकृत संस्कृत टीका और पं. जवाहिरलालजी साहित्यशास्त्रीकृत बृहत् भाषानुवाद सहित छपा है। जिल्दसहित अपूर्व ग्रन्थ है मूल्य २) डांक व्यय जुदा।

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः ।

जैनहितैषी ।

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित हो चहत यह जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

चतुर्थ भाग. | मार्गशीर्ष वीरनिर्वाण संवत् २४३४ । | अंक ३८ वां.

सम्पादकीयटिप्पणी ।

दिगम्बरजैनप्रांतिक सभा मुम्बईके सभापति

सभाके सभापति इसलिये बनाये जाते है कि सभाकी हर तरहसे तनमनधनसे रक्षा करे और उसकी उन्नति करै और सभापति वही प्रतिष्ठित पुरुष बनाया जाता है जो कि परम विद्वान विचारवान् और धर्मात्मा हो। परन्तु हमारे जैनसमाजमें इससे उल्टी रीति है, हमारे यहां जैनसभाओंके सभापति केवल धनवान ही बनाये जाते है । विद्वत्ता विवेकता व धर्मज्ञतादि गुणोंको कुछ नहीं देखते अर्थात जातिमे जो अधिक धनवान हो वही सभापति बनाया जाता है चाहे वह पढ़ा हो चाहे अनपढ बछियाके बाबा ही क्यों न हो । ऐसे धनवान महाशय कदाचित सभापति बनना नहीं चाहै तो उन्हे जबरदस्ती ही सभापतिका स्थान दिया जाता है । परन्तु हमारे भाई इसके आगामी फलपर किंचिन्मात्र भी दृष्टिपात नहिं करते, जिसका फल हमारे तथा जैनमित्रके पाठकोंको ज्ञात हुआ होगा कि सब जगहकी प्रथाके अनुसार बंबई प्रान्तिक सभाके संरक्षक सभापति (जबसे सभा स्थापन हुई है) श्रीमान् दानवीर सेठ माणेकचंदजी जौहरी जे. पी. महाशय हैं यद्यपि आपमें सभापतित्वके गुण एक भी नहीं हैं। परन्तु प्रान्तिक सभाके नेतागणोंने—

**"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति" ॥ १ ॥**

इस नीतिके अनुसार सेठजी साहबको ही सर्वगुणसम्पन्न मानकर सभापतिका स्थान आपहीको दिया था। परन्तु सेठजीने सभाकी व सभाके अंगोंकी उन्नति कहांतक की? और अर्सासे आसोज वदि ३ को सभाका कैसा सम्मान किया सो पाठक व प्रान्तिकसभाके सभासदगण स्वयं विचार कर सकते हैं। सभासे हमारी प्रार्थना है कि, अबके अधिवेशनपर इस जुल्मका विचार अवश्य किया जावै और आइंदेके लिये सभाके सभापति किसी विद्वान्को चुनना चाहिये सो भी जबर दस्ती नहीं किन्तु सभामें सभापतिके कर्त्तव्य कर्म सुनाकर टेबिलपर पांचपानका एक बीडा और सभापतिपनेकी एक केशरिया बढिया पोषाक व पुष्पमाला रक्खी जावे। और सभापतिके कर्त्तव्योंका वर्णन पूर्वक प्रार्थना की जावे कि इन भाइयोंमेंसे जो महाशय इस धर्मके रथको जितने वर्ष तक चलानेमें समर्थ हों उतने वर्षकी प्रतिज्ञापूर्वक यह बीडा उठाकर चबा जावें. इसप्रकार प्रार्थना करनेपर जो महाशय बीडा उठाकर चबा जावें, उस ही महाशयको जयध्वनिके साथ पुष्पवर्षापूर्वक सभापतिकी पोशाक व पुष्पमाला पहिनादी जाय। इसप्रकार जो अपने उत्साहसे सभापतित्वके बीडेको खायगा वही महापुरुष सभाके कार्यको तनमनधनसे चलावेगा। इसीप्रकार उपसभापति मंत्री उपमंत्री वगैरहके लिये भी बीडा और पोशाक रखकर उनके भार सौंपा जाय। यदि इसप्रकार करनेसे कोई धर्मात्मा अग्रसर न हो तो संतोष कर लेना चाहिये कि इस निकृष्ट कालमें धर्मधारियोंका अभाव हो गया।

हीराबाग धर्मशाला

मुम्बईप्रान्तमें गिरनारजी, सेत्रुंजाजी, तारंगाजी, पावागढ़ गजपंथाजी कुंथलगिरि आदि अनेक तीर्थ हैं। प्रतिवर्ष हजारों यात्री यात्रार्थ आते हैं। मुम्बई व्यापारका भंडार और दर्शनीय नगरके निकट व रास्तेमें होनेसे पांच दस दिनके लिये प्राय: यात्रीगण यहां पर भी आते हैं। जैनबद्री वगैरह करणाटकदेशीय अतिशय क्षेत्रोंकी यात्रा करनेवालोंको भी यह नगर रास्तेमें पडता है परन्तु धर्मशालाके अभावके कारण इन यात्रियोंको ठहरनेका बडा कष्ट था। लाचार यात्रियोंको अन्यधर्मियोंकी धर्मशालाओंमें ठहर कर नाना प्रकारकी तकलीफें उठानी पडती थी। सो हर्ष है कि दानवीर सेठजीके बडे भ्राता पानाचंदजी हीराचंदजीके एक लाख पैंसठ हजार रुपयोंके दानमेंसे आपने सवालाख रुपयेकी

हीराबाग नामकी एक बडी मनोज्ञ धर्मशाला बनवा दी है, और शेष रुपयोंसे एक **दातव्यस्वदेशीपवित्रऔषधालय** खोल दिया है, जिसमेंसे सौ डेढसौ रोगी नित्य प्रति दवाईका सेवन कर सुखी होते हैं। इस धर्मशालाके स्थापन होनेसे नगरनिवासी जैनीभाइयोंको व असमर्थ सर्वसाधारण भिन्न धर्मियोंको और यात्रियोंको जो लाभ हुआ है होता है और होता रहैगा सो वचन अगोचर है। यद्यपि शास्त्रदानकी व जिनवानी माताके जीर्णोद्धारकी बराबर लाभदायक न तो यह वास्तिकादान है और न औषधिदानशाला है परन्तु बोर्डिङ्स्कूलोंकी अपेक्षा यह दान हजार दरजे उत्तम और लाभदायक है क्योंकि इसमें यात्रियोंको बडा आराम मिलता है—यहां ठहर कर यात्रीगण यात्राके सब दुखोंको भूलकर बेफिकर हो जाते हैं, परन्तु जितना आराम और सुख गुजराती भाइयोंको अथवा गुजराती भाइयोंकेसे भ्रष्टाचारी बाजारकी पूरी कचोरी खानेवालोंको प्राप्त होता है उतना आराम उत्तरदेशीय शुद्धाचारी व मालवदेशीय सोभिया भाइयोंको कदापि नहीं मिलता—बलके यों कहिये कि उनके लिये शुद्धाचारसे रसोई बनानेके लिये कोई प्रबंध ही इस धर्मशालामें नहीं है। हमारा कार्यालय भी इसी धर्मशालाकी भाडेकी दुकानमें है इस कारण अनेक शुद्धाचारी यात्री गण प्रायः हमारे पास इस धर्मशालाकी प्रशंसा करके शेषमें इसी कष्टको प्रकाशित करते हैं। हम भी उन्हे कह देते हैं कि आपको जो जो कष्ट व त्रुटि इस धर्मशालामें प्रतीत हो, वे मेनेजरके पाससे विजीटर बुक लेकर उसमें लिख जाइये, सेठजी देखेंगे तो जरूर उसका प्रबंध हो जायगा परन्तु कोई तो उसमें लिखते हुये डरते हैं वा सन्तोष कर लेते हैं कि अपन के दिन यहां रहेंगे क्यों किसीके धर्मकार्यमें दूषण काढें? और जो भाई लिखते हैं वे सिवाय प्रशंसाके और कुछ लिखते ही नहीं। इसलिये सेठजीसे तथा इस बागकी कमेटीके मेम्बरोंसे प्रार्थना है कि शुद्धाचारी धर्मात्मा भाइयोंके आरामका भी प्रबन्ध इस धर्मशालामें अवश्य करना चाहिये। क्या क्या त्रुटि है सो यदि उसके दूर करनेकी प्रतिज्ञा करके हमसे पूछेंगे तो हम प्राईवेट तौरसे बता देंगे वा लिखा देंगे नहीं तो अगले अंकमें छाप कर प्रगट कर देंगे।

भाइयो! हम दिगंबरी श्वेताम्बरी मिल करके १५ लाख जैनी हैं हमारी जातिकी समान राजभक्त, सदाचारी नीतिसे

जैनियोंके पवित्र धर्म-स्थान सम्मेदशिखरजी पर म्लेच्छाचारी अंगरेजोंके बंगले बननेका हुकुम।

चलनेवाली इस अंगरेजी सरकारकी प्रजामें दूसरी कोई भी जाति व प्रजा नही है. यदि इस बातको झूठ समजते हो तो चाहे जिस सालकी जेलखानेकी रिपोर्ट खोलकर देख लीजिये सब जातियोंकी अपेक्षा हजार पीछें. जैनी लोग ही जेलमें सबसे कम जाते है परन्तु हमारे अंगरेज प्रभुओंने ऐसी राजभक्त प्रजाकी कुछ भी सुनाई नहि करके अपने अंगरेज भाइयोंके आरामके अर्थ हमारे परमपूज्य तीर्थस्थानको भ्रष्ट करनेका जबानी हुकुम दे ही दिया। भाइयो! जिस पर्वतपर आप सवेरे चार बजेसे उठकर स्नानादिसे पवित्र होकर पूजाकी सामग्री लेकर नंगेपावों चढते थे और १० १२ घंटे तक थूक, शिणक, मलमूत्रादिके वेगोंको रोककर तीर्थराजकी भक्तिका परिचय देते थे उस पूजनीय पर्वतपर हमारे अंगरेज प्रभु नित्यप्रति सैकडो जिनावरोंकी हत्या (शिकार) करेंगे, हलवाई लोग गौ बैल वगैरह उपकारी पशुओंको मार २ कर काटैंगे, छीलेंगे, रांधेंगे, फिर हमारे प्रभुगण पकावेंगे खावेंगे फिर उसी पवित्र जगहपर मलमूत्रादि त्याग करके महा अपवित्र करेंगे इन बातोंको लिखते और स्मरण करते हृदय कांप जाता है। परन्तु क्या किया जाय यह कालका माहात्म्य है सच पूछिये तो अंगरेजी राज्यकी जडजमानेवाली जैन जाति ही है. यदि **मुर्शिदाबाद** निवासी स्वनामधन्य जैन अमीचंद सेठ मदद नहीं करता तो भारतवर्षमें अंगरेजी राज्यकी नींव कदापि नहीं जम सकती थी परन्तु ऐसे उपकारको भी भूलकर सभ्य अंगरेजोंने अमीचंद सेठके साथ क्या क्या सलूक किया था वह पलासीयुद्धका इतिहास बांचनेवाले भले प्रकार जानते है बस अब राज्यकी जडजमानेवाले तुम्हारे पूर्वज अमीचंद सेठका यो बदला चुकाया तो अब तुमारे पर्वतको बचानेकी आशा करना व्यर्थ है। लाख दो लाख रु. खर्च करके मुकदमेबाजीके द्वारा वकील बारिष्टरोंका घर और भरना बाकी है सो खर्च करलो परन्तु तुम्हारे धर्म तीर्थपर बंगले बधना बंध नहीं होगा। भाइयो! अब तुम अच्छीतरहसे समझ लो कि अब तुमारे धर्मकी रक्षा होना कठिन है। सन ५७ की गदरका महारानीका ढंढोरा पीटा गया था कि "हम किसीके धर्ममें हस्तक्षेप नहि करेंगे सबको सहायता देंगे" यह बात केवल उसी समयके लिये थी, अब यदि तुम खुशामदी करना छोडकर अपने पैरों खडा होना सीखो

तो बंगालियोंकी तरह तुमको भी स्वदेशीवस्तुओंका ग्रहण और विलायती चीजोंका और अंगरेजोंके साथ व्यापारधंदा करनेका एकदम बायकाट कर देना चाहिये। विना बायकाटके तुम्हारी कुछ भी सुनाई नहिं होगी, क्योंकि हिंदोस्थानका आधा व्यापार जैनियोंके हाथमें है। कपड़ेकी अनेक मीलैं अहमदाबाद, बंबईमें जैनियोंकी ही है सो विदेशीबहिष्कार और स्वदेशी ग्रहणसे तुमको बडा भारी लाभ होगा। जबतक सम्मेदशिखरजीपर बंगला बननेका हुकम नहिं लोटै, तब तक तुमको ऐसा ही करना चाहिये।

सेठ पंडित मेवारामजी

पाठक महाशय! हमने गताङ्कमें सेठ पंडित मेवारामजी साहब मुम्बईमें भी सभायें करके प्रभावनांगकी धुजा फहरावैंगे इत्यादि खबर लोकलसमाचारोंमें छापी थीं उसके अनुसार उनका ३० अकटूबरको हीराबागके लेक्चरहालमें प्रथम व्याख्यान होनेवाला था और हम भी "अकलंकप्रतिष्ठापाठमें तोतेकी वीटसे गोबरसे आरती करना कहां लिखा है" सो प्रतिष्ठापाठकी प्रति पेश करके दिखा देनेकी प्रार्थना करनेवाले थे परंतु खेद है कि—आप साधारण बीमारीका बहाना करके सभा करना स्वीकार नहीं किया और ता. २ नवेंबरकोही अपने चेलेचांटों सहित चलदिये। हमलोगोंकी सब आशायें धूलिमें मिलगई। सभाके विज्ञापन कार्ड छापखानेमेंही धरे रहे और परम खेद इस बातका हुआ कि आप बंबईमें १२ दिनतक रहे परंतु आपकी मोहनमूर्तिके दर्शन तक हमारे तथा अनेक भाइयोंके नसीबमें न हुये क्योंकि आप न तो समयपर मंदिरजीमें ही आते थे और न डेरेपर ही स्थिर रहते थे. दिनभर तो प्राय; सौखीनी पदार्थोंके खरीदनेके लिये बाजारमें रहते थे और रात्रिमें नाटक तमासे, हवाखोरी वा आरामतलबीमें रहते थे। सच है महापुण्यवानोंके दर्शन भाग्यशाली हुये विना नहीं मिलते अस्तु हमारा भाग्य ही ऐसा है। परंतु उनके दर्शन करके हम जो प्रश्न और प्रार्थना करना चाहते थे उसका उत्तर अब भी सेठजी साहब दे सकते हैं—इस लिये हमारा सेठ पंडित मेवारामजी और उनके मतानुयायी श्रीमान् पंडित गुलजारीलालजी लमेचू, आदि महाशयोंसे प्रश्न है कि—" मथुराके मेलेपर अंकलंक प्रतिपाठकी प्रति वा पत्रा लेकर मेवारामजी साहबने बडे जोरसे आवाज लगाकर अकलंकदेवके प्रतिष्ठा पाठमें दोष—लगाया था कि "भाइयों इसमें आरतीके पदार्थोंमें

गोबरके सिवाय तोतेकी बीट भी लिखी है सो क्या यह आपको मान्य है ? इत्यादि"–कह कर अपना प्रभाव जमाया था और विजयी हुये थे सो कृपाकरके उस प्रतिष्ठापाठका तथा किसी प्राचीन प्रतिका वह पत्रा जिसप्रकार हो विनयके साथ भेज कर हमें दिखा दीजिये कि–वह पाठ वा श्लोक कैसा है। आशा है कि–हमारी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण होगी।

दि० जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेनाकी रिपोर्ट

विदित हो कि मोरेनामें श्रीमान् विद्वद्वर्य पं. गोपालदासजीके असीम साहससे जो पाठशाला खुली है उसकी चैत्र सुदी २ से दीपावली तककी रिपोर्ट हमारे पास आई है जिससे प्रतीत होता है कि–चैत्र सुदी २ को बंबई प्रान्तिकसभाकी तरफसे वंशीधर नामका एक विद्यार्थी आया उसने गोमट्टसार जीवकांड संस्कृत टीकासहित ३४० गाथा पढी है। तत्पश्चात् आषाढ सुदी २ को आगरा निवासी तिलोकचंद, गुलाबचंद और छेदालाल ये तीन विद्यार्थी भरती हुये। इनके सर्वार्थ सिद्धि तीन अध्याय, चन्द्रप्रभसर्ग दो और न्यायदीपिका प्रथमप्रकाश क्रमानुसार पूर्ण हुये हैं। इसी समय सज्जनोत्तम बाबा भगीरथजी बालब्रह्मचारी भी विद्याध्ययनार्थ पधारे हुये हैं सो उन्होंने भी तीन अध्याय सर्वार्थसिद्धि पढा है। इनके सिवाय सहारनपुर महासभाके महाविद्यालयमें उचित पढाई न होनेके कारण नेमिचंद्र नामका एक विद्यार्थी आया है इसने जैनेन्द्रव्याकरणकी दूसरी संधी, स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षाकी ५० गाथा पढी है। इसके पश्चात् बंबई सभाने नंदनलाल विद्यार्थीको भी जैनसिद्धान्त पढनेके लिये भेजा है सो उसने गोमट्टसारजीके ३० गाथा और राजवार्त्तिकके पत्र पढ चुका है। सबकी फीसदी औसद हाजरी ८० रही। इसप्रकार ७ विद्यार्थी वर्त्तमानकालमें अध्ययन कर रहे हैं। उत्तर दक्षिणसे कई नये विद्यार्थियोंके आनेकी भी सूचना मिली है। विद्यार्थियोंके सिवाय त्यागी भाइयोंके धर्मसेवनका सुभीता भी वहां पर अच्छा है। कई धर्मसेवी सज्जन आनेवाले हैं। समयाधिक्य होने पर विद्यार्थियोंको मुनीमीगिरी भी सिखाई जाती है। इस पाठशालामें अध्यापक विनावेतनके हैं और वे विद्वच्छिरोमणि श्रीमान् पं० गोपालदासजी बरैयाजी हैं। अध्यापकका समस्त कार्य आप ही बडे परिश्रमसे करते हैं। भोजनखर्च विद्यार्थीगण जहां कहींसे भी स्कालरसिप

लेकर वा घरसे स्वयं करते हैं। यदि कोई असमर्थ विद्यार्थी भोजनादिव्ययके अभावसे विद्याध्ययन नहिं कर सकै तो उसके लिये स्कालरसिप देनेका प्रबंध किया है। कई धर्मात्माओंने स्कालरसिप देना स्वीकार भी किया है। भोजनखर्चके सिवाय दीपक लेम्प मकान खर्च तथा एक खिदमतगारका खर्च १०) रु०माहवारीका उक्त पंडितजी ही अपनी तरफसे उठाते हैं। विद्यार्थियोंकेलिये पुस्तकोंका प्रबंध भी कर दिया जाता है। हम भलेप्रकार जानते हैं कि विद्यार्थियोंको जिन धर्मके जो गूढ रहस्य यहां बताये जाते हैं वे कहीं भी प्राप्त होना असंभव है। क्यों कि—जैनसमाजमें जैनसिद्धान्तके ज्ञाता एकमात्र आप ही हैं। अतएव जो विद्यार्थी जैनसिद्धान्तका ज्ञाता होकर अपना और जैनसमाजका कल्याण करना चाहें वे शीघ्र ही उक्त पंडितजीसे पत्रव्यवहार करके मोरेना चले जावें इसकेसिवाय हम बडे २ शहरोंके धर्मात्मा धनाढ्य व पंचोंसे भी प्रार्थना करते हैं कि आप तीन चार वर्षके लिये एक २ दो दो स्कालरसिपका प्रबंधकरकें एक एक दो दो विद्यार्थियोंको अवश्य दिगंबरजैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेनामें भेजदेवैं फिर देखिये कि कैसें जैनधर्म की उन्नति नहि होती है।

जिनवाणीमाताका जीर्णोद्धार
और
सरस्वतीभंडार।

(२)

पाठक महाशय! गतांकमें हम जिनवाणी माताके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता बतला चुके हैं। आशा है कि, उसका आपके हृदयपर कुछ असर अब भी बाकी होगा। आज यह दिखलाना चाहते हैं कि, इस विषयमें हमारे समाजने कितने प्रयत्न किये और उनमें कहांतक सफलता हुई।

आजसे प्राय: १०—१२ वर्ष पहले महासभामें एक प्रस्ताव हुआ था कि, सबसे पहले जिनवाणी माताका जीर्णोद्धार, करनेके लिये एक **सरस्वतीभंडार**, स्थापन किया जावे। तदनुसार मथुरामें महासभाके अधिकारमें एक सरस्वती भंडार स्थापन भी हो गया था। परंतु उसका होना न होना बराबर ही हुआ। लिक जीर्णोद्धार कार्यमें तो उससे एकप्रकारकी हानि ही हुई, और शायद उसके

संस्थापकोंकी ऐसी गुप्त इच्छा भी थी । क्योंकि उस समय मुद्रितग्रन्थोंका प्रचार होने लगा था और बहुतसे भाई उन ग्रंथोंका स्वाध्याय करने लगे थे। इस सरस्वतीभंडारसे उन्हें यह समझाया जाता था कि, देखो! मुद्रितग्रंथोंके पढनेसे पाप होता है, इसलिये उन्हें न पढकर हमारे भंडारके द्वारा ग्रन्थ हाथसे लिखावा २ कर मंगवाओ, और पढो। तुम्हारी केवल यही शिकायत है कि हमको ग्रन्थ नहीं मिलते सो यह सरस्वतीभंडार तुम्हारी शिकायत रफा कर देगा। परन्तु मथुराकी धर्मशालामें तीन चार लेखक बिठाकर सैकडों स्वाध्यायप्रेमियोंकी इच्छा पूर्ण कर देना. कुछ हँसी खेल नहीं था। जो भाई १० ग्रन्थ मंगानेको पत्र लिखते थे, उन्हें छह महीनेमें एक या दो ग्रन्थ मुश्किलसे पहुंचा सकते थे। शेषके विषयमें पत्र लिखनेसे जवाब नदारद सुतरां महासभाके सरस्वतीभंडारकेद्वारा सिवाय इसके कि—"दशबीस मुद्रित ग्रन्थ पढनेवाले छपानेवालोंकी श्रेणीमेंसे कुछ दिनोंके लिये अलग हो गये, और कुछ लाभ नहीं हुआ। यदि महासभाके कोई कार्यकर्ता हमको यह समझा देवें कि, उनके सरस्वतीभंडारकेद्वारा कोई दो चार ग्रन्थोंका जीर्णोद्धार हुआ है, तो हम उनके बहुत कृतज्ञ होंगे।

हमारी समझमें महासभाके सरस्वतीभंडारका उद्देश्य जिनवाणी माताका उद्धार करके उसकी रक्षा करना तथा जो ग्रन्थ समाजको अतिशय लाभदायक हों उनको शुद्धतापूर्वक मुद्रायंत्रसे छपा छपाकर प्रचार करना होना चाहिये था परन्तु उक्त सरस्वती-भंडारके स्थापनका पहले तो यह उद्देश्य ही नहीं था, दूसरे उसके कार्याध्यक्षोंके हृदयमें जिनवाणी माताकी सच्ची भक्ति भी नहीं थी और न अब है। यदि ऐसा न होता. तो महासभाके बीसों अधिवेशन हो चुके, उनमें इस विषयमें कुछ न कुछ प्रयत्न (प्रस्ताव) अवश्य होता।

दूसरे—नम्बरमें उन्नति की डींग मारनेवाली दिगम्बरजैनप्रान्तिकसभा बम्बई है। यद्यपि अपने बाल्यकालमें इस सभाने अपने सुयोग्य कार्यकर्त्ताओंके परिश्रम और उत्साहसे कुछ उन्नति की थी। परन्तु जिनवाणीके जीर्णोद्धारकी ओर इसने भी कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। हाँ एकबार थोड़ेसे फार्म और रजिष्टर छपवाकर अपने उपदेशकोंके द्वारा भंडारोंके ग्रन्थोंकी फेहिरिस्त बनानेका कार्य अवश्य ही इसने प्रारंभ किया था, परन्तु सरस्वती भंडारको कोई सुयोग्य मंत्री नहीं मिला, इसलिये वह सब फेहिरिस्त अव्यवस्थित और अपूर्णह

रही। हां एक कार्य इस सभाके द्वारा बराबर प्रशंसाके योग्य होता रहा कि, सरस्वतीभंडारका नाम निशान तथा उसकी सहायतार्थ एक पैसेका फंड न होने-पर भी मंत्रीका नाम प्रकाशित करनेका प्रस्ताव प्रत्येक अधिवेशनपर प्रायः पास होता था ! सभाके सभ्य गण यहां प्रश्न कर सकते हैं कि, अधिवेशनपर सरस्वतीभंडारके मंत्री किसी संस्थापित भंडारका कार्य चलानेके लिये नहीं किये जाते थे, किन्तु अपनी बुद्धिसे उसके स्थापित करनेका प्रयत्न करनेके लिये किये जाते थे। परन्तु हम उनसे पूछते हैं कि, जब सभा अपने किसी भंडारका किसी को मंत्री करना अपना कार्य समझती है तो उसका क्या यह भी पहलाकार्य नहीं है कि, उस भंडारके संचालन तथा संस्थापनके लिये कुछ द्रव्य एकत्र करनेके लिये भी प्रस्ताव करै अथवा किसी दूसरे प्रकारसे वर्ष भरके कार्य निर्वाहके लिये उस मंत्रीको हजार पांचसौ रुपयेकी मंजूरी दे ? सारांश यह है कि, बम्बई प्रान्तिकसभाने इस कार्यको उत्तम समझकर भी आजतक कुछ नहीं किया। यह बात हम उस समयकी लिखते हैं, जब कि प्रान्तिसभाका कार्य बहुत उत्तम रीतिसे सम्पादन होता था और कार्य करके दिखानेवालोंमें उसका नम्बर सबसे पहला था। फिर अब तो उससे आशा ही क्या की जावे, जब कि उसके सम्पूर्ण कार्यकर्त्ताओंमें तीव्र वैमनस्य फैल रहा है, और ज्यों त्यों करके एक क्लर्कके भरोसे उसके सब कार्य सम्पादन होते हैं।

तीसरा–यथार्थ प्रयत्न आरानिवासी देवप्रकृति सज्जनोत्तम बाबू देवकुमारजीने किया था। परन्तु अफसोस है कि, अनेक धनवानोंकी टालबाजीसे उसमें भी सफलता न हुई। आप जिस समय दक्षिणप्रांतकी यात्राके लिये बम्बई पधारे थे; उस समय यह प्रयत्न हुआ था। आपकी इच्छा थी कि, जगत्प्रसिद्ध दानवीर शेट माणिकचन्दजी जे. पी. की सहायता तथा संरक्षामें एक सरस्वतीभंडार स्थापित किया जावे जिसके द्वारा सम्पूर्ण प्राचीन भंडारोंकी फेहिरिस्त तयार कराके उनकी रक्षा की जावे, तथा जिन ग्रन्थोंके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता हो, उनकी प्रतियां लिखवा २ कर एकत्र की जावें, और उनसे समाजको लाभ पहुंचाया जावे।

इस विषयमें उन्होंने बम्बईमें दो तीन सभायें लगातार कीं और कहा, कि सरस्वतीभंडारके प्रबंधकेलिये फिलहाल पांच वर्षका प्रबन्ध किया जाय। ३५००) रु० वार्षिक खर्च करनेसे यह कार्य एकप्रकारसे चल जावेगा, जिसके लिये

१७५००) का चन्दा होना चाहिये। इस समय यहांपर जगत्प्रसिद्ध दानवीर शेठ माणिकचन्दजी, मालवाप्रान्तके उदारशील शेठ हुकमचन्दजी, आदि बड़े बड़े धनिक जो कि धर्मसंचय करनेकेलिये यात्राको निकले हैं, सो मौजूद हैं। मैं समझता हूं कि–इस समय यह चन्दा हो जाना कोई बडी बात नहीं है। मैं अपनी शक्ति अनुसार इस फंडमें २०००) रु० प्रदान करता हूं! बस यह सुनते ही सबके कलेजे दहल गये। यह वज्राघात कहांसे हुआ, इससे अब रक्षा कैसे हो? इत्यादि विचार करने लगे। हाय! दूसरे कार्योंमें प्रायः पांच लाख रुपये खर्च कर देनेवाले शेठ माणिकचन्दजीको भी इस पतितोद्धारिणी जिनवाणीपर दया नहीं आई! आप जिस धर्मादे खातेमेंसे बोर्डिङ्ग वगैरेहमें लाखों रुपये लगा दिये तो कमसे कम उस खातेमेंसे पांच हजारकी रकम भी दे देते तो क्या अन्याय हो जाता? परन्तु खेद है कि—आप धनिक गणोंसे सम्मति करके समझाने लगे कि–"हम सर्व महाशयोंको इन दो तीन लगातार सभाओंके द्वारा अच्छीतरहसे विदित हो गया कि सरस्वती भंडारकी बहुत बडी आवश्यकता है। हमको बाबू देवकुमारजी स्वर्गीय कईवार इस कार्यके लिये लिखा भी था, परन्तु कारण विशेषसे इस कार्यका संपादन नहिं हुआ। आज वह समय आ गया है। (१) जिससे आशा की जाती है कि, यह कार्य सिद्ध (२) होगा" जिसप्रकार वर्तमानमें विद्यालय बनाना आदि (३) कार्य मुख्य है, उसीप्रकार एक सरस्वतीभवन बनानेकी भी बडी भारी आवश्यकता है। आज हमको **'हम जैनी हैं' 'अर्हत कौन हैं' 'पाप क्या' 'झूंठ क्या' 'सच क्या'** इत्यादि समस्त कार्य इन शास्त्रोंद्वारा ही प्राप्त होते हैं। इसकारण इस कार्यमें प्रत्येक मनुष्यको शक्ति अनुसार (४) सहायता देना आवश्यकीय है। मैं इस समय सहायता देनेको तैयार हूं (५) परंतु हमारे जैन जातिके शिरोमणि लोग (६) इस समय उपस्थित नहीं हैं।

---

(१) हरगिज नहीं अगर वह समय आता तो इस समय आप अपनी दानवीरता प्रगट किये विना नहिं रहते। (२) फिर क्यों नहीं आपनें चंदा लिखा? (३) आदिमें जैनबोर्डिंगस्कूल भी समझ लीजिये। (४) हम कहते हैं कि शक्तिसे भी अधिक सहायता देनेकी आवश्यकता है। (५) फिर किसने हाथ पकड लिया था? क्या आपके प्राइवेट सेक्रेटरी साहेब बाबू शीतल प्रसादजीने कानमें कोई मंत्र फूंक दिया था?(६) क्या दान देनेमें आपसे भी कोई बडा जैन जातिमें शिरोमणि है?

और इसीकारण मैं कुछ रकम नहीं भर सकता (१) हूं। शेठ हरमुखराय अमोलकचंदजी सेठ जुहारमल मूलचंदजी आदिके (२) मुनीम यहां बैठे हुए हैं, जो मुझसे प्राइवेट रीतिसे कहते हैं कि "यह कार्य अति उत्तम है और हम अपने मालिकोंको लिखते हैं। (३) और इसीकारण ही वर्त्त-मान सभाके सभापति सेठ हुकुमचंदजी भी कहते हैं कि,—इस सभासे मुझे विमुख न समझना चाहिये। मैं इस कार्यमें पीछेसे सहायता देना चाहता (४) हूं" अन्तमें उस दिनकी सभाके सभापति मालवे प्रान्तके दानवीर शिरोमणि सेठ हुकुमचंदजीने सभाको विसर्जन करते हुए कहा कि—"मैं इस कार्यको अतिउत्तम समझता हूं (५) और मैं चाहता हूं कि, यह कार्य शीघ्र ही सम्पादन होवे (६) मुझे इस कार्यसे आप लोग विमुख नहिं समझना (७) जो आपलोग इस कार्यमें सहायता मांगोगे मैं अपनी शक्तिअनुसार (८) देनेके लिये प्रस्तुत हूं। यह एक मंदिरकी अपेक्षा अधिक कार्य भी नहीं है। एक मंदिरके बनानेकी शक्ति हर एक साधारण आदमी रखता है (९) फिर हम सर्व भारत वर्षके धनिकोंको मिलकर यह कार्य करना क्या कठिन हो सकता है? इत्यादि" (१०) इसके बाद सज्जनोत्तम पं० धन्ना-

---

१ धन्य है आपकी बुद्धि और विचारशीलताको। (२) आदि शब्द क्यों? मुम्बईमें तो एक सेठ गुरु मुखराय सुखानंदजीकी दुकान धनाढ्योंमें और है सो सेठ सुखानंदजी मौजूद ही थे। (३) क्या किसी भी मुनीमने अपने मालिक-को लिखा था? क्या उसका उत्तर कोई मुनीमसाहब बता सकते हैं? (४) यदि बाबू देवकुमारजीकी तरह इसी वक्त सहायता देते तौ क्या कोई हाथ पकडने वाला था? (५) बिलकूल झूंट (६) यह भी सर्वथा झूंट (७) भलां इस झूंट वचनका भी कहीं ठिकाना है? (८) शक्ति तो आपकी लाख रुपये देनेकी है परंतु परिणाम उस समय एक फूटी कोड़ी भी देनेको नही थे यदि होते तो बाबू देवकुमारजीकी तरह बोल देते परंतु खेद है कि बडे लोगोंको अपने बचनोंकी शर्म हो तब न? (९) परंतु जिनवाणी माताके जीर्णोद्धारार्थ खर्च करनेवाले कोई भी नहीं है। (१०) सब धनिक क्यों आपसरीखे एक ही धनाढ्य महा-शय लाख दो लाख रुपये लगादें तो लगा सकते हैं परन्तु जिनवाणी माताके जीर्णोद्धारकरनेमें पुण्य वा लाभ समझें तब न?

लालजी काशलीवाल व दरयावसिहजी सोधियाने बहुत कुछ कहा और समझाया परन्तु कुछ भी फल नहीं हुआ। बाबू देवकुमारजीके निमित्तसे प्राप्त हुआ दुर्दशाग्रस्त सरस्वतीमाताके उद्धरका यह अवसर भी हाथसे निकल गया। धनिक गण मूछोंपर ताव देते हुए इस विपत्तिसे रक्षा पाकर झटपट मन्दिरजीमेंसे खिसक गये !

लोग यह कल्पना न कर सके कि, धनिकोंने किसी तरहसे इस विपतिसे अपना पिंड छुडाया है। इसलिये उस दिन पीछेंसे इस कार्यका सम्पादन करने के लिये शेठ माणिकचन्दजी और शेठ हुक्मचन्दजी नियत किये गये थे और पत्रव्यवहार करनेके लिये बाबू शीतल प्रसादजी। परंतु आठ महीने बीत गये. इस विषयकी किसीसे चर्चा भी नहीं सुनी। तब पाठक महाशय समझ लीजिये कि, उस दिन शेठ महाशयोंने जो मीठी २ बातें कहीं थीं. उनका क्या मतलब था। शेठ सज्जनोंके इस घोर षडयंत्रसे बाबू देवकुमारजीके जो असीम उत्साहका भंग हुआ है और जिनवाणी माताके उद्धार कृत्यमें जो अन्तराय उपस्थित किया गया है, वह तबतक हमारे हृदयमें खटकेगा, जबतक कि सरस्वती माताके उद्धारका कोई विशाल आयोजन न होगा।

हमारे अभाग्यसे जैनसमाजमें जितने धनाढ्य और दानी हैं, वे अपने धनका सदुपयोग करना नहीं जानते। उनमें इतनी बुद्धि नहीं है जिससे सोच सकें कि वर्तमानमें किस कार्यकी आवश्यकता है, और किसकी नहीं। सच कहनेमें कुछ हर्ज नहीं है। इसलिये हम दुःखके साथ कहते हैं कि, उनमें शायद कोई भी ऐसा नहीं है, जो **जिनवाणीके जीर्णोद्धार कार्य**को अच्छा और आवश्यक समझता हो। सभा सुसाइटियोंमें तो दूसरोंकी देखादेखी वे भी हांमें हां मिला देते हैं, परन्तु अन्तरंगमें इससे उन्हें रंचमात्र भी प्रीति नहीं हैं। यही कारण है कि, उस दिनके घोर गर्जन तर्जन करनेवाले बादलोंमेंसे एक बूंद भी जलकी प्राप्ति न हुई। पी पी पुकारनेवाले आशा ही लगाये रहे परन्तु किसीको भी दया नहीं आई। बातकी बातमें सब इधर उधर बिखर गये।

इस तरह जिनवाणीकी रक्षाका यह तीसरा प्रयत्न भी नष्ट हो गया।

जिनवाणीजीर्णोद्धारके समाचार।

हमारे जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालयके अनेक ग्राहक महाशय पत्रद्वारा हमसे

पूछते हैं कि—अब आप कौन कौनसा ग्रंथ छपा रहे हैं और वे कबतक तैयार होंगे? इसकारण हम सब भाइयोंके जाननेके लिये नीचें लिखे समाचार प्रगट करते हैं—

श्रीप्रमेयकमलमार्तंडन्यायका—निर्णयसागरमें जीर्णोद्धार हो रहा है दो वर्षवाद तैयार होंगे।

अष्टसहस्री न्याय—सुना है कि आकलूजकके सेठ नाथारंगजी इसके जीर्णोद्धारमें लगे हुये हैं आशा है कि दो वर्ष में इसके भी दर्शन होंगे।

रत्नकरंडश्रावकाचार बडा—सदासुखजीकृत हमारी तरफसे सुंदरताके साथ निर्णयसागरमें छप रहा है ६ महीने बाद तैयार हो जायगा।

प्रवचनसारजी कवित्तबंध—कविवर वृंदावनजीकृत हमारी तरफसे निर्णयसागरमें छप रहे हैं नाटकसमयसार और बनारसीविलासके समान यह ग्रंथ भी सबको प्रिय और बडा उपयोगी होगा। यह ग्रंथ आठ महीनेमें तैयार होगा।

वृंदावनविलास—कविवर वृंदावनजीके जीवनचरित्र सहित निर्णयसागरमें छप रहा है—यह ग्रंथ ४ महीने बाद तैयार होगा तब **जैनहितैषी**के ग्राहकोंको **विनामूल्य** उपहारमें भेजा जायगा। जुदा लेनेवालोंको २) रुपया मूल्य देना होगा।

पार्श्वपुराणजी चौपाईबंध—यह भी हमारी तरफसे खुले पत्रोंमें बडे अक्षरोंसे छप रहे हैं ४ महीने बाद तैयार होंगे। शेषमग्रे।

सूचना—जैनपताका अंक ३ में छपाये पं. गुलझारीलालजीके लेखके खंडन अगले अंकमें छपैगा। **संपादक।**

मनोविनोद।

(३)

एक भोले भाई और बाबुसाहबका वार्त्तालाप।

भोले भाई—क्यों बाबू साहेब '**श्रीमती**' '**सौभाग्यवती**' शब्दका क्या अर्थ है और ये शब्द किसके पीछें लगाये जाते हैं?

बाबूसाहब—श्रीमती शब्दका अर्थ तौ धनवाली, खूबसूरतीवाली, शोभावाली वगैरह है और सौभाग्यवती शब्द अच्छे नसीबवाली अथवा पति-

वाली सधवा स्त्री ऐसा अर्थ है । और ये दोनों शब्द सधवा स्त्रियोंके नामके पहिले ही लगाये जाते हैं विधवा स्त्रीके नामसे पहिले नहिं लगाये जाते ।

भोले भाई—और '**कन्या**' शब्दका अर्थ क्या है ?

बाबूसाहब—कन्या उसे कहते हैं जो अविवाहिता कुवारी लडकी हो ।

भोले भाई—तो क्या यह शब्द भी विधवास्त्रीके नामसे पहिले नहिं लगाया जाता ?

बाबूसाहब—बेशक यह भी सिवाय अविवाहिताके विवाहिता अथवा विधवास्त्रीके नामसे पहिले नहिं लगाया जा सकता ।

भोले भाई—जब ऐसा नियम है तो आप तथा बडे २ विद्वान्, लेखक, एडीटर वगेरह उस विधवा बगुलीबाईको लेखों और प्रस्तावोंमें श्रीयुत मानवीर बाबू मूर्खानंदजीकी कन्या श्रीमती तथा सौभाग्यवती बगुलीबाईने व्याख्यान दिया, अथवा प्रस्ताव किया, तथा अमुक किया तमुक किया इत्यादि क्यों लिख करते हैं ?

बाबूसाहब—हम लोग जो ऐसा लिखते हैं उसका अभिप्राय अतिशय गूढ और अप्रकाश्य है ?

भोले भाई—बाबू-साहेब-मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि-इसका अर्थ गूढ वा अप्रकाश्य होगा परंतु मुझे तो अवश्य ही बता दीजिये क्यों कि मैं बहुत दिनोंसे इस बातको विचारता रहता हूं कि-लोग ऐसा क्यों लिखते और बोलते हैं ? परंतु मेरे मगजसरीफमें अभी तक वह गूढार्थ नहिं आया ? जिससे मेरी शंका मेरे हृदयमें कांटासी चुभती रहती है सो कृपा करकें यह कांटा दूर कीजिये ।

बाबूसाहब—बेशक यह शंका तुमारेही हृदयमें क्यों बलके अनेक भाइयोंके हृदयमें चुभती होगी परंतु ऐसा गूढार्थ सिवाय सच्छिष्यके किसी अन्यको नहिं बताया जाता ! तुम हमारे सच्छिष्य हो अतः तुझे बताये देता हूं ।

भोले भाई—तो कृपा करकें शीघ्र ही बताइये ।

बाबूसाहब-(कानमें) प्रथम तौ बडे घरोंकी स्त्रियें विधवा होनेपर भी वे सदा सु + + + हुआ करतीं हैं. दूसरे. बालविधवायें हमारे बाबु यानी मतानुसार सब कन्या ही हैं । जरा हमलोगोंकी एसोसियेसनका जोर बढ जाने दो फिर शीघ्र ही देखोगे कि ये सब बालविधवायें कन्या कहलाई जाकर

तथा पुनर्विवाहिता होकर सबकी सब सधवायें अर्थात् श्रीमती, सौभाग्यवती, पतिवती उपपतिवती, बल्के दयानंदीमतकी तरहं एकादशपतिवती तक बन जांयगी, इसकारणसे ही हम लोग द्रव्यनिक्षेपनीतिके अनुसार श्रीमती सैाभाग्यवती वगेरह शब्द लिखते हैं और कन्या लिखना तो भावनिक्षेपानुसार ही है ।

भोले भाई—(प्रसन्न होकर) तब तौ मैं भी अवसे बालविधवा स्त्रियोंको श्रीमती सौभाग्यवती और कन्या, वलके कौमलकन्या लिखा करूंगा ।

---

(४)

कुंथलगिरीमें एक विद्वान् लेखक और बाबू साहबका वार्त्तालाप ।

बाबूसाहब—क्यों जी तुम ऐसे कैसे विद्वान हो जो सामायिक व उपवास व्रत कभी नहिं करते ?

लेखक—बाबूसाहब आपका कहना ठीक है, परन्तु एक तो मुझे सावकास नही दूसरे मेरे ऐसे दृढ भाव, तथा ऐसी सामर्थ्य ही नहीं है जो ऐसे महान् व्रत करसकूं ?

बाबूसाहेब—भाई शक्ति और भाव तो हमारे भी नहीं परन्तु ऐसा आजकल किये विना किसीका भी माहात्म्य (प्रभाव) नहिं होता । इसकारण भाव और शक्ति नहिं रहते भी पूजा, व्रत उपवास सामायिकादि कार्य करता हूं, अगर ऐसा नहिं करता तो मेरा हजूरसाहबके घरमें इतना मान सन्मान और आदर होना असंभव था । आजकल दुनियामें बाह्यचारित्र ही पूज्य है अंतरगको सिवाय केवली भगवानके कौन देख सकता है ? देखो यह सब ठाठ बाहरै चारित्रका (ढोंगका)ही प्रभाव है । यदि ऐसा न होता तो क्या संभव था कि तुमारे लिये तो थार्ड क्लासका और हमारे लिये सेकंडक्लासका टिकट ?

लेखक—बाबूसाहब ! आप चाहे जो कहें, परन्तु मुझसे ऐसी बगुलाभक्ति व बकध्यान नहिं बन सकता क्योंकि मैं इसको महापाप समझता हूं । आपके इस माहात्म्य और सन्मानको मैं दूरहीसे नमस्कार करता हूं ।

विशेष लाभ ।

स्वर्गीय कविवर भारामलजीकृत शीलकथा; दानकथा, दर्शनकथा और निशिभोजनकथा ये ४ कथायें अनेक भाइयोंने छपाई हैं परन्तु मनमाना नयापाठ

बनाकर महा अशुद्ध पाठ करके छपाई है जिससे पढनेवाले सर्वसाधारणको बडी हानि होती है। इसकारण अनेक महाशयोंके आग्रहसे हमने इन कथाओंके छपानेका इरादा किया है परन्तु दो चार प्राचीन प्रति मिले विना ये कदापि शुद्ध नहिं छप सकीं। इसलिये भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि जो महाशय इन कथाओंमेंसे किसी भी कथाकी प्राचीन पचास वर्ष पहिलेकी लिखी प्रति भेजेंगे उनको उसके बदलेमें छपी हुई पांच प्रति भेजी जांयगी आशा है कि हमारे भाई भंडारोंमेंसे देखकर प्राचीन प्रति शीघ्र ही भेजेंगे।

पन्नालाल जैन-पो. कालबादेवी मुम्बई।

लोकलसमाचार।

दिगंबरजैनप्रान्तिकसभामुम्बईके बाल ख्याल।

बालख्याल नं. १।

कुछ दिन हुये सभाके एक भाई धूलचंदजीने अपने देशसे आये हुये ताऊजी वगैरहके साथ गिरनारजीकी यात्रार्थ जानेकी अत्यावश्यकता समझ सभाके सहायक महामंत्री बाबू फूलचंदजीसे ८ दिनकी मुखजबानी छुट्टी मांगी तो जवाबमें 'चुप'के सिवाय कुछ भी उत्तर नहीं मिला। जब एक पुलिसकेप कागजके पूरे तावमें विनयपूर्वक लिखित प्रार्थना भेजी तो मंत्री साहबने मुखजबानी हुकुम दिया कि सभापति साहबके पास लेजाओ। जब कलर्कसाहब सभापतिकी सेवामें उपस्थित हुये तो सभापति साहबने फरमाया कि हम इस झगडेमें क्यों पडें मंत्रीके पासही लेजा ओ। कहिये पाठक महाशय यह एक बालख्याल है कि नहीं?

बालख्याल नं. २।

दिगम्बरजैनप्रांतिकसभा मुम्बईका पावागडपर होनेवाले आगामी अधिवेशनके लिये सभापति किसको बनाना चाहिये यह प्रस्ताव चुननेवाली कमेटीसे चुनवाकर प्रबंधकारिणी कमेटीमें प्रवेश करके उसकी बहु सम्मतिसे प्रस्ताव मंजूर होनेपर सभापतिका नाम सर्वसाधारणमें प्रगट करना चाहिये था परन्तु अभीतक (ता. २० दिसंबर तक) यह कार्रवाई न होनेपर भी ता. ४ दिसंबर के जैनविजय और २५ नवेम्बरके मुम्बईसमचार नामक गुजरातीके दैनिक पत्रमें पावागढके अधिवेसनपर सभापति सोलापुरनिवासी **श्रीमान् सेठ हीराचंद नेमचंदजी दोशी नियत हुये हैं** ऐसा प्रगट किया गया है सो यह भी एक ऊचे दरजेका बालख्याल है कि नहीं?

शेष अगले अंकमें.

अर्थात् जो आदमी जैसा होता है प्रायः दूसरोंको भी वैसा ही जानता है। जो चोर होता वह संसारमात्रको चोर ही जानता है और जो साधु होता सभीको साधु जानता है। ऐसी अवस्थामें धनपालकी चालवाजियोंको ताड़ना भोले भाले पुरोहित के लिये नितान्त दुर्लभ था अतः वह सहजही में धूर्त धनपालके झांसे पट्टीमें आगया और दूकानपर बैठनेमें राजी हो गया।

धनपालके तो भाग फूट पड़े। विल्लीके भागों छींका टूटा। घर वैठे छप्पर फाड़कर लक्ष्मी पधारी। मारे खुशीके वह जामेके वाहर हो गया आनन्दमें फूलकर अपनी सफलतापर अकड़ता हुआ अपनी हवेलीमें पहुंचा।

आंखके अन्धे लोभी धनपालको आगेकी कुच्छ[1] भी सुधि नहीं है! वह नहीं जानता है कि यह माला आस्तीनका सांप हो जायगा! एक दिन इसीके पीछे भारी आपत्ति झेलनी पड़ेगी और वुरी[2] गत हो जायगी। लोभी जन प्रायः अग्रसोंची नहीं होते हैं। यदि ऐसा होता तो संसारमात्रसे जेलखाने एकदम उठा दिये जाते और ताजिरातहिंदको समुद्रमें फेंकदेना पड़ता।

जैसी होनहार होती है तैसी वुद्धि भी उपजती है! चींटीको मरना होता है तो पंख उत्पन्न होते हैं, धनपालके अशुभ कर्म्मोंके उदयोंने उसकी आंखोंपर पर्दा डाल दिया! अव उसके वुरे दिन आया ही चाहते हैं।

धनपालने उस माले[3]को अपनी स्त्रीको दिखाकर कहा०——

१-२-३-आराप्रान्तके लेखक प्रायः **'कुछ'** को **'कुच्छ' 'ब'** को व और माला पाठशाला वगेरहको माले पाठशाले लिखा करते हैं-**प्रकाशक.**

"प्यारी! आजका दिन हमारे लिये बड़ा ही शुभ है! आज मैं बड़ा ही भाग्यशाली हूं कि छप्पर फाड़कर दौलत आयी है! एक मूर्ख ब्राह्मण इसे बेचनेको लाया है! इसे सन्दूकमें बन्द करो और एक ऐसी ही माला झूटे माणिककी है उसे निकाल लाओ! देखो तो पुरोहितरामकी आंखोंमें कैसा धूल डालकर उल्लू बनाता हूं! वही-माला देकर उसे धत्ता बताऊंगा और चैनकी गुड्डी उड़ाऊंगा! फिर तो दसों उंगली घीमें है! (हँसता है) मूर्ख ब्राह्मण सच्चे झूठेकी खाक भी पहचान नहीं कर सकेगा।

धनपालकी स्त्री दुष्टस्वभावकी नहीं थी। शील और धर्म्म ही उसका जीवनस्तम्भ था। धर्म्मके विपरीत बातें सुनकर वह थर थर काँपने लगी और भयसे उसके रोंगटे खड़े होगये। वह समझ कर डरते २ बोली.—"प्राणनाथ! आप यह क्या अनर्थ करते हैं! इतना बड़ा घोर पाप करते हुए आप तनिक भी नहीं हिचकते हैं। परलोकमें इसका भारी प्रायश्चित्त होगा! ऐसी खोटी बातों का तो आपको ध्यान भी नहीं करना चाहिये। पुण्यके उदयसे आपको सभी कुच्छ प्राप्त है। आपको क्या टोटा पड़ा है कि ऐसा अनर्थ करने पर उतारू हुए हैं। ऐसे पापसे लोक और परलोक दोनो नष्ट होते हैं। ऐसा नीच विचार तो एक भिकारी भी नहीं कर सकता है अतः आप ऐसे महापुरुषोंको यह शोभा नहीं देता है। जो कुच्छ भागने दिया है उसी पर आप सन्तोष करें। भला दूसरोंके धनसे कोई धनी होता है? इस पापसे दूर ही रहिये नहीं तो व्यर्थ कलंकका टीका माथेमें लगेगा। कहीं भंडाफोड़ हो गया तो बना बनाया खेल चौपट होजायगा और उलटे लेनेके देने पड़

जायेंगे। कहीं नगरनरेशके कानोंतक यह बात पहुंची तो भारी आपत्ति खड़ी होजायगी। अपनी गांठसे तो जाहीगी और व्याजमें राज्यदण्ड भोगना पड़ेगा! दूसरेका धन सर्पवत् जानना चाहिये क्योंकि उसके ग्रहण करनेसे अपनी ही जान पर आ बनेगी! प्राणधन! कृपा कर पुरोहितकी थाती (?) उसे सौंप दीजिये और अपने धनपर सन्तोष करिये।"

इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें सन्तोषसे बढ़कर दूसरा रत्न नहीं है किसीने ठीक कहा है०—

दोहा—गोधन गजधन वाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवै सन्तोषधन, सब धन धूल समान॥

अर्थात् सन्तोषीजनोंकेलिये सारी सांसारिक सम्पदा निर्मूल है नीति में लिखा है कि जो लोग सन्तोषरूप अमृत से तृप्त हैं उन्हे जो शान्ति सुख होता है वह धनके लोभीजनों को जो इधर उधर दौड़ा करते हैं कदापि नहीं होता है। किन्तु लोभ और सन्तोष में तो वप्पावैर है अर्थात् सन्तोषी को लोभ नहीं होता और लोभीको सन्तोष नहीं होता है।

स्त्रीके उपदेशने धनपाल पर कुच्छ भी काम नहीं किया उलटे उसे क्रोध चढ़ आया। उसके सिरपर तो काल नाच रहा है फिर उपदेश क्यों सुनने लगा! जब विनाश का समय आता है तब बुद्धि भी विपरीत होजाती है। धनपाल अपनी स्त्री की बातों पर आग बबूला होगया। क्रोधसे उसका चेहरा लाल होगया तथा वदन कापने लगा। बड़ी २ आंखें निकाल कर वह बोला०—

"अबला जाति की बुद्धि कितनी! मसल है कि नाक न

रहै तो मुँह से खे खायें ! आगे पीछेका विचार तो किया नहीं लगी अनापशनाप वकने ! मूर्खा आती हुई लक्ष्मीको लात मारती है ! ऐसा ही धर्म्म ध्यान है तो जंगल पहाड़ोंमे जाकर माला जप ! संसारमें झूठ दगा और फरेवहीसे काम चलता है ! लक्ष्मी आने को होती है तो इसीप्रकार आती है ! तू मूर्खिनी है भला इसका मर्म क्या जाने !"

अवला का नाम ही है अ–वला । भला वह अपने भर्त्तारपर कहांतक दवाव डाल सकती है । निदान लाचार होकर और अपने पति का रुख देख कर बोली०—

"प्राणपति ! जो उचित था मैने कह दिया आगे करने नहीं करनेका आपको अधिकार है—मै तो आपकी दासी हूं, आपकी आज्ञा सर आंखों पर है ! आप जो कहें मैं वही करने को तैय्यार हूं किन्तु याद रखिये कि एक दिन मेरी वातों को याद कर करके पछताइ-येगा तथा अपने भागों को रोइयेगा । अब भी कुच्छ नहीं विगड़ा है जिसकी थाती है उसे सौंप दीजिये इसीमें आपका कल्याण है !"

स्त्रीने लाख सिर पटका पर इसकी सुनता कौन है ! पापी धन-पालने इसकी ओर से अपने कान वहरे कर लिये। जब बुरा होनेको होता है तब कुमति घेर लेती है, हृदयकी आंखों पर पर्दे पड़जाते हैं और हिताहितका कुच्छ भी ज्ञान नहीं रहता है । हाय २ ! इस हठी दुष्ट और छली धनपालने बड़ा ही अन्धेर किया अर्थात् विचारे गरीब ब्राह्मण को दिन दहाड़े लूट लिया ! हाय ! विचारे की गर्दन पर हत्यारे ने वेगुनाह छुरी फेर दी !

धनपालने सच्चे माणिक की माला छिपा रक्खी और वह झूठी

माला लेकर अपनी दूकान पर पहुंचा। यहां आकर उसने ऐसा रंग बदला कि देखते ही बने! उसका क्रोध काहेको था कि एक नाटक का स्वांग था। मारे क्रोधके शरीर कांपने लगा आंखें लाल होगई और वह दांत पीसकर बोला.—"अरे ओ पाखंडी धूर्त ब्राह्मण! झूठी माला दिखाकर जगत को ठगता फिरता है! मुझे भी कोई गँवार जान लिया है! इतने दिनों तक क्या मैने भाड़ झोंके हैं! अगर सच्चे झूठे की भी पहचान न करूंगा, तो क्या खाकर जौहरीपना करूंगा! ब्राह्मण जानकर तुझपर दया आती है नही तो मारते २ तेरा कचूमर निकाल देता! अब इसी में कल्याण है कि तू माला लेकर सीधे घर को चला जा। नहीं तो आफत मचा दूंगा और कचहरी तक पहुंचा दूंगा! भाग ३!!!"

धनपालकी बातें सुनकर विचारे पुरोहितके तो देवता कूचकर गये! उसे कठया लग गई चीरो तो वदन में लहू नहीं! एकायक-वज्रका पहाड़ टूट पड़ा! कहांकी सगाई और कहांका व्याह! अब तो विचारे की मौतही आगयी। "रोये बने न गाये–रहगये वह मुंह वाये"। लाचार माला लेकर रोता पीटता हुआ दूकानके नीचे उतरा पराया देश पराये लोग न कोई संघी और न कोई साथी फिर इसकी फरियाद कौन सुनता है। अमीर धनपालको चोर कौन बताये! चलो आई गई पुरोहितके मत्थे! जो है इसीको छली और चोर बताता है, विचारा चौराहे पर खड़ा हुआ अपने भागोंको रो रहा परन्तु कोई कुशल क्षेम भी नही पूछता है। नक्कार खाने मे तूतीकी आवाज कौन सुनता है! विचित्र नगर है जहां दाद न फरियाद अन्धा मार बैठेगा की कहावत हो रही है।

संसारमें धनीको कोई भी चोर नहीं कहता है। लाखों ऐव होने पर भी धनी का आसन ऊचा ही रहता है। यदि धनी अधिक भोजन करे तो लोग उसकी बड़ाई करते हैं और कहते हैं कि "बाबू साहेबकी अच्छी खोराक है" और यदि कोई निर्धन अधिक भोजन करे तो लोग उसकी निन्दा करते हैं और कहते हैं कि "वह बडा पेटार्थू तथा मकोसू एवं अकालका मारा हुआ है।" संसारकी सभी बातें विचित्र तथा कौतुकमय होती हैं! धनीका बोलवाला—जर ऐव को छिपावे जो कुच्छ कहो सो जर है! निर्धनकी मिट्टी खराव है! संसार में न्यायका अभाव है जिसे देखो वही कपोलकलपना से अपनी डेढ़ चाँवलकी खिचड़ी अलग पका रहा है!

पुरोहितकी दोहाई किसीने नहीं सुनी। लाचार होकर वह अपने डेरे पर लौट आया। उसने अन्नजल त्याग दिया और निराहार रहकर प्राणहत्या करना ही उचित जाना। विचारा लौट कर मही-दत्तके पास भी नहीं जा सकता था क्योंकि वह भी इसी गरीबको चोर ठहराते।

चौथा परिच्छेद।

रातकी चोली मसक गयी है अतः लज्जासे वह अपने घर में छिपा चाहती है। आसमान में जो थोड़ा २ अन्धेरा है वह भी चोर की तरह भागा जाता है। रात भर के घूमनेवाले चोर छली और कामीजन चादरमें मुंह छिपाये नौ दो ग्यारह होते जाते हैं। पूर्व दिशामें थोड़ी २ सफेदी फूट रही है। कुमोदनी अपने प्राणपति चन्द्रमा के विरह में मुह छिपाकर आठ २ आंसू रो रही है। चोर-रूपी चन्द्रमा महा तेजस्वी तथा न्यायशाली सूर्य्य सम्राट के

सम्मुख आगया अतः उसका चेहरा मलीन पड़ गया है। प्रेमके सताये हुए भ्रमर सूर्य्य दर्बार में पहुंच कर दोहाई देने के लिये तड़प रहे हैं। पूर्व की सफेदी देख कर यही ज्ञात होता है कि न्यायवन्त तथा जगदुपकारी सूर्य्य महाराज के दर्बार में सफेद बिछावन बिछाई गई है। सुनिये! पक्षिगण भी नकीव की भांति सूर्य्य महाराज के आगमन की सूचना देने लगे! धीरे २ सारे आकाशदर्बार में सफेद चान्दनी बिछ गई। वह देखिये पूर्व की ओर लाल झंडे फहराने लगे अब सूर्य्य महाराज की सवारी आई ही चाहती है। यह छटा देख कर रातभर खटियाकी पटिया तोडनेवाले जन भी कुलबुलाकर उठ बैठे और हाथ मुंह धोकर अपने कामधन्धे की चेष्टा करने लगे। लीजिये सूर्य्य महाराजकी सवारी भी आही गयी!

इसी समय वैजयन्ती नरेश श्रीमान् महाराज पद्मसेनजी की राजसभामे दर्बारकी तैय्यारी होने लगी। फर्राशोंने फर्श फरूश करीनेसे झाड़ पोंछ कर ठीक कर दिया। यथोचित आसन लगा दिये गये और महाराज के बैठने के लिये एक जड़ाऊ सिंहासन भी रक्खा गया। चोवदार पहरेदार तथा नकीब आदि अपने २ स्थान पर विनय से खड़े होगये। धीरे २ सभा मण्डप भी हाली मो-हाली दर्बारी और सर्दारियों से भर गया। नकीवने आवाज दी "महाराजाधिराज! श्रीमान् सर्व गुणआगर न्यायविशारद प्रजा-वत्सल पद्मसेनजी महाराज की जय!"

महाराज पद्मसेनजी एक जड़ाऊ तानजाम पर सवार हैं। वदन में केसरिया जामा चीरापट्टुका और सिरपर बहुमूल्य चीरा बन्धा

हुआ है जिसपर मोती की छव्वेदार जड़ाऊ सिरपेंच लगी हुई है। बाहु पर भुजबन्ध हाथ में जड़ाऊ कड़े तथा गले में गजमुक्ता की माला पड़ी हुई है। महाराज के दोनों ओर चमर झल रहे हैं और सिरपर सोनेकी बहुमूल्य छतरी लगी हुई है। सभामण्डपके सिंहद्वार पर महाराज की सवारी छुटी गयी। महाराजने सभा में प्रवेश किया। दर्बारी तथा सर्दारियोंने उठकर यथोचित आदर और विनय किया। महाराज सिंहासनपर सुशोभित हुए। एक ओर मंत्री अपने आसनपर बैठ गये।

इसी समय चोपदारने विनयपूर्वक निवेदन किया०—"महाराजाधिराज! द्वारपर एक उज्जैनी नगरका ब्राह्मण डाढ़ें मारकर रो रहा है और श्रीमान् की दोहाई दे रहा है यदि आज्ञा हो तो बुलाऊं।"

महाराज०—"हे द्वारपाल! उसे शीघ्र दर्बारमें बुला ला पहले उसका न्याय करलूंगा फिर दूसरे कामों को पीछे देखूंगा। एक तो विदेशी दूसरे ब्राह्मण तीसरे दुःखित है अतः पहले उसीका न्याय करदेना उचित है।"

न्यायशील तथा प्रजावत्सल राजाओंका यही धर्म्म है। उन्हें उचित अनुचितका ध्यान पहले होता है। महाराज पद्मसेनजी एक योग्य राजा थे अतः उन्होंने सब काम छोड़कर पहले ब्राह्मणहीका मुक़दमा देखना उचित जाना। राजनीतिके जाननेवाला राजा अपने प्रशंसनीय कार्य्योंके कारण प्रजाके प्रेमभाजन बनते हैं, यही अवस्था महाराज पद्मसेनजीकी भी थी। इनकी प्रजा सदा सुखी रहती थी और इनको अन्तःकरणसे आशीर्वाद दिया करती थी।

थोड़ी ही देरमें चोबदार उस विपत्ति के मारे हुए ब्राह्मणको ले कर दर्बारमें हाजिर हुआ।

विचारा ब्राह्मण दोहाई तिहाई देता हुआ महाराज के चरणोंके आगे गिरगया और रो रो कर कहने लगा०— "महाराज! मैं इस नगरीमें दिन दहाड़े लुट गया! हाय मैं कहीं का न रहा.

महाराज०—"पंडितजी महाराज! आप ऐसा अधीर न हों और उठकर अपना हाल सविस्तर कहिये।"

ब्राह्मण०—"महाराजाधिराज! आपकी जय हो! मै क्या कहूं! कहते हुए कलेजा मुहको आ रहा है! आपकी नगरीमें एक धन-पाल नामक जौहरी है! हाय २! उसने वे गुनाह मेरी गर्दनपर छुरी फेरी! दिन दोपहर आखों में धूल डालकर मेरा वस्त्रामोचन कर लिया! मैं उज्जैनी नगरका रहनेवाला ब्राह्मण हूं। मैं एक माणिककी माला बेचनेको चला था! मेरे दुर्भागने मुझे यहां ला पटका! हाय २! यदि मैं ऐसा जानता तो इस नगरको दूरही से नमस्कार करता! शामत आई की मैं उस धूर्तकी दूकान पर गया। वह धूर्त्त माला लेनेको तैयार हो गया और उसने उसकी मोल-की! मुझे दूकान पर बैठाकर वह माला लेकर अपनी हवेलीमें गया! वहांसे लौटकर वह ऐसा स्वागत! किया! के मै तो भौचक हो गया! यही झूटी माला मेरे हवाले किया और बहुत कुच्छ बुरा भला कहकर अपनी दूकानसे मुझे धुधकार दिया! आप न्यायशील नरेश हैं मेरा उचित न्याय करिये नही तो अभी आपके सामने फांसी लगाकर आत्महत्या करूंगा।

ब्राह्मणकी व्यथा सुनकर महाराज पद्मसेनजीका हृदय कांप गया

तुरत उन्होने नगरीमें मुनादी करादी नगरभरके जौहरी सभामें उपस्थित हो गये ! महाराजकी आज्ञासे धनपाल भी पकड़ बुलाया गया ।

महाराजने करुणापूर्वक अपने मंत्रीसे कहा०—"विप्रकी कथा सुनकर हमारे हवास पैतरा कर गये ! इस नगरीमें ऐसे अनर्थका-होना मुझे स्वप्नमें भी संभव नहीं होता था ! ऐ मंत्री ! इस विप्रका शीघ्र न्याय करो नहीं तो आज हमारी जन्मभर की कमाई लुटती है ! अपयश तो लगेहीगा अंतमें ब्राह्मणकी जान भी जायेगी !"

महाराजकी बातें सुनकर मंत्री थोड़ी देरतक विचार सागरमें गोते खाने लगा ! उसे कहींसे भी इस अद्भुत मामलेके न्यायका सूत्रपात नहीं मिला निदान उसने महाराजसे निवेदन किया०—

महाराज ! जब आपकी बुद्धि इस मामलेमें काम नहीं करती तो मैं किस खेतकी मूली हूं ! इस मामलेका न्याय करना बहुतही कठिन है ! ऐसा पेचीला मामला न आंखों देखा और न कानो सुना इसका साखी देनेवाला भी कोई नहीं है केवल बुद्धिसे काम लेना जरा टेढ़ी खीर है ! यदि धनपालको चोर कहूं तो नगरी भरके जौहरी बुरा भला कहेंगे और यदि इस विप्रको झूठा ठहराता हूं तो यह आत्महत्या करनेपर उतारू है ! मेरी बुद्धि भी इस पेचीले मामलेमें घासचरने चली गयी !"

मंत्रीकी बातें सुनकर महाराज पद्मसेनजी बहुत ही उदास हो गये ! व्याकुलतासे उनके कलेजेमें पंखियां लग गई ! सारा बदन पसीनेमें डूब गया बड़ी देरतक मस्तक नीचा करके विचार सागरमें डुबकी लगा रहे ! कोई बुद्धि काम नहीं करती थी कि इस पेचीले मामले का निवटेरा किस प्रकार किया जाये !

बहुत कुच्छ शोच विचार कर महराजने मंत्री से पूछा०— भला यह तो बताओ कि इस नगरमें कोई भी ऐसा चतुर तथा प्रवीन है जो विप्रका न्याय दूधपानीवत करदे !"

मंत्रीने हाथ बान्धकर निवेदन किया०—"इस समय आपकी सभामें प्रायः सभी गुणी तथा बुद्धिमान् जन उपस्थित हैं इसी नगरमें एक महिपाल नामक सेठ हैं जिनके पास छ्यानवे करोड़ मोहर नगद मौजूद है ! वह भी आपकी सभामें बैठे हैं ! इनके पुत्र श्रीयुत सुखानन्दकुमार जो बड़े चतुर तथा ज्ञानी हैं केवल वही इस समय सभामें नहीं पधारे हैं, "

इतनी बातें सुनते ही महाराजने तुरत आज्ञा दी कि "सुखानन्द कुमारको शीघ्र सभामें हाजिर करो"

महाराज पद्मसेनजीकी आज्ञा सुनकर सेठ महिपाल जो सभामें बैठे थे उठ खड़े हुए और उन्होने करजोड़कर महाराजसे सविनय निवेदन किया—

"महाराज ! हमारी चूक क्षमा करिये तो मैं कुच्छ निवेदन करूं"

महाराज०—"सेठजी ! जो कुच्छ कहना है प्रसन्नतापूर्वक कहिये"

महिपाल०—"महाराज ! एक प्रतिष्ठित पुरुषको सिपाहियों द्वारा बुलाना आप ऐसे न्यायशाली तथा प्रजावत्सल नरेशको शोभा नहीं देता है ! कृपाकर उन्हे आदरपूर्वक बुलायें क्यों कि जब आप ही गुणग्राहकता का परिचय नहीं देगें तो दूसरे लोगोंसे क्या आशा करूं !

महिपालसेठकी बातें सुनकर महाराज लज्जासे संकुचित होगए और निरुत्तर हो कर उन्होने मस्तक नीचाकर लिया तत्पश्चात् उन्होने सुखानन्दके लेनेको पालकी भिजवाई ! राजकिंकर पालकीके साथ २ सुखानन्द कुमारकी बैठकपर पहुंचे !

जिस बैठकमें सुखानन्दजी बैठे थे वह बड़ा लम्बा चौडा तथा भड़कीला था कमरेके चारोंओर पीलपायेके खम्भेदार चौड़े ओसारे बने हुए थे ! कमरेमें चारोओर तीन २ दर्वाजे बने थे ! अगर इसे वारहदरी भी कहिये तो अनुचित नही है ! हर दर्वाजोंमें लाल मखमली पर्दे पड़े हुए थे जिनके बीचमें मोतीके गुच्छे लटक रहे थे और पर्दे कलाबतूनकी दोरियोंसे बन्धे हुए थे ! बाहरी खम्भे बेल बूटे और मीनेकारीसे पोते हुए अनुपम शोभा दिखा रहे थे ! कमरे के भीतर सफेद चान्दनी बिछी हुई थी जिसके एक सिरे पर कारचोबी के कामका लाल मखमली गद्दा बिछा हुआ था ! जिसपर दो कारसानी मखमलके कामदार मसनद धरे हुए थे ! यहीं पर एक मसनद के सहारे श्रीयुत सुखानन्दकुमारजी बैठे हुए थे ! इनकी सुन्दरता तथा ठाट बाट पर ध्यान देने से यह कमरा राजाके दर्बारकी शोभा प्रगटकर रहा था ! आसपास पचासों सभ्य पुरुष करीने से बैठे थे !

राजकिंकर पालकी लिये हुए पहुंचा और पालकी द्वार पर धरकर स्वयम् कमरे में गया और उसने विनयपूर्वक कुमार से निवेदन **किया०**—"महाराज पद्मसेनजी ने श्रीमान् को स्मरण किया है और जोहार कहा है ।"

सुखानन्द कु०—"कहो कुशल तो है? आज क्या है कि महाराजासाहेब ने दास को याद किया है?

राजकिंकर०—"आज के दिन दर्बारमें एक वड़ा ही पेचीला मामला पेश है! किसी की बुद्धि काम नही करती है! महाराज मंत्री तथा सभासद गण सभी विस्मित हो रहे हैं। उसी मामले के लिये आप को भी वुलाहा है।"

सुखानन्द कु०—(आश्चर्यसे) यह कैसा मामला है जिसमें सभी चतुर गण चकित हो रहे हैं!

इसके पीछे राजकिंकर पुरोहितके मालेकी सारी कहानी और धनपालकी धूर्तताका हाल कहकर बोला०—"भला बताइये इसका न्याय कैसे हो! न गवाही न साखी! धनपालको चोर कहा जाय तो जौहरी गण प्रलाप करें और ब्राह्मणको झूठा कहा जाय तो वह सन्ताप करे! हां कोई सामुद्रिक पढ़े वा भूतपिशाचका इष्ट करे तो मामलेका न्याय करे!"

किंकर की बातें सुनकर थोड़ी देर सुखानन्दजी चुप बैठे रहे और तरह २ की बातें शोचते रहे निदान एक मनसूबा गांठकर उठे और राजकिंकर से बोले०—"तुम थोड़ी देर यंही बैठो! मै अभी आता हूं तो दर्बारमें चलता हूं।"

किंकर कमरे में एक ओर बैठ गया और सुखानन्दजी तुरत अपनी हवेली में पहुंचे और उन्हो ने एक दासीसे कहा०—"तू धनपाल की स्त्री के पास जाकर कह कि मुझे धनपालसेठने भेजा है और ब्राह्मण की सच्ची माणिक की माला जो तूने धरी है उस को फौर न मांगा है"

इतनी बातें सुनकर दासी तुरत दौड़ी हुई धनपालकी हवेली में पहुंची और जिसप्रकार सुखानन्दजी ने सिखाया था उसीप्रकार उसने धनपाल की स्त्री से कहा। दासी की बातें सुनकर धनपाल की स्त्री ने अपना माथा पीटकर जीमें कहा "हाय! आखिर अपनी करनी आगे आई। हमारी बात पहले मान लेते तो यह दिन काहे को देखने में आता! अबजरूर कोई गुल खिला चाहता है! दासी की बातोंसे भारी खटका मालूम पड़ता है" आदि सोचने लगी फिर उसने दाईसे प्रगट कहा "ऐ दासी! इसमे सन्देह नहीं कि विप्रकी माला घरमें धरी है किन्तु सेठके आये विना मैं उसे किसी प्रकार दे नहीं सकती हूं क्योंकि वह एक भारी जलेतन आदमी हैं! यदि कोई ऊँच नीच पड़ा तो मेरे चोण्डेका एक बाल भी नहीं बचेंगे"

सेठानी की बातें सुनकर दासी सुखानन्दजी के पास लौट आई और उसने सेठानी की बातें कह सुनाई जिस से विप्र की माला का ठीक पता लग गया। इसप्रकार अपनी बुद्धि तथा चतुराई से माला का पता पाकर सुखानन्दजी पालकी में सवार हुए और बात की बात में महाराज पद्मसेनजी के दर्बार में पहुंच गये। सभा के सभीलोग इन्हे देखकर आनन्दित हो गये। महाराज ने भी इन की यथोचित अभ्यर्थना की और आदरपूर्वक सभा में आसन दिया।

संसाररूपी कमलसरोवर की वास पुन्य ही है। जिसप्रकार फूल की सुवास पवन में प्रस्तरित होकर पूर्ण ब्रह्माण्ड में (!) फैल जाती है उसीप्रकार पुन्यात्मा जीवों की कीर्ति तथा आदर भी त्रैलोकमें प्रस्तरित होते हैं। धर्मात्माजनो का जीवनधन धर्म ही होता है

अतः धर्मद्वारा संचित पुन्य अपना अलौकि प्रभाव प्रदर्शित करता है। धर्मात्मा जन जहां जाते हैं उन्हे वहीं आदर मिलता है। संसारमात्र के साधन पुन्य ही से सधते हैं। धन सम्पदा विद्या बल बुद्धि तथा अधिकारादि सभी पुन्यही के वशीभूत हैं। हमारे सुखानन्द कुमार ने पूर्वजन्म में असीम पुन्य सञ्चय किये थे उसीका प्रत्यक्ष फल आज उन्हें मिल रहा है। इस से बढ़कर और क्या सितारा चमकेगा कि महाराज पद्मसेनजी भी इन का आदर सत्कार कर रहे हैं। सुखानन्दजी का आदरसत्कार देखकर महिपालसेठ भी मनही मनमें प्रसन्न हो रहे हैं। सपूत को देखकर सभी पितामाता प्रसन्न हुआ करते हैं और कपूत की मिट्टी घर बाहर तमाम ही खराब है। एक सुपुत्र सौ कुपुत्रोंसे कहीं अच्छा है क्योंकि जिसतरह एक भी अच्छे वृक्ष से जिस में सुन्दर गंधयुक्त फल होते हैं सारा बन सुवासित हो जाता है उसी तरहर एक सुपुत्र से कुलमात्र की श्री बढ़ जाती है।

महाराज पद्मसेनजी ने सुखानन्द कुमार से कहा०—

"सेठसाहेब! आप को मैंने इस लिये कष्ट दिया है कि आप इस विप्र के मामले का यथोचित न्याय कर दें। धनपाल सेठ ने इस विप्र की सच्ची माला छलसे बदलली है। विप्र का कोई भी गवाही साखी देनेवाला नहीं है। यदि धनपाल को चोर ठहराऊं तो नगर क जौहरी असन्तुष्ट होंगे और यदि विप्रको झूठा कहूं तो यह अपना प्राण देनेपर उतारू है! अजब बेढब मामला है! कोई बुद्धि काम नहीं करती है! आप इस नगर में चतुर और ज्ञानी हैं—मैं जानता हूं कि इस मामले का निवटेरा आप ही कर सकेंगे।

यदि आप इसका समुचित न्याय कर दें तो मेरे मुंहकी लाली रह जाय नहीं तो यहांसे उज्जैनी नगर तक मेरी बदनामी हो जायगी और संसार मुझे अन्धन्यायी ठहरायेगा! बस मेरी लज्जा आप ही के हाथ है।"

महाराज की बातें सुनकर सुखानन्दजी ने नम्रता से मस्तक नीचा कर लिया और वह थोड़ी देर तक शोचते रहे तथा फिर उस ब्राह्मण से बोले०—"महाराज! वह झूठी माला जरा मै भी देखूं!"

विपत्ति के मारे ब्राह्मण का हृदय हाथों उछल रहा था। दर्बार का रंग देखकर उस का मन मुर्झा गया था और माला पाने से एक प्रकार निराश ही हो गया था किन्तु सुखानन्दजी को देखकर उस के हृदय की आशालता फिर लहलहा गयी। मानो सूखे धानों में पानी पड़ा अथवा डूबते को तिनके का सहारा मिला! उस ने जलदी से झूठी माला अपने एक पट्टेकी गिरह से निकाली और सुखानन्दजी के हाथ में दे दी।

सुखानन्द कुमार ने माला लेकर उलट पुलट कर देखी और फिर महाराज से कहा०—"राजन्! थोड़ी देर के लिये मैं पुनः अपने घर जाता हूं और लौटकर विप्र का न्याय कर देता हूं! आशा है कि जबतक मैं लौट कर नहीं आऊंगा तवतक सभा विसर्जन नही होगी और सभासदों में से कोई भी उठने नहीं पायेगा!"

इतना कहकर सुखानन्दजी महाराज की आज्ञा लेकर पुनः पालकी में बैठे और दौड़ा दौड़ी अपनी हवेली में पहुंचे। जिसदा-

Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी.

अथवा

(जैनसमालोचक)

मासिक पत्र.

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा संपादित व प्रकाशित।

चतुर्थ भाग	पौष वीरनिर्वाण संवत २४३४।	अंक ३०, वां

नियमावली।

१ इस पत्रका वार्षिक मूल्य डांकखर्चसहित अग्रिम १।) और पीछेसे १।-) रु० है। छह महीनेतक जिनका मूल्य आजायगा वह अग्रिम समझा जायगा। फुटकर अंकका मूल्य ।) आने।

२ यह पत्र विना मगाये भी अनेक महाशयोंके पास भेजा जाता है। प्रथम अंक पहुंचनेपर यदि कोई महाशय कार्डद्वारा सूचना देंगे अथवा दूसरा अंक लौटा देंगे तो उनका नाम काट दिया जायगा। जो महाशय न तो नाम काटनेके लिये कार्ड भेजेंगे और न दूसरा अंक लौटावेंगे वे महाशय पक्के ग्राहक समझे जावेंगे। और उनको ५ अंक भेजकर छठा अंक वी. पी. द्वारा भेजा जायगा।

३ जो आर्ट साफ २ हिंदीके सिवाय उर्दू, अंगरेजी व मराठी वगैरहमें लिखे भेजेंगे उनका तामील नहिं होगी.

पत्र व मूल्य भेजनेका पता--पन्नालाल जैन,
जौंतकरकी चाल पो. कालबादेवी (मुंबई.)

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

ॐ

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

चतुर्थ-भाग	पौष्य वीरनिर्वाण संवत् २४३४ ।	अंक ३९ वां.

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

जेन्टलमेनोंके खेल ।

प्रतिवर्ष बडे दिनोंकी छुट्टियोंमे अंगरेजी पढे जेन्टलमैन बाबु लोगोंका राज्य हो जाया करता है । इन दिनोंमें ये लोग निकम्मे रहते हैं सो हरसाल नये २ खेल किया करते हैं! अबकी बार उनके खेलोंकी रंगभूमि सूरत शहर था । सबसे बडा खेलघर तो नेशानल कांग्रेस है इसमें अबकी बार वाक्युद्धके अतिरिक्त लठ्ठयुद्ध, कुरशीयुद्ध, जूतायुद्ध, गुंडायुद्ध वगैरह भी बडे मजेके हुये । बडे २ राजनीतिज्ञोंने कुरसी जूते और लठ्ठोंका प्रसाद पाया । फल यह हुआ कि एक कांग्रेसकी दो कांग्रेस हो गई । इसकारण अगले वर्ष और भी उत्तमोत्तम खेल होंगे । इसके पश्चात भारतवर्षीय धर्मोंको सुधारनेवाली सोशियल रिफार्मर कान्फरेन्स, महिलाकान्फरेंस, दयानंदी कान्फरेंस, क्रिश्चियन कान्फरेंस आदि अनेक प्रकारकी कान्फरेंसोंके बालखेलोंके साथ २ हमारे यहांके जैनी जंटेलमेनोंकी '**जैनयङ्गमेन्सयेशोसियेसन**' के खेल भी दो तीन दिन तक हो गये । इन सब सभावोंमें हरसाल अपनी समाजोंके सुधारकेलिये प्राय: ये ही प्रस्ताव पास होते है कि-स्त्रियोंमें पड़दा घूंघटा होता है सो उठा दो, अंगरेज पारसियोंकी तरहैं हमारी स्त्रियें भी बूट गौन पहनकर पुरुषोंके साथ हवा खानेको जाया करें । मरदोंकी स्कूलोंमें पढ कर ये भी डाक्टरी, वकीली, माष्टरगिरी, पियानोबाजी वगैरह विद्याओंमें परीक्षा देकर पास हुवा करें। देशकी

जितनी विधवायें हैं वे रंडुओंके साथ व्याह दी जाया करें—हिंदुस्थानमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सूद्र ये चार जातियां हैं और उनके अवान्तर भेद हजारों हो गये हैं सो सब जातिभेदको तोडकर इसाइयोंकी तरह एक जाति हो जांय—'धर्म' नामका जो पदार्थ हिंदुस्थानियोंके चित्तमें अनादिकालसे घसा हुआ है, उसको शीघ्रही जड़मूलसे उखाड़कर फेंक दिया जाय. क्योंकि इसी धर्मने ही भारतवर्षमें सबसे राज्याधिकार छीनवाकर गुलाम बना दिये। खास करके जैनबौद्धोंके दयाधर्मके प्रचारने तो भारतवर्षियोंको सर्वथा ही नपुंसक बना दिया. ये लोग चिवटी तकके मारनेमे महापाप होता है ऐसा कहते हैं इत्यादि नानाप्रकारके पापकार्योंके प्रस्ताव पास होते हैं। सो **अबकी बार** भी धड़ाकेके साथ हो गये।

सम्मेदशिखरजीकी रक्षाके प्रस्तावका विरोध।

अबकी बार सूरतकी सर्व जातीय सभामें (कांग्रेसमें) सम्मेद शिखरजीकी रक्षाका प्रस्ताव रखवानेके लिये बंबईके सुयोग्य श्वेताम्बरी नेता गणोंने सुयोग्यविद्वानोंको कांग्रेसके डेलीगेट बनाकर सूरतको भेजे थे परंतु खेद और परमखेद है कि हमारी दिगंबर जैनसभाके शिरोरत्न **दानवीर सेठ माणिकचंदजी जे. पी** महाशयने तथा उनके प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीयुत बाबू शीतलप्रसादजी लखनवी आदि खुशामदी महाशयोंने श्वेताम्बरी डेलीगेटोंके साथ बड़ा भारी विरोध किया सुनते हैं परंतु श्वेताम्बरी डेलीगेटोंने उन महाशयोंका कुतर्कोंका खंडन करके अपने मनसूबेको कायम रक्खा तब लाचार होकर दानवीर सेठ साहबने कलकत्तेके धन्नू बाबू सोलीसीटर साहबको तार भेजा और उसमें लिखा कि-तुम इसी तरह बाबू बद्रीदासजीसे मिलकर दोनों सभाजोंकी तरफसे तार भिजवावो कि "सम्मेदशिखरजीका प्रस्ताव कांग्रेसमें नहि रक्खा जावे ऐसा दोनों भाइजोंकी सम्मति है" जब यह तार जैनयङ्गमेन्स एसोसियेसन और सूरतके श्वेताम्बरी नगरसेठके पास आया तो प्रस्तावके अनुमोदक श्वेताम्बरी दिगंबरी दोनों ही प्रकारके डेलीगेट निरुत्साह होकर चुप हो गये! यह नोट हम एक श्वेताम्बरी डेलीगेट और दो दिगंबरी डेलीगेटोंकी मुख जबानी चर्चा सुनकर लिखा है यदि यह बात सत्य है तो पाठक महाशयोंको समझ लेना चाहिये कि अब सरकारके विरुद्ध लड़ झगड़कर तीर्थराज सम्मेदशिख-

र्जीकी रक्षा करना असंभव है क्योंकि हमारे अग्रगण्य खुसामदी सेठ लोगोंको तो अपनी वर्तमान पदवी छिन जानेका भय है और नये उम्मेद्वार सेठों व बाबू लोगोंको रायबहादुर, सी. आई. ई., वकीली, मुखतयारी आदि पदवी पाने की आशा लगी हुइ है तब यह बताइये कि सरकारके विरुद्ध लड़झगड़कर सम्मेदशिखर तीर्थराजकी रक्षा कैसैं कर सक्ते हैं? अब तो हाथमें माला लेकर घरके कौनेमें बैठकर भगवान्का नामस्मरण करना ही श्रेष्ठ है।

महासभा और बंबई प्रान्तिक सभाका कर्तव्य।

अबकी बार **भारतवर्षीय जैनधर्म संरक्षणी महासभाका वार्षिक नाटक** मध्यप्रदेशके बुंदेलखंडके प्रसिद्ध तीर्थ कुंडल गिरिपर होनेवाला है और **बंबईजैन प्रान्तिकसभाका वार्षिकनाटक** गुजरातके एक कौनेमें आये हुये **पावागढ** नामके तीर्थपर होनेवाला है। और हरसालकी तरह कुछ पुराने कुछ नये २ खेलोंके प्रस्ताव अबकी बार भी दो तीन दिनमें पास हो जांयगे। **जैनगजट** और **जैनमित्र**की इच्छा है कि अबकी बार दोनों ही सभाओंका सुधार होकर उनमें कुछ कामके प्रस्ताव (व्याख्यानी प्रस्ताव नहीं, वास्तविक कामकरनेवाले) भी पास हो जांय तो जैनजाति और जैनधर्मका कुछ उपकार हो सकता है।

महासभा और बंबई सभामें क्या क्या प्रस्ताव होने चाहिये।

यद्यपि महासभा और प्रान्तिक सभामें हम सरीखोंकी प्राथना नगारेमें तूतीकी आवाज समझी जाती है तथापि प्रत्येक जैनका हक है कि वह अपने हृदगत भावोंको अपनी प्रांत व देशकी सभामें प्रस्ताव रूपमें प्रवेश करनेकी प्रार्थना कर सके इसी व्यक्तिगत सत्त्वके अधिकारसे हम भी दो दो प्रस्ताव दोनों सभावोंमें रखनेकी सूचना करते हैं।

महासभाके महाविद्यालयको मथुरामें रहते प्रायः एक जुग हो गया या मथुराको उन्नतिका स्थान न समझकर हमारे

महाविद्यालय और बंबईके विद्यालयका स्थान परिवर्तन। सुधारक बाबुलोगोंने सहारनपुरको महा उन्नतिकर स्थान समझकर जबरदस्तीसे सहारनपुर ले गये थे परन्तु वहांके प्रतिष्ठित पुरुषोंके मुखसे सुना गया कि–वहां पर मथुराकी अपेक्षा भी विद्यालयकी अवनति हुई है–और पढाईका समीचीन प्रबंध नहिं होनेके कारण अच्छे २ विद्यार्थी काशी मुरैनाको चले गये। अब विद्यार्थी हैं वे नीचे दरजोंमें पढनेवाले हैं–सो ठीक ही है–कि जिस जगह संस्कृतविद्याकी चर्चाही नहीं अहोरात्र म्लेच्छ भाषाकी ही चर्चा होती रहती है–उस जगह पवित्र संस्कृत व स्याद्वाद विद्याकी उन्नति कैसें होय? अस्तु आज तक जो कुछ हुआ सो हुआ–यदि सवेरेका भूला सामको घर आ जावै तो उसे भूला हुआ नहीं कहते इसकारण अब महासभाके नेताओंको चाहिये कि–महाविद्यालयसे जो रुपये प्रतिवर्ष विद्याके नामसे खर्च होते हैं वे वास्तविक विद्योन्नतिमें खर्च किये जांय–और उसका एकमात्र उपाय यह है कि—**महाविद्यालयका स्थान सुपार्श्वपार्श्वनाथ भगवानकी पवित्र जन्मभूमि चिरकालसे संस्कृतविद्याकी रंगभूमि काशीनगरीमें बदल देना चाहिये।** क्योंकि संस्कृतविद्याकी उन्नति जिस समाजको करना हैं उसके लिये एकमात्र सर्वोत्तम स्थान काशीनगरही है। इसविषयमें हमने तथा अनेक महाशयोंने गतवर्षोंमें सयुक्तिक इस स्थानके फायदे बतलाये हैं, और बतानेके लिये तत्पर हैं। परन्तु इस समय इस विषयमें हम केवल दोही बात पेश करते हैं। एक तो यह है कि–अबके अधिवेशनपर जो लड़के महाविद्यालयमें संस्कृतसे सर्वथा अनभिज्ञ नया भरती होकर चार वर्षसे पढ रहा हो उसको लीजिये और एक इसीप्रकारसे नये भरती हुये दो वर्षके पढे हुये काशीस्याद्वाद पाठशालाके विद्यार्थीको लीजिये। और पांच निष्पक्ष अन्यमती संस्कृतज्ञ विद्वानोंको मध्यस्थ बनाकर उनके बीचमें उन दोनों विद्यार्थियोंका व्याकरण काव्य साहित्यादि पठित विषयोंमें शास्त्रार्थ करादीजिये यदि काशीपाठशालाका विद्यार्थी महाविद्यालयके विद्यार्थीको परास्त करदेवै तो समझ लीजिये कि–**काशीमें ही संस्कृतविद्याकी उन्नति हो सकती है**। दूसरे–जो महाशय संस्कृतविद्याकी शिक्षाके लिये इस सर्वोत्तम स्थानके कट्टर विरोधी हों, वे १५ दिनके लिये हमारे साथ काशीमें रहकर इस बातका निर्णय करैंगे तो उनको अवश्य ही स्वीकार करना होगा कि–**संस्कृत वि-**

द्याकी उन्नतिकेलिये भारत वर्षमें कोई स्थान है तो वह एकमात्र काशी ही है । जब इसप्रकार परीक्षा करने या महा सभा और बंबईसभाको खातरी होजाय तो महाविद्यालयका स्थान तत्काल ही काशीको बदल दिया जावै काशीस्याद्वाद पाठशाला और महाविद्यालयका फंड एकत्र करके–और दोनों नामोंको विसर्जन करके '**भारतवर्षीय स्याद्वादविद्यालयकाशी**' ऐसा नाम निर्देश किया जावै । और सहारणपुरमें जो मासिक वेतन–अध्यापकोंके वेतनमें व्यर्थ खर्च होता है सो छहछह रुपये महीनेके स्कालर्सिपोंके लिये नियत करके तथा पचीस तीस स्कालरसीपोंका और भी प्रबन्ध करके बुंदेलखंडकी हिंदी स्कूलोंके पास हुये तीक्ष्णबुद्धिके ४०–५० नये विद्यार्थी भरती करके धडाकेके साथ काम चलाना चाहिये—अध्यापक इस समय स्याद्वादपाठशालाओंमें जो हैं वे बहुत हैं । वे ही दो सौ विद्यार्थियोंको पढा सक्ते हैं. हां एक अंगरेजीका विद्वान अवश्य रखना चाहिये जो नित्य एक घंटा अंगरेजी लिटरेचर विषय मात्रकी शिक्षा देता रहै । जिससे अंगरेजीसे संस्कृत वा हिंदीमें और संस्कृत और हिन्दीसे अंगरेजीमें ट्रान्सलेसन कर सकैं। और वम्बईके संस्कृत विद्यालयमें ४ विद्यार्थियोंके लिये आजकल अनुमान १२५) रुपये मासिक खर्च किये जाते हैं. इतने दिन आशा थी कि महाविद्यालय खुर्जाविद्यालयादिमें निम्नश्रेणीकी विद्या पढकर वे सब विद्यार्थी उच्चश्रेणीकी विद्या पढनेके लिये बम्बईमें आवैंगे परन्तु खेद है कि-उच्चश्रेणीमें पढनेवाले विद्यार्थी तो तब तैयार हों जब कि महाविद्यालयादि पाठशालाओंमें पढाईका समीचीन प्रबंध हो, सो आजतक इस आशामें बम्बईवालोंने हजारों रुपये प्राय: व्यर्थ ही नष्ट कर दिये और आशा पूरण नहीं हुई, और न होनेकी उम्मेद है–अत: बम्बई सभाको भी उचित है कि १२५) मासिक खर्चको उठाकर वर्तमानमें पंडित श्रेणीमें पढनेवाले विद्यार्थियोंके लिये दश दश रुपयोंके स्कालरसिप नियत करकें इन चार विद्यार्थियोंके सिवाय जितने विद्यार्थी **भारतवर्षीय स्याद्वाद विद्यालय काशीमें** अपनी ओरसे अर्थात् (बम्बईसभाके विद्यार्थी ऐसा) नाम करकें भेज दें । फंड यहांका यहां ही रहै क्योंकि यहांके नेताओंमें किसी समय फिर भी यहां संस्कृतविद्यालय स्थापन करनेकी कुलबुली उठै तो जब चाहें तब अपने विद्यार्थियोंको बम्बई (स्वर्गपुरीमें) बुलाकर दानवीर सेठजीकी पहिली स्वर्गमें अर्थात् जैनबोर्डिंगस्कूलके दरवाजेपर संस्कृतमहाविद्यालयका साइनबोर्ड लगा सक्ते हैं । आशा है कि महासभा और बम्बईसभाके नेतागण तथा जैनगजट

जैनमित्र हमारे इस प्रस्तावपर अवश्य ही अपने २ विचार प्रगट करकें अबके अधिवेशनोंपर इस प्रस्तावको पास करावैं ।

महासभा और बंबईसभाके लिये दूसरा अत्यावश्यकीय प्रस्ताव ।

इसके अतिरिक्त महासभा और बंबईसभामें सबसे पहिले और सबसे अति लाभदायक और अत्यावश्यकीय प्रस्ताव है तो एक मात्र यह प्रस्ताव है कि—सैंकडों वर्षोंसे सैकडों भंडारोंमें गलती सड़ती कंठप्राणगता पतितपावनी श्रीमती जिनवाणी माताका जीर्णोद्धार करनेके लिये एक **भारतवर्षीय स्याद्वादग्रंथालय और उसके लिये भंडार स्थापन करना है** । चाहे कोई भी प्रस्ताव पास न हो बल्के महाविद्यालय वगेरहका स्थान परिवर्तन वा सुधारका प्रस्ताव न हो तो न सही परन्तु सबसे पहिले यह कार्य तो अवश्य ही पेश करके अबकी शाल अवश्य ही स्थापन किया जावै क्योंकि यह कार्य ही समस्त धर्मकार्योंकी जड़ है. दूसरे हमारे दानवीर सेठोंने भी सज्जनोत्तम बाबू देवकुमारजीके सन्मानार्थ वा अपमानार्थ सरस्वतीभंडार स्थापन की जो सभायें गतवर्ष मुम्बईमें की थीं उनमें भाकित कर दिया है कि–"अब इसका समय आगया है" इत्यादि । सो गतांकके लेखसे सबने जान ही लिया होगा. सो इस विषयके प्रस्ताव करनेके लिये हम अपनी समाजके पुराने और नये समस्त नेताओंसे हाथ जोडकर प्रार्थना करते हैं कि "**अबके अधिवेशनोंमें सबसे पहिले हमारी परमहितकारिणी पतितपावनी जिनवाणीमाताके जीर्णोद्धारार्थ अवश्य ही कुछ न कुछ स्थायी प्रबंध करना चाहिये** । इस विषयमें इस अंकमें क्रमिक लेखमें भी आलोचना की गई है सो पाठक महाशय उसे एकान्तमें बैठकर पांच सातवार अवश्य ही विचारपूर्वक बांच जावैं ।

जिनवाणी माताका जीर्णोद्धार

और

सरस्वतीभंडार ।

(२)

पाठक महाशय ! गतांकमें जिनवाणी माताके जीर्णोद्धारके विषयमें जो जो प्रबंध हमारी सभावोंने किये वे कैसें निष्फल गये सो बताया हो गया था। अब हम लोगोंको क्या करना चाहिये ? इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता है सो आप लोगोंने इसका अवश्य ही विचार किया होगा यदि कोई महाशय इस विषयके अपने विचार हमारे पास भेजैंगे तो सहर्ष जैनहितैषीमें प्रगट करकें उसपर अपनी सम्मति प्रगट करैंगे, आज हम अपनी सम्मति आपके सन्मुख पेस करते हैं, आशा है कि हमारे नेतागण इसपर अवश्य ही विचार करकें कुछ कार्यारंभ वा महासभा तथा प्रान्तिकसभामें इसका प्रस्ताव करैंगे:—

हमारी समझमें प्रथम ही तो अबके महासभा तथा बंबईप्रान्तिकसभाको चाहिये कि–इस विषयमें वादविवाद पूर्वक विचार करकें १५ विद्वानोंकी एक कमेटी नियत कर दी जाय और उसका तथा भारतवर्षीय सरस्वतीभंडारको नियत करकें उसका दफ्तर बंबईमें या मंत्री तथा सभापतिका स्थान जहां हो वहीं रक्खा जाय और उस कमेटीसे नियमावली बनवाकर सबसे पहिले कमसे कम एक लाख रुपयेका भंडार संग्रह किया जाय (भंडार संग्रहकरनेके उपाय हम आगें बताते हैं) और उसके मूल द्रव्यसे ही निम्नलिखित प्रकारसे कार्य प्रारंभ किया जाय—

उक्त कमेटीका मंत्री वैतनिक वा अवैतनिक हो परंतु जो अपने गृहकार्यसे निराकुल होकर इस कार्यमें तन मनसे अहोरात्र परिश्रम करनेवाला हो नियत होना चाहिये, और सभापति भी प्राय: ऐसा ही हो और विद्वान् होना चाहिये। इनकै सिवाय जिनवाणीके पूर्णभक्त दो विद्वान् उपदेशक यदि मिलै तो एक अवैतनिक नहीं तो दोनों ही वेतनभोगी होना चाहिये और वे ऐसे हों कि परदेशके क्लेशोंको (जो कि राजाओंको भी होते हैं) सहनेमें वीर हों-और भट्टारकादि अज्ञानी जीवोंको भी खुशामद करकें उनको जिनवाणी माताके जीर्णोद्धारार्थ प्रयत्न करसके ऐसे हों। दोनोंको जहां २ प्राचीनभंडार हो उनकी सूची करनेकेलिये–

तथा जो कोई अलभ्य ग्रंथ हो मंत्रीकी आज्ञापूर्वक मूल्य वा विना मूल्य सरस्वती-भंडारकी भेटमें प्राप्त हो सके संग्रह कर करके भेजनेके लिये भेजा जाय । वे जगह २ के भंडारोंकी दो सूची बनाकर एक सरस्वतीभंडारके कार्यालयमें और एक उसी भंडारके अधिकारियोंको देकर उस भंडारकी रक्षाका समीचीन प्रबंध स्थानीय पंचोंसे वा भारतवर्षीय सरस्तीभंडारसे कर दिया करैं । और अपूर्व अलभ्य ग्रंथ गलसड़कर नष्टप्राय होने लगा हो उसकी दूसरी प्रति स्थानीयभंडारमें या भारतवर्षीय सरस्वतीभंडारमें कराकर विराजमान करनेका प्रबंध कर दिया करें ।

इधर दफतरमें महामंत्रीके हाथ नीचें संस्कृतज्ञ विद्वान् ही क्लार्क रक्खा जाय जो वि.-सरस्वतीभंडारकी संभाल हिसाब व मासिक रिपोर्ट पत्रव्यवहार वगेरहका सब कार्य बडी मुस्तैदीके साथ करता रहै । इसप्रकार तीन वर्ष तक यह कार्य चलाकर तीन वर्षमें २५०००) हजार रुपये इस कार्यमें लगाया जाय अर्थात् प्रतिवर्ष आठ हजार रुपये जिनवाणी माताके जीर्णोद्धारके प्रबंधमात्रमें लगाया जाय ।

इसके सिवाय २५ हजार रुपये लगाकर बंबई या शोलापुरमें एक प्रेस खोला जाय जिसकेद्वारा जिसजिस ग्रथके प्रकाश और प्रचार करनेसे जाति धर्मकी प्रभावना हो तथा विद्योन्नति अर्थात् स्वाध्यायादिसे ज्ञानोन्नति होनेमें सहायक हों उनको मूल वा सटीक वा भाषाटीका सहित छपाकर प्रकाशित करनेका कार्य प्रारंभ किया जाय और उस प्रेसमें जितने कार्यकर्ता हों वे सब जैनी हो तथा स्याही बेलन वगेरह सब पवित्र वस्तुओंके बने हुये हों । ऐसा प्रेस एक मैनेजरके द्वारा मंत्री और सभापतिकी देखरेखके नीचें खोला जाय और जीर्णोद्धारका कार्य बड़े झपाटेके साथ चलाया जाय ।

अब रहे पचास हजार रुपये सो वे ग्रंथोंके छपानेमें कागज वगेरहमें लगाये जांय और सरस्वतीभंडारमे एक तरफ उन मुद्रित ग्रंथोंके विक्रयार्थ दफतर खोलकर धनसंग्रह किया जाय और उत्तरोत्तर काम बढाया जाय इस कार्यालयके चलनेसे फिर उस एक लाख रुपयेके अतिरिक्त किसीसे भी याचना करनेकी जरूरत नहीं रहैगी क्योंकि इस कार्यालयसे ही हजारों रुपयोंकी आमदनी होती रहैगी जिससे सरस्वतीभंडारके सिवाय विद्यालयादि धर्मकार्योंमें भी पूर्ण सहायता हो सकैगी ।

इसके सिवाय इस कार्यके चलानेवाली जो १५ विद्वानोंकी कमेटी बनायी जाय

उसमेंके अथवा अन्य विद्वानोंकी आठ विद्वानोंकी एक कमेटी अर्थात् एक रजिष्टर कार्यालय बनाया जाय वे सब विद्वान् अच्छे वेतन देकर रक्खे जांय। उनमें कमसे कम ५ विद्वान्–कार्यालयमें उपस्थित होकर जो ग्रंथ मुद्रित कराकर प्रचार करनेका हो उसकी पांच प्रति लेकर बैठें और एक विद्वान् सबको एक प्रतिसे सुनाकर सबकी सम्मतिसे शुद्धकरकें तैयार करें–फिर उसीग्रंथपर आठों विद्वानोंके हस्ताक्षर वा मुहर कराकर छापखानेमें दिया जाय। इसी प्रकार जो ग्रंथ अनुवादित होकर आवै उसको भी वे विद्वान् आद्योपांत सुनकर उसे छपाने लायक पासकरकें शुद्धताकी साक्षी व उसपर मुहर लगादी जाय और उसे रजिष्टर करकें फिर छपनेको दिया जाय। इसीप्रकार अन्यान्य छपानेवाले भाई भी जो जो ग्रंथ छपाना चाहैं वह ग्रंथ शुद्धकरकें रजिष्टर्ड करनेकेलिये इस कार्यालयमें भेजैं। जब इस कार्यालयके विद्वान् देख सुनकर संशोधनपूर्वक पास (रजिष्टर्ड) करदें तब वह ग्रंथ छपायाजाय इसप्रकार बाहरके भाई जो ग्रंथ रजिष्टर करवाकर मंगावें उनका संशोधनादिका योग्य परिश्रम उनसे लिया जावै–इसप्रकार जो ग्रंथ इस कार्यालयसे रजिष्टर्ड हो जांय वे ग्रंथही समाजमें प्रचार हों इनसे भिन्नग्रंथोंका प्रचार नहीं होवै। क्योंकि जो भाई व्यापारार्थ ग्रंथ प्रकाश करेंगे वे शुद्धाशुद्ध व योग्यायोग्यका विशेष विचार नहीं करते वे सबही योग्यतासे शुद्ध ग्रंथ प्रकाशित करने लग जांयगे और अशुद्ध ग्रंथोंका प्रचार सर्वथा बंध हो जायगा।

अब इन सब कार्योंका मूलकारण द्रव्य है सो द्रव्यका भी कमसे कम एक लाख रुपयेका प्रबंध हो तब उक्त कार्योंका प्रारंभ हो सक्ता है सो एक लाख रुपये संग्रह करनेका उपाय यह है कि—प्रथम तो जो कमेटी १५ विद्वानोंकी बनायी जाय उसमेंसे ५ या ८ विद्वान् तथा दो चार धनाढ्य महाशयोंकी डेपुटेसन पार्टी बनायी जाय और जहां २ धर्मात्मा धनाढ्यगण हों उन २ शहरोंमें तीन तीन महीनेका दौरा करकें चंदा एकत्र किया जाय इसप्रकार करनेसे संभव है कि—शीघ्र ही एक लाख रुपया एकत्र हो जायगा। जब पचीस हजार रुपये एकत्र हो जांय तब प्रवन्ध खातेका कार्य तो प्रारंभ कर ही देना चाहिये. और आगेको इसीप्रकार चंदेका कार्य प्रारंभ रक्खा जावै।

इस भारतवर्षीय सरस्वतीभंडारके लिये उदारता दिखानेवाले धनाढ्यगण बहुत कम निकलैंगे क्योंकि हमारे धनाढ्यगण अपनी अज्ञानतासे रथयात्रा मेले प्रतिष्ठादिमें रुपये लगानेकी बराबर इस कार्यमें पुण्यसंग्रह वा लाभ कम

समझते हैं. तथा रथयात्रा व प्रतिष्ठादिक करानेसे—उनको संगही, सवाईसंगही, सेठ, श्रीमन्तसेठ, आदि पदवियें मिलतीं हैं सो हमारे समझमें ये पदवियें वा इनसे भी अधिक महत्वप्रकाश करनेवाली अन्यान्य पदवियें महासभादि सभाओंसे सम्मत कराकर निकालना चाहिये जैसें कि—बुंदेलखंडमें एक रथ चलावै तो उसे संगहीकी पदवी मिलती है इसीप्रकार जो महाशय जिनवाणीमाताके जीर्णोद्धारार्थ १० हजार रुपये प्रदान करैं उनको **संगही**, पचीस हजार रुपये प्रदान करैं उनको **सवाईसंगही**; ३५ से पचास हजार तक प्रदान करैं उनको **श्रीमंतसेठ**की पदवी महासभाके अधिवेसनपर प्रदान कियी जावै. अथवा इनकी जगह जैनजात्युद्धारक, जैनिधर्मोद्योतक, जैनधर्मोद्धारक आदि कोई भी प्रकारकी पदवी देनेका नियम बनाया जावै. इसप्रकार करनेसे संभव है कि अनेक महाशय अपनी जिनवाणीमाताके भक्त अपनी उदारताका परिचय देनेवाले प्रगट हो जांयगे।

इसके सिवाय **तीसरा उपाय** यह है कि हमारी समाजके बडे २ व्यापारी गणोंकी दुकानोंसे जो कोई छोटा व्यापारी माल खरीद विक्री करते हैं तो उससे कमसे कम एक आना सैकडा धर्मादेका काटकर धर्मादैखातेमें जमा करते हैं. सो इस धर्मादैखातैमें हजारों रुपये सेठोंकी दुकानोंपर जमा हो जाता है। अनेक धर्मात्मा भाई तो प्रतिवर्ष इस धर्मादे खातेमें जो कुछ जमा होता है उसको मंदिरजी वगेरह धर्मकार्योंमें लगा कर खाता बराबर कर देते हैं परन्तु अनेक बडे २ सेठ लोग इन खातोंमे हजारों रुपये जमा होनेपर भी एक पाई भी धर्मकार्यमें नहिं लगाते—सो यह सब धर्मादेका रुपया सेठ लोग डकार जाते हैं और जिस समय दुकानमें घाटा पड़ता है उस समय यह पैसा भी घाटेकी पूर्तिमें लग जाया करता है सो यह बडा भारी अन्याय है वास्तवमें इन धर्मादेके रुपयों पर उन व्यापारियोंको कोई भी अधिकार नहीं है यदि अधिकार है तो इतना कि—"हमारी दुकान पर इतना पैसा धर्मादे खातेमें इकट्ठा हुआ है सो यह लेकर चाहे जिस धर्म कायमें लगादें ऐसा—कह कर प्रतिवर्ष स्थानीय पंचोंको सोंप दिया करैं। पंचलोगोंको चाहिये कि सबका पैसा एकत्र होनेपर—सबकी सम्मतिमें जिस आवश्यकीय धर्मकार्यमें लगना चाहैं लगा दें। ऐसी प्रथासे कोई भी स्थानीय धर्म कार्य नहीं विगड़ने पाता इसी लिये यह धर्मादा खाता नियत किया गया था परन्तु कालके

प्रभावसे हमारे धनाढ्य महाशय गण पंचोंको तो कुछ चीज ही नहिं समझते और धर्मादेके पैसे पर अपना ही मौरूसी हक समझकर चाहे जिसप्रकार अपने ही भोगविलासमें लगा लेते हैं पैसा तो छोटे २ गरीब व्यापारियोंसें धर्मादिकार्योंके लिये लिया गया और नाम अपनी इच्छानुसार चाहे जिस अनावश्यकीय धर्म कार्यमें लगाकर अपनी मानकषायको पोषा अथवा अपना नाम यश बढाया अथवा अपने पास ही रखकर डकार लिया सो यह अन्याय अब रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये। इसकेलिये स्थानीय पंच दवाव डालकर धर्मादेखातेका सब रुपया अपने कबजेमें लेकर वे पंच चाहे जिस आवश्यकीय कार्यमें लगावें सो इससमय जितनी आवश्यकता पतितपावनी तीन लोकके प्राणीमात्रकी हितकरनेवाली जिनवाणीमाताके जीर्णोद्धारकी जितनी आवश्यकता है उतनी किसी भी धर्मकार्यकी आवश्यकता नहीं हैं, क्योंकि इस जीर्णोद्धार कार्यके सिवाय जितने धर्मकार्य हैं उन सबकी जड जिनवाणी माता है यदि इसका बचाव करलेंगे तो यह माता समस्त धर्मकार्य जो उसके बाल बच्चे हैं उन सबकी रक्षा स्वयं करलेगी इसलिये स्थानीय पंचोंको पूर्वकालकी तरह अपनी २ पंचायतीको मजबूत करकें अपनी २ जगह व्यापारियोंके धर्मादेके खातेका हिसाब लेकर आइंदैको प्रतिवर्ष जो रुपया एकत्र हो पंचोंके हाथमें आता रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये दूसरे अनेक व्यापारियोंने धर्मादेखातेकी कटोती काटना भी छोड दिया है सो उनको कटोती काटनेका आदेश किया जावै। तथा जिस २ दुकानपर या जिस २ के व्यापारमें जितने रुपयोंका वर्ष भरमें नफा हो उस नफेमेंसे एक पैसा रुपया धर्मादेखातेका जमा करकें शेष रुपयोंको अपने समझने चाहिये। भाइयो! हमारे आचार्योंने तो हम लोगोंको धर्मकार्य चलानेकेलिये तीसरा छट्ठा तथा दशवा हिस्सा नफा धर्मकार्यार्थ देनेका हुकुम दिया था सो पूर्वकालमें जिसको जिससे अपना निर्वाह होता वह तीसरा छट्ठा वा दशवां हिस्सा धर्मादेखातेमें देकर शेष रुपया अपने सांसारिक कार्योंमें लगाती था परन्तु कालके प्रभावसे हमारे भाइयोंकी श्रद्धा धर्मपरसे हट गई और दिनोदिन धर्मकी श्रद्धा हटाकर पापी बनते जाते हैं ज्यों ज्यों हमारे भाई धर्मकी श्रद्धा छोडते जाते हैं त्यों त्यों हमारे भाइयोंकी अवस्था भी उत्तरोत्तर बिगडती जाती है। एक समय वह था कि एक ही यदुवंशके छप्पनकोटि मनुष्य थे और आज वह समय है कि कुल १४ लाख समस्त जैनजातियां रहगई हैं, यह सब धर्मका ही प्रभाव है, धर्मकी श्रद्धा

भक्ति रखनेसे अब भी यह जाति विद्याधनमैत्रीमें सब जातियोंकी अपेक्षा उन्नत हो सक्ती है अतएव हम समाजके समस्त व्यापारियोंसे प्रार्थना करते हैं, कि—गृहखर्चेकी अधिकतासे यदि दशवां हिस्सा धर्मार्थ अर्पण नहीं कर सक्ते हैं तो कमसेकम ६४ वां हिस्सा तो आपको अवश्य ही धर्मार्थ अर्पण करना चाहिये यदि आप सालभरमें एक हजार रुपये पैदा करैं तो एक हजार पैसेके १५॥≈) धर्मार्थ देनेमें कोई दुःख आपको नहिं होगा। प्रत्युत हर्ष होना चाहिये जो हमारी पैदाका इतना हिस्सा धर्मकार्यमें भी लग गया। इसप्रकार प्रबंध करनेसे हजारों लाखों रुपये प्रतिवर्ष धर्मकार्योंके लिये एकत्र होकर जितने धर्मकार्य हैं बडी सरलतासे चलने लग जांयगे। इसलिये प्रत्येक ग्रामकी पंचायतीको अब सावधान होकर इस कार्यका अर्थात् धर्मादि खातेका प्रबंध शीघ्र ही करना चाहिये। यदि यह प्रबंध करके उस धर्मादे खातेकी रकममेंसे यदि चौथाई हिस्सा भी अपनी माताको बचानेमें लगावैंगे तो शीघ्र ही माताका उद्धार हो जायगा। आशा है कि इसपर समस्त जगहकी पंचायतें ध्यान देंगी और **महासभाको भी इसका एक प्रस्ताव** अपने प्रस्तावोंमें समस्त पंचायतोंके लिये पास कर देना चाहिये।

इसके सिवाय **चौथा उपाय** यह है कि जब लडके लडकियोंका विवाह होता है और उसमें हमारे उदार भाई बेहिसाब उदारता दिखाकर पानीकी तरह पैसा लगाते हैं तो उस समय सबके बाद दुल्हैवाला दोनों जगहोंके मंदिरोंमें जाकर कुछ रुपया भंडार वगेरह धर्मकार्योंमें भी देता है सो हमारी समजमें वह पैसा दुल्हैवालेसे तीन हिस्सोंमें लेना चाहिये—अर्थात् देव गुरु शास्त्र इन तीनोंकी भक्ति श्रद्धा बढै ऐसे कार्यमें लेना चाहिये—सो देवार्पणका द्रव्य तो मंदिरजीके भंडारमें जमा करके मंदिरजीके उपकरणादिमें लगाना चाहिये और गुरुभक्तिके लिये दिया हुआ पैसा—स्थानीय वा अन्य स्थानोंकी धर्मकी पाठशालामें खर्च करना चाहिये परंतु अंगरेजी वगेरहकी पाठशालाओंमें नहीं लगाना चाहिये क्योंकि वे लौकिक उन्नत्यर्थ स्वार्थ साधनार्थ पाठशालायें हैं सो अपने २ खीसोंमेंसे उनका खर्च चलाना चाहिये. यह तो धर्मार्थ द्रव्य है सो जिससे धर्मकी उन्नति हो उसही पाठशालामें देना वा लगाना चाहिये। और शास्त्र भक्त्यर्थ अर्पण किया हुआ द्रव्य जिनवाणीमाताकी सेवामें लगाना चाहिये—सो द्रव्य दाताओंसे सबसे बडा हिस्सा जिनवाणीमाताके जीर्णोद्धारार्थ ही लेना चाहिये

इसकी सेवाके लिये पैसेकी बहुत बडी आवश्यकता है। आशा है कि हमारे इस प्रस्तावपर प्रत्येक स्थानपर स्थानीय पंच अवश्य ही ध्यान देकर विवाह सादीसे यथा रीति रुपया ग्रहण करनेकी प्रथा चलावैंगे जिससे जिनवाणी माताकी सेवा वगैरह सब कार्य चल जावैं।

इन चार उपायोंके सिवाय और भी अनेक उपाय हैं यदि हमारे भाई अपने २ यहांकी पंचायतीसभामें बैठकर विचार करैंगे तो उनके सन्मुख आ सक्ते हैं।

हम अपनी समाजके महोपदेशक जैनगजट, जैनमित्र, जैनमार्त्तंड, जैनपताका जैनभाग्योदय, जैनबोधक, जिनविजय, कर्णाटकीजिनविजय, दिगंबरीजैन (गुजराती) जैनबंधु अंग्रेजी जैनगजट आदि सब पत्रोंके संपादकमहाशयोंसे भी प्रार्थना करते हैं कि—आप भी जरा जिनवाणीमाता पर दया करकें जिसप्रकारसे जिणवाणी माताका जीर्णोद्धार हो सकै थोडी २ लेखनी प्रत्येक अंकमें चलाया करें और इस महीनेके अंक जो कि महासभासे प्रान्तिकसभाके अधिवेशनोंसे पहिले निकलने वाले हैं उन अंकोंमें तो जरूरही इस विषयका आंदोलन करैं जिससे जिनवाणीमाताके जीर्णोद्धारार्थ इन अधिवेशनोंमें कुछ न कुछ सुनाई अवश्य हो। जिनवाणी माताकी सेवा करना आपका मुख्य धर्म होना चाहिये क्योंकि जितनी इस समय जिनवाणी माताके जीर्णोद्धारकी आवश्यकता है उतनी किसी भी धर्मकार्यकी आवश्यकता नहीं है—यह बात आप भलेप्रकार जानते हैं जानकर भी आप लोग इसविषयपर कुछ भी ध्यान नहिं देकर उदासीन रहते हैं सो अपने कर्तव्यसे च्युत होते हैं आशा है कि अब भी यदि थोडी २ लेखनी जिनवाणी माताकी सेवाके लिये प्रत्येक अंकमें चलाते रहैंगे तो अवश्य ही आपका समाजमें प्रचार होना सफल है।

जैनपताकाके मिथ्यापवादका उत्तर।

पाठक महाशय! आपके पास यदि कलकत्तेकी जैनपताका आती होगी तो उस के तीसरे अंकमें मिथ्यापवाद नामके शीर्षकमें देखा होगा कि करहलनिवासी पं. गुलझारी लालजीने अपनी विद्वत्ताका अच्छा परिचय दिया है—आपकी विमलबुद्धिमें अकलंकप्रतिष्ठातिलकके कर्त्ता कोई फर्जी अकलंकदेव प्रतिभासित हुये हैं और उसमें हेतु भी आपको क्या ही अच्छा सूझा है आप फरमाते हैं कि—"परन्तु जिस प्रतिष्ठा पाठमें तोते की बींठ गोवरादि सामग्री है तथा

गर्भकल्याणक क्रियाके यौगमंडलकी पूजनमें समस्त यक्षादि देव-देवियोंका पूजन लिखा है उस प्रतिष्ठापाठको किसप्रकार निश्चय कर सके हैं कि वह उन्हीं अकलंक देव स्वामीकृत है ? कारण जिन्होंने राजवार्त्तिकजीमें आस्रवके मिथ्यात्ववर्द्धिनी क्रियाओंके प्रकरणमें समस्त कुदेवकी पूजनका निषेध किया है वह ही आचार्य प्रतिष्ठापाठमें जैनेन्द्रदेवके शामिल कुदेवोंकी पूजन करने को लिखैं ? यह बात कभी संभव नहिं हो सकती। इस कारणसे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि यह कोई नाम धारक अन्य पुरुष है " सो पंडितजी साहब ! जरा न्यायका चश्मालगाकर देखिये कि—यह आपका असमीचीन हेतु '**विचार्यमाणं शतधा शीर्यते जीर्णवस्त्रवत्**' की उक्ति को चरितार्थ कर रहा है।

प्यारे पंडितजी ! अब वह जमाना नहिं रहा है कि-जब प्रवृत्ति विगडनेकी आडमें भोले भाई फस करकें आपसरीखोंकी हांमें हां मिलाते थे किन्तु आज कलका जमाना संस्कृत विद्याकी उन्नतिका है अब धोखेकी टट्टीसें काम नहीं चल सकता। अब शीघ्र ही वह समय आनेवाला है कि जिसमें हमारे चिर-विलुप्त प्राचीन आचार संस्कार आदि क्रियाकलाप पुनरुज्जीवनको प्राप्त होकर जैनसृष्टिमें विचित्र चमत्कृतिसे समुल्लसित दिखाई पड़ैंगें।

पंडितजी साहब! अकलंकप्रतिष्ठापाठमें **शेठ पंडित** मेवारामजीकी तोतेकी बींठकी कल्पना नितांत भ्रममूलक है क्योंकि नीरांजनाप्रकरणमें शुष्कगोमयभस्मका ग्रहण किया है! सेठ पंडितजीने अपनी कपोलकल्पनासे **शुष्क** शब्दका **शुक** आदेश करकें तोतेकी बींठका मनगढत अर्थ किया था सो तोतेकी बींठ तो इसप्रकार पलायमान हुई। अब गोमयकी रामकहानी सुनिये—

आप जिस राजवार्त्तिकको असली भट्टाकलंकदेवकृत स्वीकार करते हैं उसही राजवार्त्तिकके शौच प्रकरणमें अष्ट शुद्धियोंका वर्णन करते हुये गोमय शुद्धिका विधान किया है क्या अब भी आप कह सकते हैं कि—अकलंक प्रतिष्ठापाठमें गोमयका ग्रहण होनेसे उक्त प्रतिष्ठापाठ फर्जी अकलंकदेवकृत ही है ? यदि अब भी आप कहैं तो राजवार्त्तिकजीको भी फर्जी अकलंकदेवका बनाया हुआ है ऐसा कह दीजिये।

अब आपके तीसरे हेतु कुदेवपूजनका विचार किया जाता है। जैन शास्त्रोंमें वस्तुका तत्त्व अनेकान्तात्मक माना गया है अतएव भिन्न भिन्न स्थलोंमें

भिन्न २ अपेक्षाओंसे भिन्न २ आचार्योंने वस्तु तत्त्वका भिन्न २ रीतिसे ही निरूपण किया है। इस भिन्न २ रीतिके निरूपणको पढकर अनेक अल्प बुद्धियोंको बहकते हुये देख श्रीमदमृतचन्द्रसूरिने पुरुषार्थसिध्युपायमें खेद प्रकाशित किया है कि—

इति विविधभंगगहने सुदुस्तरे मार्गमूढदृष्टीनाम्।
गुरवो भवन्ति शरणं प्रबुद्धनयचक्रसञ्चाराः ॥ ५८॥

सो आज हमारे पंडितजी महाशयकी भी ठीक ऐसी ही गति हुई है। आपने राजवार्तिकमें कुदेवपूजनका निषेध देखकर प्रतिष्ठापाठमें भी शासन देवताओंमें कुदेवत्वकी कल्पना करकें प्रतिष्ठापाठके कर्त्ता परमपूज्य श्रीमद्भट्टाकलंकदेवको फर्जी ठहराया है परन्तु महाशैयजीने यह विचार नहिं किया कि कुदेवपूजनके निषेधका क्या अभिप्राय है तथा शासनदेवताओंके पूजनका क्या अभिप्राय है? यदि देवताओंका पूजन ही मिथ्यात्व है तो मूलसंघके अनुयायी श्रीमद्भगवज्जिनसेनाचार्य विरचित आदि पुराणमें त्रेपनक्रियाओंका वर्णन करते समय अनेक देवताओंके पूजनका विधान क्यों किया है? तथा सम्यग्दृष्टी भरतचक्रेश्वरने चक्रके अधिष्ठाता देवोंका पूजन क्यों किया? तथा अनेक सम्यग्दृष्टी विद्याधरोंने विद्या सिद्ध करते समय अनेक देवताओंका आराधन क्यों किया? जरा श्रीरत्नकरंडश्रावकाचारको हाथमें लेकर देखिये कि श्रीमत्समन्तभद्रस्वामी क्या फरमाते हैं,—

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत, देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

इस श्लोकके '**वरोपलिप्सया**' पदका पदकृत्य करते हुये संस्कृत टीकाकार श्रीमत्प्रभाचंद्राचार्य महाराज लिखते हैं कि—"यदि 'वरोपलिप्सया' इस पदका ग्रहण नहिं होता तो पूजा आदिक प्रकरणोंमें वरकी बांछारहित जो शासन देवोंका आव्हान किया जाता है सो भी सम्यक्त्वमें मलोत्पादक हो जाता" इससे सिद्ध होता है कि वरकी बांछापूर्वक जो देवतापूजन है वह ही सम्यक्त्वमें मलोत्पादक है पूजन प्रतिष्ठादि कार्योंमें जो ऐहिक सुखाभिलाषारहित देवतापूजन है सो सम्यक्त्वमें मलोत्पादक नहीं हो सकता। वरोपलिप्सापूर्वक भी जो देवताराधन है वह केवल मलोत्पादक अतीचार है सम्यक्त्वका निर्मूल घात नहीं कर सकता।

अतएव पाक्षिक श्रावकपदको प्राप्त सातीचार सम्यक्त्वके धारक विद्याधर व रोपलिप्सापूर्वक देवोंका आराधन करते हुये भी मिथ्यादृष्टी नहीं हैं किन्तु सातीचार सम्यग्दृष्टी ही हैं, यदि ऐहिक फलोपलिप्सया देवोंका आराधन करनेवाले विद्याधर ही मिथ्यादृष्टी नहीं हैं तो ऐहिक सांसारिकअभिलाषारहित पूजनेमें शासनदेवोंका आराधन करनेवाले श्रावक किसप्रकार मिथ्यादृष्टी हो सकते हैं ?

पूजनके समय उपदेश देनेवाली अर्हन्तअवस्थाका आराधन किया जाता है। सिद्धअवस्थाके समान अर्हन्तअवस्था कुछ निर्विभूति नहीं है। इस अवस्थामें द्वादश सभा सम्पूर्ण समवसरण तथा अष्टप्रातिहार्यर्द्धि आदि तथा मनुष्य-तिर्यंच, देव, देवी, यक्षयक्षिणी, मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, आदि नाना-प्रकारके निर्जीव तथा सजीव पदार्थोंकी विभूति विद्यमान रहती है। इसीलिये जब हम परमपूज्य जिनेश्वरदेवका आव्हान करते हैं तब केवल जिनेश्वरका ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण समवसरणका आव्हान होता है और ऐसा ही करना चाहिये। परम देवके साथ देवताओंको आते हुए जानकर भी कौन मूर्ख होगा जो केवल जिनदेवका ही सत्कार करके देवताओंका सत्कार न करे ? चाहे वे देव मिथ्यादृष्टि हों वा सम्यग्दृष्टि परन्तु जिनेन्द्रदेवके साथ उन देवता-ओंका भी आदर करना हमारा फर्ज है उन देवोंका आदर तथा अनादर जिनेन्द्र देवका ही आदर तथा अनादर है। इसलिये जिनेन्द्रदेवके साथ देवताओंका आदर नहिं करना जिनेन्द्रदेवका ही अनादर करना है। देवोंने देवयोनि पाकर ऐसा क्या घोर पाप किया जो राजा, महाराजा, आफिसर इंग्रेज तथा छोटे २ म्लेच्छ थानेदार तहसीलदार गावोंके जमीदार आदिके आनेपर उनका उठकर सत्कार करनेवाले सम्यग्दृष्टियोंके सत्कार करनेके लायक भी वे देवता न रहे ? लौकिकप्रयोजन-सिद्ध करनेके लिये भी जब मांसाहारी म्लेच्छ मुशलमानादिकोंके सत्कार करनेसे हम अपने सम्यक्त्वमें हानि नहीं समझते हैं और शासन देवताओंके सत्कारसे सम्यक्त्वका निर्मूल घात तथा अधो गतिका जाना समझ लेते हैं सो वडी भारी भूल है। क्योंकि—जैसें विवाहके समय वरका सत्कार करते हुये भी यदि नीचसे नीच कहार नाई आदिका भी यथायोग्य सत्कार न कि जाय तो हम लोग वरके ही सत्कारमें कमी समझते हैं तब जिनेन्द्रदेवके साथ आये हुये देव देवी यक्षयक्षणियोंके आदर करनेसे क्या जिनेन्द्रदेवका आदर नहिं समझना चाहिये? पंडितजी साहब!

हम कह चुके हैं कि वरकी वांछासे भी देव देवियोंका पूजन सम्यक्त्वमें अतीचार अर्थात् मल ही पैदा करता है सर्वथा घात नहिं करता। अतीचारके लगनेको भी हम लोग बाज रखें यह बात गृहस्थावस्थामें रहकर होना असंभव ही है। हम तो क्या सातवें गुणस्थानवर्त्ती मुनियोंको भी अतीचार लगता है। कषायकुशील मुनियोंको अपने शरीरमें प्रीति रहती है यह बात राजवार्तिकजीके नवमें अध्यायमें लिखी है। महाशय! परपदार्थमें ममता रखनेवालोंको कहीं २ शास्त्रोंमें मिथ्यादृष्टि लिखा जानेसे उन मुनियोंको भी मिथ्यादृष्टि न कह डालना क्योंकि जितनी जिस पदमें चारित्रकी मलिनता या अभाव है उतना दोष उसपदमें रहनेसे लगता ही है। उस पदमें रह कर उस दोषको हम जानते हुए भी बचा नहीं सकते हैं चाहे सम्यक्त्व क्षायिक ही क्यों न हो। विषयाभिलाषमें प्रवृत्ति न होने देना सम्यग्दर्शनका काम नहीं है किन्तु चारित्रमोहनीय कर्मका जितना उदय जबतक है तबतक विषयोंमें प्रवृत्ति निर्बाध होगी। इसीलिये क्षायिकसम्यग्दृष्टि होकर भी श्रेणिक राजाने अपघातसे मरण किया था। क्या यथार्थ स्वभावको जानकर श्रद्धा न करनेवाले सम्यग्दृष्टिकी अन्यथा प्रवृत्ति होनेसे सम्यक्त्वका घात समझनेवाले पंडितमानी पंडिताईका झंडा उडाते रहकर 'श्रेणिक राजाने अपघात मरण क्यों किया'? इस प्रश्नका उत्तर दे सकते है? इसप्रकारकी प्रवृत्तिसे (जो चारित्रमोहनीयके उदयका कार्य है) कदापि सम्यग्दर्शनका घात नहीं है फक्त सम्यक्त्वमें मलिनता ही हो सक्ती है। हां प्रत्युत: गहन जैनशास्त्रके रहस्यको न जानकर बहुज्ञानीके समझानेपर भी हटसे अपनी बुद्धिको ही ठीक माननेवाले दुर्विदग्धगण ही सम्यक्त्वका घात करके मिथ्यादृष्टि हो सकते हैं। ऐसा कहा भी है,—

सम्माइट्ठीजीवो उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा॥ १॥

सम्यग्दृष्टिर्जीव उपदिष्टं प्रवचनं तु श्रद्धाति।
श्रद्धाति असद्भावमज्ञानगुरुनियोगात्॥ १॥

सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जं तं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी॥ २॥

सूत्रतस्तत्सम्यक्त्वं दर्शितं तद्यदा न श्रद्धाति।
स चैव भवाति मिथ्यादृष्टिर्जीवस्ततः प्रभृति॥ २॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टिजीव यथार्थ श्रद्धान तो करता ही है परंतु अज्ञानी गुरु आदिके निमित्तसे अपनी बुद्धिके अगोचर पदार्थोंका अन्यथा श्रद्धान करता हुआ भी सम्यक्त्वसे च्युत नहिं होता परंतु सूत्रानुसार विशेष ज्ञानीके समझानेपर भी यदि वह जीव अपने भ्रमात्मक या विपरीत ज्ञानको न छोडै तो उसी कालसे मिथ्यादृष्टि हो जाता है। सो भाईसाहब! सूक्ष्म पदार्थोंका रहस्य समझना बडी टेढी खीर है। बी. ए. एम् ए. किंबहुना संस्कृतमें गौतमीय न्यायादि विषयोंकी मध्यमादि परीक्षा बनारसमें जाकर पास करनेपर भी जैनपंडितोंकी सेवा सुहबतके विना झटसे पंडित बन जाना, फेसला दे देना या हांमें हां मिला देना सहज है परन्तु रहस्यके ज्ञाता होना बडा ही मुशकिल है।

सम्यग्दृष्टिका लक्षण भद्रपरिणाम है, भद्रपरिणामी मनुष्य पंचम कालमें बहुत थोडे होंगे इसीलिये सम्यग्दृष्टिका यहां उपजना असंभव होना या दुस्साध्य कहा गया है। यदि कोई महाशय शास्त्रोंकी परस्परसापेक्षता सिद्ध करते हुये जिनपूजनमें देव देवियोंका पूंजन सम्यक्त्वका घातक सिद्ध कर दिखावै तो तत्काल ही हम अपनी बुद्धिका भ्रम लेखद्वारा जाहिर करके क्षमा मांगेंगे। परंतु आज तक मुखसे बड़बड़ करनेके सिवाय पंडितमानियोंने कईवार हम लोगोंके लिखनेपर भी लेखद्वारा इसको मिथ्यात्व सिद्ध नहिं किया।

हमको अपनी तारीफ करना नहीं है किन्तु अफसोस इस बातका है कि पूज्य श्रेणीके पं० नरसिंहदासजी आदिक महाशयोंके जो दश २ बीस बीस बरसोंसे जैनशास्त्रोंका मनन कर रहे हैं वचनका विश्वास न कर सुनयप्रयोग विना ही अपना हट रखनेवाले सम्यक्त्वके पात्र कब बनेंगे ? तथा सभी पंडितनाम धारकोंको समान माननेवाले बहुतसे भोलेभाई मानकषाय सहित हटसे विपरीत उपदेश करनेवालोंका उपदेश (उपदेशाभास) सुनकर विपरीत श्रद्धान करने न लगे। सामान्य मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा अन्यथा प्रवर्तन करानेवालोंको शास्त्रकारोंने महापापी कहा है।

देवोंके पूजनेसे सम्यक्त्व रहता है या नहीं इसका विचार करके अब हम इस लेखको पूरा करते हैं कि—

देव चार प्रकारके माने जाते हैं, एक सुदेव, दूसरे कुदेव तीसरे सामान्यदेव और चौथे अदेव। सुदेव वे हैं जो सम्यग्दृष्टि होवें। जो मिथ्यामतके प्रवर्त्तक मिथ्यादृष्टि देव हैं वे सब कुदेव हैं जैसें दुर्गा काली वगेरह। जो देव

मिथ्यादृष्टी होकर भी मिथ्यामतके प्रवर्त्तक न हों अथवा जिनेन्द्रमतके शासक हों उनको सामान्य देव कहते हैं जैसे क्षेत्रपाल यक्षादिक। और जिनका कुछ नाम निशान ही नहीं परन्तु किसी कारणसे लोकमें जिनकी प्रवृत्ति चल गई हो उनको अदेव कहते हैं। जैसे छिपानेके अभिप्रायसे किसी मालीने सड़कपर विष्ठाके उपरि थोड़ेसे फूल डाल दिये थे फिर वह फूलमदेवीके नामसे प्रसिद्ध हुआ। सो वरकी वांछासहित या रहित होकर पूजनादिकार्यमें सुदेव या सामान्य देवोंका सत्कार करनेसे सम्यक्त्वका सर्वघात नहीं होता किन्तु मलिनता भी गृहस्थ धर्ममें पाक्षिक श्रावकसे दुर्निवार है। तथा ऐसी मलिनता जिनेन्द्रदेवके भी पूजनमें आती है क्यों कि जिनपूजा भी प्रशस्तरागपूर्वक ही है। सर्वथा नीराग अवस्था वहां ही है जहां पूज्यपूजकभाव भी न हो, निरंतर अपने आत्मध्यानमें ही लीनता हो। यथार्थ सम्यग्दर्शन भी उसी अवस्थामें मानना चाहिये परन्तु गार्हस्थ्यमें रहते हुए रागपरिणति है उससे पापबंध न होकर प्रशस्त पुण्यका ही बंध होता है ऐसा विचारकर जिसप्रकार जिनपूजा कर्तव्य है उसी प्रकार जिनेन्द्रके साथ आये हुये देवोंकी पूजन करना भी फर्ज ही है।

हां कुदेव तथा अदेवोंको तरन:तारन मानकर पूजनेवाले अवश्य ही मिथ्या दृष्टि हो सकते हैं क्योंकि उनको तरन तारन न होनेपर भी तरन तारन माननेसे अतत्त्वश्रद्धानरूप मिथ्यात्व लक्षण घटता है।

पंडितजी साहब मेरा लिखना नवीन है। यदि इस लेखमें कोई कटुक शब्द हों तो उनपर ध्यान न देकर क्षमापूर्वक शान्तभावसे इस उत्तर पर विचार करैंगे ऐसी आशा है।

भवदीय
वंशीधरछात्र।

जैनगजटकेलिये जैनहितैषीका प्रकट होना असह्य और जैनहितैषीको बंद करनेका प्रयत्न।

पाठक महाशय! जिस देश, जिस समाज व जिस धर्मकी उन्नति हुई है वह

अखबारोंकी वृद्धिसे ही हुई है और वे अखवार भी यदि एक ही विषयके और एकही ढंगके हों तो उन्हें कोई छूता भी नही और न वे लाभदायक ही हो सकते हैं। इसकारण मुख्यतासे किसी २ में राजनैतिक लेख किसी २ में सामाजिक धार्मिक, किसी २ में कला चतुराई कारीगिरीके, किसी २ में साहित्य, कविता, ऐतिहासिक और किसी २ में मनोविनोद हँसी मजाकके लेख समालोचनादि छपते हैं परंतु उद्देश सबका एक ही देशहित वा समाजहित होना है और किसी २ पत्रमें थोडे २ सब ही विषय आते हैं जिससे असमर्थ जन भी सर्वप्रकारके अखवारोंको न खरीद कर एक ही अखवारसे थोडे २ सब विषयोंके जानकार हो सकते हैं। इसीप्रकार समस्त विषयोंके भिन्न २ पचीस पचास अखवारोंका जबतक हमारी जैनसमाजमें प्रचार नहिं होगा तबतक जैनजातिकी उन्नति होना कष्टसाध्य ही नहीं किन्तु असंभव है। इसालिये हम तो हमेशह यह ही चाहते हैं कि हमारी जैनजातिमें नानाप्रकारके समाचार पत्रोंका प्रचार शीघ्र ही हो प्रत्युन वर्तमानमें कलकत्तेकी जैनपताका, सूरतका दिगंबरजैन, श्रवणवेलगुलकी सनातनधर्मपताका, वर्धाके जैनमार्तंडपत्रका मराठीसे हिंदीमें सुधरकर बंबईसे प्रकाशित होना तथा जैनबंधु वगेरह नये २ पत्रोंके प्रगट होनेसे तथा दो चार नये पत्रोंके प्रकाशित होनेकी खबर सुनकर हर्षके मारे अंगमें फूले नहिं समाते हैं, परंतु खेद और परमखेद है कि महासभाके महोपदेशकरूप **जैनगजटको** (जो कि जैनसमाजकी उन्नति करनेका हौसला करता है और महासभाका मुखपत्र है) अपने गुरुभ्राता जैनहितैषीका चौथी बारका प्रकाशित होना असह्य हो गया। क्योंकि अबकी बार जैनहितैषीमें जो कुछ सुधारा हुआ है वह हमारे जैनी भाइयोंको बहुत ही पसंद आया है क्योंकि इसकी संपादकीय टिप्पणियोंमें समाज सुधारकोंकी निष्पक्ष सच्ची २ समालोचना, मुख्य लेखोंमें भंडारोंमें गलती सडती पतित पावनी जिनवाणीमाताके जीर्णोद्धारके लिये उत्तेजना देनेवाले लेख और जो अखवारोंके पढनेमें पाप समझते हैं उन्हे कडवी औषधिको बतासेके संग खिलानेकी तरह अखवारोंके पढ़नेका शोख लगानेकी इच्छासे दो एक मनोविनोदक (जिनमें हंसी की हंसी और उपदेशका उपदेश ऐसे) चुटकुले, पुण्यधिकारी जीवोंके पवित्र चरित्रकी स्वाध्यायके लिये १६ पृष्ट पातिव्रता शीलवती मनोरमा आदि पुण्य जीवोंका चरित्र उपन्यास वा नाटकरूपमें और बंबईकी सामाजिक उन्नति अवनतिकी सच्ची खबरें, व उत्तमोत्तम लेख छपते हैं

और आगेके लिये ज्ञानसूर्योदय नाटक, उपमितिभवप्रपंचाकथादिक अतिमनोहर पुस्तकोंके छापनेकी प्रतिज्ञा वगेरह करके इसको चिरस्थायीरूपसे प्रकाशित करनेका तथा—**वृंदावनविलास** व कविवर वृंदावनजीका जीवनचरित्र सरीखे परमोपयोगी ग्रंथोंको प्रतिवर्ष विनामूल्य भाइयोंकी सेवामें पहुंचानेका पक्का प्रबंध किया गया है. परन्तु जिसप्रकार दुष्ट जन परके दूषण ही दूषण देखते रहते हैं अथवा कौवा जैसैं पवित्र भोज्यपदार्थोंको छोडकर पहिले विष्टा ही पर आसक्त होता है—अथवा उल्लूको जैसैं दिनमें भी अंधकार दीखता है उसीप्रकार खेद है कि—हमारी भारत वर्षीय श्री जिनधर्मसंरक्षणी महासभाके साप्ताहिक जैनगजटसके नये २ संपादकोंको जैनहितैषीके दो अंकोंमें सिवाय दूषणों और भंडवचनोंके कुछ भी दृष्टिगोचर नहिं हुआ तथा विशेषतया खेद हमको इस बातसे हुआ कि आजकल इसके मुख्य संपादक हमारे परमहितैषी मित्र सज्जनोत्तम बाबू जुगुल किशोरजी हैं—और सबसे अधिक खेद इस बातसे हुआ कि—जैनहितैषीमें अनछते (झूठे) दोष लगाकर इसके साथ २ जैनहितैषीके पढनेवाले जैनी भाइयोंको भांड बनाकर रंडी भडुओंके नाच करोनेमें ही परम धर्म माननेवाले सिद्ध करकें व गालियें देकर ता. ८ और १६ जनवरीके लेखोंमें भरपेट झूंटी निंदापूर्वक जैनहितैषीके बंद करानेका पूर्णतया प्रयत्न किया गया है। बाबु साहब! हमको आप सरीखे सज्जनोंसें ऐसी आशा नहीं थी कि आप दुष्टोंके बहकानेसे आप हमारे इस चौथीबारके दृढ उत्साहको भी घात करकें जैनहितैषीके बंद करनेकी कोशिश करैंगे !!!

बाबू साहेब! यदि हम भी 'शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात् साधवं प्रति साधुता' की नीतिका अनुसरन करकें आपके दुष्ट लेखोंका खंडन करनेकेलिये कटिबद्ध हो जांय तौ जैनहितैषीका आकार दूना करना पडै और सबका सब जैनहितैषी इसीमें रंगना पडै जिससे जैनहितैषीके निकालनेका एकमात्र उद्देश्य जो जिनवाणीमाताकी सेवा करना है छोडदेना पडै। दूसरे ऐसे दुष्टलेखोंके उत्तरसे जैनहितैषीका पवित्र कलेवर अपवित्र करना भी हमारी सम्पादकीय नीतिके विरुद्ध है इसलिये आपपर दया करकें अभी हम आपको साफ छोड देते हैं क्यों कि अभी आप नवसिखुए सम्पादक हैं इस समय आपको और आपके सहायक संपादकोंको बहुत कुछ सम्पादकीय गुण प्राप्त करने हैं सो जहां तक आपसे अपनी सज्जनता और मित्रताका परिचय देना हो देवैं, जब आप जैनहितैषीके बंद करनेकी कोशिश

करते २ थक जांयगे तब सौ सुनारकी और एक लुहारकी कहावत आपको याद आवैगी । अलमिति विस्तरेण ।

जैनहितैषीके ग्राहकोंसे प्रार्थना ।

पाठक महाशय ! यदि आप जैनगजटके ग्राहक हैं अथवा किसी अन्य भाईके पाससे लाकर पढते हैं तौ आपको अवश्य ही खयाल हो जायगा कि-जब **जैन गजट** सरीखे प्रतिष्ठित पत्र जैनहितैषीके सर्वथा झूठे दोष प्रगट कर २ कें जैनी भाइयोंको बहका २ कर जैनहितैषीके ग्राहक बननेके लिये गुप्त भावसे मना, करते हैं तो यह जैनहितैषी पत्र पहिलेकी तरह अवश्य ही बंद हो जायगा, अथवा जैनगजटसे फिर भी भांड वगेरहकी गालियें सुननी पडेगी इसलिये जैनहितैषीका ग्राहक बनना पैसे और इज्जतकी हानि उठाना है वृंदावनविलासका भी लालचदिखाना झूठा है । यदि आपको ऐसा सन्देह हुआ हो तो आप कदापि हमारे पास मनी-आर्डर न भेजिये । आप अपना पूरा पता लिखकर वृंदावन तयार होनेपर वी.पी. भेजनेकी स्वकिारता मात्र भेज दीजिये । जिस समय छठे अंकके साथ हमारे उपहारका ग्रन्थ आप देखैंगें तो आपको निश्चय हो जायगा और स्वयं कहने लगैंगे कि-हमारा १।) रुपया तो इसीमें अदा हो गया जैनहितैषी तो मुफतमें ही आता है । यदि जैनहितैषी बंद हो जाय तो भी कुछ परवाह नहीं है ।

और जो जो महाशय मूल्य भेज चुके हैं उनको जरा धीरज रखना चाहिये ऐसा कभी न समझलें कि जैनहितैषी अब शीघ्र ही बंद हो जायगा । क्योंकि पहिली बार जो बंद हुआ था वह मुरादाबादसे हमको मुम्बई आना पडा था इसलिये बंद हुआ था । दूसरीवार बंद हुआ था सो प्लेगके प्रारंभ होते ही हमको बंबई छोडकर महाविद्यालय मथुराकी स्थापनार्थ आगरे और मथुरा जाना पडा था, तीसरी बार धर्मपरीक्षादि ४ ग्रंथरत्न विना मूल्य लुटानेपर भी छह महीनेमें कुल ८० ग्राहक हुये थे, उस समय हमारी अवस्था भी वैसी नहीं थी जैसी आज है । इस समय हम और हमारे अनुयायी गण इतनी हिम्मति रखते हैं कि-यदि एक भी ग्राहक न हो तौ भी २००० प्रति विनामूल्य ही जैनी भाइयोंके घरपर जैनहितैषी पहुंचता रहेगा । अबकी बार जैनहितैषी आजीवन चलानेका प्रबंध करके प्रकाशित किया गया है, यदि हमारा जीवन शीघ्र ही समाप्त हो जायगा तौ

भी हमारे हितैषी मित्र गण इसे अपने जीवन भर चलानेके लिये कटिबद्ध हैं, जैनगजट वगैरह पत्र यदि हमपर झूठे ही दोष निकाल २ कर इसे बंद करनेकी कोशिश करते हैं और करेंगे तो करने दीजिये क्योंकि जिसप्रकार किसी गांवमें कभी हाथी जाता है तो उसे अपूर्व जीव देखकर कुत्ते भौंकते हैं परंतु उससे हाथीका वे कुछ भी नहीं बिगाड सकते भोंकते भोंकते जब थक जाते हैं तो अपने आप चुप हो जाते हैं उसीप्रकार ये भी चुप हो जायंगे अथवा कोई अन्य महापुरुष इनकी नाक दबाकर चुप कर देंगे। हमारा काम इन नबसिखुए छोकरोंसे तू तू मैं मैं करनेका नहीं है। हमारा कार्य जो कुछ है सो आपके और जैनसमाजके सन्मुख प्रगट है—वह एक मात्र जिनवाणीमाताकी सेवा करना है। हां जो दुष्टात्मा वा बछियाके बाबा मूर्खानंद हमारे इस कार्यके नष्ट करनेमें तथा हमारी पवित्र जैनसमाजमें असदाचार चलानेमें गुप्त भावसे प्रयत्न करते हैं उनकी हम भी गुप्तभावसे खबर लेते रहैंगे और उनके सच्चे गुण जगतके सामने रखते जायगे और जो दुष्टात्मा प्रकाशतया धर्मकार्योंमें विघ्न डालते हैं और डालैंगे हम भी उनके गुण प्रगटतया प्रकाशित करते रहैंगे, सच्ची बात प्रगट करनेमें हम किसीका भी भय नहिं करते।

दूसरी प्रार्थना—

यह है कि—इस पत्रके पत्येक अंकमें १६ पृष्ठ **मनोरमा उपन्यास** देनेका नियम किया गया था. परन्तु अनेक ग्राहक महाशयोंकी इच्छा है कि प्रत्येक अंकके साथ भेजनेसे कोई अंक खो जाता है तो हमारा उपन्यास अधूरा रह जाता है अर्थात् रद्दी हो जाता है इसलिये पूरा होनेपर एकदम सबका सब भेज देना चाहिये परन्तु अनेक महाशय उपन्यास पढनेके लालचसे ही ग्राहक हुए होंगे उनको प्रतिमास उपन्यास मिलना ही चाहिये ऐसी उनकी इच्छा होगी इसकारण हम अब ऐसा नियम करते हैं कि—जो महाशय कार्डद्वारा ग्राहक होनेकी स्वीकारता और **प्रत्येक अंकमें मनोरमा उपन्यास भेजनेकी आज्ञा देंगे उनको तो प्रत्येक अंकके साथ मनोरमा उपन्यास सिलाई कराकर भेजेंगे परन्तु जो महाशय सूचना नहीं देंगे उनको होलीपर वृंदावनविलासके साथ पूरा उपन्यास भेजा जायगा। प्रत्येक अंकके साथ नहिं भेजा जायगा।**

अगले वर्षकी बात अभी दूर है—

परन्तु इस वर्ष १६ पृष्ठ अखवारके और १६ पृष्ठ उपन्यास नाटक वगेरहके कुल ३२ पृष्ठ देनेका नियम किया गया है सो १२ महीनेके भींतर २ बारह अंकोंके ३८४ पृष्ठ हम बरावर ग्राहक महाशयोंकी सेवामें पहुंचा देंगे

परन्तु—

जो महाशय! इस ३९ वें अंकसे अथवा इससे अगले अंकसे ग्राहक बनेंगे उनको हम पिछले अंक देनेके जुम्मेवार नहीं हैं। हां पिछले अंकोंमें छपा हुआ मनोरमा उपन्यास सबका पूरा कर दिया जायगा। इसकारण जिनको ग्राहक बनना हो, वे इस अंकसे ही ग्राहक बन जावेंगे तो उनको सुभीता होगा।

लीजिये !
एक पुस्तक वृंदावनविलासके साथ फिर भी विनामूल्य भेजेंगे।

पाठक महाशय! हमारे धर्मके पुराने पंडितोंमें एक–विनोदीलालजी संस्कृतके बडे भारी पंडित हो गये हैं उन्होंने संस्कृत श्लोकोंमें एक **अरहंतपासा केवली** नामका ग्रंथ बनाया था उसको सर्बसाधारण जैनी भाइयोंके हितार्थ **कविवर वृंदाबनजीनें** दोहे चौपई छंदोंमें भाषानुवाद कर दिया था–सो यह पुस्तक कारणविशेषसे हम **वृंदावनविलासके** साथ नहिं छपा सके परन्तु यह पुस्तक भी हमने जुदा छपाना प्रारंभ किया है सो समस्त ग्राहकोंको यह पुस्तक भी अष्टाह्निका पर्वमें वृंदावनविलासके साथ **विनामूल्य** ही भेजेंगे।

इस पुस्तकमें अपने शुभाशुभ देखने व कार्यसिद्धि होगी या नहीं इत्यादि विचार करनेके लिये **अरहंत** भगवानके तीन तीन अक्षरोंपर दोहोंमें उत्तर लिखा है। चंदनकी या किसी अन्य लकडीका एक चोरस फांसा बनाकर उसके चारों तरफ **अ र हं त** ये चार अक्षर लिखकर तीन बार डालनेसे सबके मनके प्रश्नका उतर मिलता है। यह एक बहुत ही उपयोगी और अपूर्व पुस्तक है इसीलिये जैनहितैषीके ग्राहकोंकी भेटमें विनामूल्य पहुंचानेका प्रबंध किया है। आशा है कि इसको पाकर हमारे ग्राहक गण बहुत ही प्रसन्न होंगे।

मनोविनोद ।

(५)

एक सेठ और दक्षणी भाईका वार्तालाप

दक्षिणी—क्यों सेठ साहब ! आज इतने उदास क्यों बैठे हैं ? आप सरीखे सुखी पुरुषोंको ऐसा विषाद क्यों ?

सेठ—भाई क्या कहूं इस समय मेरी समान कोई भी दुःखी नहीं होगा क्योंकि जिस मनुष्यको मैंने अपने समाजका शिरोभूषण माना था जो सक्स हमारी भी सुनता और यहांके समस्त धर्मकार्योंकी जड थी उसकी हमने हिंदुस्थानी होनेके कारण आजतक १२ वर्षमें कईबार आजीविका रहित होने पर भी एक पाईकी भी सहायता नहीं की बलके जो सेठ उसको सहायता करता था उसके भागीदारोंको हमेशह बहकाता रहा जिससे वह आजीवकारहित हो जाय परंतु खेद और परम खेद है कि—उस सेठकी सहायतासे अलग होते ही मैंने सुना कि हमारी जातिके एक कपूत सेठने फिर भी उसे एकदम दश हजारकी सहायता दे डाली ।

दक्षणी—क्या उसने तुमसे सम्मति लिये विना ही इतनी सहायता कर डाली ? तब तो वह कपूत सेठ तुमको कुछ भी नहिं समझता ?

सेठ—भाई मानता तो सब कुछ है परंतु मुझसे सम्मति लेता और यदि वह यहांपर होता तो ऐसे अयोग्य मनुष्यको इतनी सहायता कदापि नहिं करने देता परंतु वह यहांसे बहुत दूर होनेके कारण मैं कुछ नहीं कर सका इसीका मुझे बडा भारी खेद है ।

दक्षिणी—तो आपने एक आध चिठ्ठी देकर उस कपूत सेठको डांट क्यों न लगाई ?

सेठ—भलां मैं चूकनेवाला था ? मैंने यह खबर सुनते ही एक चिठ्ठी उस सेठको लिखी थी उसमें लिखा था कि—यदि आप ऐसे अयोग्य मनुष्योंको भी सहायता देकर रोजगारमें लगा देते हैं तो हमारे पास इनसे हजार दरजे योग्यता रखनेवाले अनेक मनुष्य हैं क्या उनको भी आप सहायता दे सकते हैं ?

दक्षणी—फिर उस सेठने क्या जबाव दिया ?

सेठ—देखो आज ही उसका यह पत्र आया है, इसमें लिखा है कि– "हमने जो कुछ उस सज्जन धर्मात्मा परोपकारी महाशयको सहायता दी है वह वास्तवमें बहुत थोडी है, इसमें मैंने कुछ भी अन्याय नहीं किया है किन्तु मैं अपनेको अहोभाग्य समझता हूं। यदि ऐसे मनुष्य आपके यहां दश बीस हों और उन्हे सहायता देनेमें आप पाप समझते हों तो फोरन यहांपर भेज दीजिये मै उन्हे भी उनकी इच्छानुसार सहायता देकर रोजगारमें लगाडूंगा, मैं इस कार्यको आपकी समान पापकार्य नहीं समझता"

दक्षणी—तब तो बेशक आप सरीखे धर्मात्मा सेठोंको खेद होना चाहिये परन्तु आप उन्हें हिंदुस्थानी समझकर १२ वर्षमें कुछ भी मदत नहीं की इसका कारण क्या है?

सेठ—प्रथम तो हमसे मदद मांगी ही नहीं दूसरे–उत्तर हिंदुस्थानके और मारवाडके रहनेवाले लोग बडे कपटी मायाचारी और लुच्चे होते हैं चाहे वे विद्वान् हों चाहे अविद्वान् सब एक ही थैलियाके चट्टे बट्टे होते हैं यह मैने भलेप्रकार अपने तजुरबेसे श्रद्धान कर लिया है इसलिये इनको मदद करना बडा भारी पाप है इसका एक मैं ताजा उदाहरण देता हूं एक बार मैंने अपने यहांके दान खातेमें रखनेके लिये दो मारवाडियोंके कहनेसे एक कविराजको बुलाया था सो भाई! क्या कहूं उन दोनों मारवाडियोंने मेरेपर गजब ढा दिया और मुझे ऐसा लुटा दिया कि अबतक उसका मेरे शरीर पर सदमा बाकी है वह कविराज भी मुझे बडी भारी मुसीबतमें डालकर धोका दे गया।

दक्षणी—सेठ साहब उन दोनों मारवाडियोंने आप पर ऐसा क्या गजब ढा दिया आप कैसी मुशीवतमें पड गये जो अब तक आपके शरीर पर उसका सदमा हो रहा है?

सेठ—भाई क्या कहूं कहते हुये और उस बातके याद करते मुझे बडा भारी दुःख होता है परंतु तुम हमारे जिगरी हितैषी हो सो कहता हूं कि उन मारवाडियोंने जब मुझे बहकाकर उस हिंदुस्थानी कविराजको बुलवा दिया था तब मैं बाहरमें चला गया था सो उन मारवाडियोंनें मेरे भोले भाले मैनेजरको भी बहकाकर उसे हमारा ही बुलाया हुआ पाहुना बताकर हमारे ही घरपर ठहरा दिया और एक रसोइया रखवाकर उसे २१–२२ दिन तक बैठे २ माल उडानेका रास्ता साफ कर दिया। मैने अपने दौरेसे आकर अपने मैनेजरसे पूछा तो

सुना कि वह काविराज प्रतिदिन हलुआपूरी उडाया करता था जिस्से मुझे अनुमान १३) रुपये तो परचूनीको देने पडे और ५) रुपये उन मारवाडियोंने रसोइयेको दिलवाये—जब इसप्रकार लूट मची और उस कविराजको सिर्फ हलुआपूरी उडानेवाला ही समझ लिया तौ मैने अपने दान कार्यके अयोग्य समझकर उसे रखनेसे भी इनकार कर दिया बश फिर तो क्या था कि उन मारवाडियोंने मेरेपर बडा भारी अनुचित हमला किया और मेरे हाथकी चिट्ठी दिखाकर उस कविराजको राह खर्च भी मुझसे दिलवाया परन्तु इतनेमें ही मेरा पिंड नहीं छूटा क्यों कि उन मारवाडियोंने इतना भारी तूल बनाया कि यह कविराज महाशय आपकी चिट्ठीपरसे पूरा भरोसा जानकर अपने देशमें जम हुये ३०-४०) रुपये मासिकके रोजगारको नेस्त नाबूद करके यहां आये हैं अव ये वापिस जांयगे तो इनकी बडी भारी बदनामी होगी और फिरसे वैसी आजीविका जमना कठिन है आपने इनके कार्यकी कुछ भी परीक्षा नहीं करकें इन्हे अयोग्य ठहरा दिया सो यह बडा भारी अन्याय है इस महा अपराधकेदंड स्वरूप इनको पांच सातसौकी सहायता करके यहीं पर इनको दुकान खुलवादें इत्यादि बातोंके दबावमें डालनेसे लाचार होकर मुझे एकदम एक सौ रुपयोंकी सहायता (आठ आनेके व्याजसे) करनीं पडी वह भी सौ रुपयोंके फरनीचर वगेरह सब सामान लगाकर हमारे ही एक मकानकी दूकानमें दूकान लगाकर अच्छी तरहमे अपना धंदा चलाने लगा। परंतु वह कविराज भी बडा धोकेबाज था सो किसी सेठके इलाज करनेका बहाना बनाके अपनी दुकानपर किसी अन्य एक आचार्यपरीक्षामें पास हुये कविराजको रखकर चला गया सो आज आता है । मैं मायद उस समय बाहरमें था घर आकर देखा और सुना कि उस दुकानका ४ महिनेका भाडा हमारा चढ़ाहुआ है सुनते ही मेरा कलेजा बैठ गया। मैने अपने प्राइवेट मंत्रीकी सम्मतिलेकर उसी वक्त उस विद्वान् कविराजको कहीं गया देख उस दूकानमें अपना ताला बंद करदिया सो प्रथम तो उस कविराजने ही मेरे बंगलेपर आकर मुझे ऐसी २ गालियें सुनाकर लज्जित किया कि सवेरेही वे उजर दुकान खोल देनेकी प्रतिज्ञा-करके उससे पीछा छुडाना पडा क्योंकि मैंने अपने घमंडमें उन दोनों विद्वा-नोंको कई जनोंके सामने बदमास कह डाला था इसीसे वह बडा भारी शेर होकर आया था । लाचार उससे पीछा छुडाये बाद जब मैने अपनी प्रतिज्ञानुसार

दुकान नहिं खोली तो उन दोनों महाशयोंके हितैषियोंने और खासकर उन्ही दोनों मारवाडियोंने बडा भारी हलचल मचा दिया बहुत कुछ जामिनी दी. एकने तो दो हजार तकका माल देनेकेलिये मुझे चिठ्ठी लिखी तिसपरसे मैंने भी भाडेके रुपये जितना माल भेजनेपर दुकान खोल देनेकी दूसरी प्रतिज्ञा कर दी। उसने भी उसी वक्त भाडेसे दूने रुपयोंका माल हमारे घरपर भेजवा दिया और दुकान खोलनेका तकादा किया क्योंकि दो दिनसे उस विचारे कविराजको संध्यापूजन करने व रोटी करके खानेपीनेका मौका नहिं मिला था। परन्तु धन्य है हमारे प्राइवेट मंत्रीकी मंत्रणा और हमारी जबानकी प्रतिज्ञाको कि हमने फिर भी दुकान नहीं खोली. और भाडेके रुपयोंमें माल न लेकर नकद रुपये देनेपर दुकान खोलनेका संदेशा भेजा तब उस दुःखी कविराजने न मालूम किस २ से खुशामदें करके भाडेका रुपया इकठ्ठा करके हमारी पेढ़ी पर भेज पर उसने फिर भी गजब करना चाहा कि–दुकान अब हमारे नामपर करदो–तब हमने कहा कि एक महीनेका भाडा और भी पेशगी लाओ तो हम तुम्हारे नामपर दुकान लिखदें। लाचार उसने एक महीनेके भाडेका फिर भी कहींसे कर्ज काढा तब बंदेने चौथे दिन दुकान खोली परन्तु उस पहिले कविराज पर वे १००) रुपये रह गये। जब तक ये १००) रुपये मेरी पेटीमें नहिं आ जांयगे तबतक मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा। वैद्यलोग मुझे बीमारी बताते हैं कि बुढापेमें विवाह होनेसे तुमे वीर्यसंबंधी अनेक रोग हो गये हैं सो अमुक पाक खाओ, अमुक रस खाओगे तो बचोगे नहीं तो शीघ्र ही चलदोगे परंतु भाई मुझे कुछ भी बीमारी नहीं है मुझे एक मात्र उन्ही १००) रुपयोंके डूब जानेकी चिंता मात्र है इसकी दवाई वे सौरुपये ल्याकर मेरी छाती पर रखदेना मात्र है।

दक्षणी—वाह साव वाह! धन्य है आपके बुद्धिवैभवको कि इतनी बडी भारी सहायता करके अपनेको बीमार बना लिया? शास्त्रोंमें इसीको परोपकारार्थ तनमनधनसमर्पण करना कहा है।

नोट—यह चुटकुला हमारे पास टीका टिप्पणी और भाष्य सहित आया है परन्तु स्थानाभावके कारण टीका टिप्पणी भाष्य अगले अंकसे प्रकाशित करनेका विचार है क्योंकि–यह सूत्ररूप चुटकुला है। विना टीका टिप्पणी और भाष्यके प्रकाशित किये विना हमारे पाठक महाशयोंको इस सूत्ररूप चुटकुलेका गूढरहस्य मालूम नहीं होगा और न मनोविनोद ही होगा।

सूरतमें दो विधवा विदुषी युवतियोंका वार्तालाप ।

एक–कहो बहन! तुम तो अपनी समाजमें विदुषी कहाती हो तुमनें अपने-यहांकी स्त्रीसमाजमें क्या क्या सुधारा किया ?

दुसरी–बहन! क्या कहूं कुछ कहा न जाता कहे विना भी रहा न जाता की कहावत चरितार्थ हो रही है ।

पहिली–कहो तो सही ऐसी क्या बात है ?

दुसरी–मैने अपनी समाजकी दुखिया विधवाओंकेलिये एक '**विधवाश्रम**' खोलनेका विचार किया था जिसकेलिये मैने एक तो मकान दे दिया था और विधवाश्रममें आनेवाली बालविधवाओंकी शिक्षादीक्षाकेलिये मैने एक अतिसुयोग्य विद्वान्‌को बहुत कुछ लोभलालसामें फसाकर नोकर रक्खा था आज १२ महीनेसे इस्तहार देते २ बहुतसे रुपये बरबाद कर चुकी परंतु अभतिक एक भी विधवा बहनने **हमारे परमोपयोगी** विधवाश्रमको आबाद नहिं किया ?

पहिली—क्या सच्च कहती हो कि–एक भी विधवा नहीं आई ?

दुसरी–सिर्फ एक विधवा आई थी परंतु वह हमारे पूर्वाचार्योंके तथा आधुनिक विद्वानोंके विछाये हुये कठोर नियमरूपी जालसे जकडी हुई आई थी। उसको मैने विधवाश्रममें नहिं रखकर खास अपने घरमें ही बडे आरामसे रक्खा था उसे मैं और हमारे वे ही पंडितजी अहोरात्र पढाते और विधवाश्रमके गूढाशय समझाते रहे परन्तु वह ऐसी ढीठ निकली कि–अपने किये हुये नियमोंको कुछ भी सिथिल नहीं किया । लाचार उसे झूठमूठ ही कुछ दोष लगाकर निकाल देना पडा ।

पहिली । बडे खेदकी बात है कि–तुम सरीखी धर्मात्मा विदुषीके उपदेशोंसे भी वह मूर्खा नहिं पलटी तो फिर विधवाश्रमके आबाद करनेसे क्या फायदा होगा ?

दुसरी—देखो बहन ! अबकी बार मैंने एक भगीरथ प्रयत्न करना विचारा है । मैं अपने पंडितजी और एक सहेलीको लेकर अपने देशमें फिरूंगी क्योंकि–हिंदुस्थानकी अपेक्षा हमारे देशकी विधवायें बहुत भोली भाली होतीं हैं सो उनको बहका २ कर लाऊंगी और अपने ही देशमें विधवाश्रमका ब्रांच आफि-

स खोलकर पहिले वहींसे शिक्षा दीक्षा दिलाकर फिर हेड आफिसमें लाकर सबको सदा सुहागन बना दूंगी।

पहिली—परमेश्वर तुम्हारे परिश्रमको सफल करै।

---

(७)

एक सेठ और नये क्लार्कका वार्त्तालाप।

सेठ—वैल मिष्टर! हमारी एक बाट ध्यानमें रखना कि—एक मारवाडी इसी मकानमें रहटा है वो बहुट खराब आडमी है। हमारे पास जो जो आडमी आटा है उनको वह उलटी पट्टी पढा डेटा है सो हमारेसे विरुद्ध हो जाटा है। टुम उसके पास कभी मट जाना नहीं तो वह टुमको भी बहकाडेगा खबरदार।

क्लार्क—(हाथ जोडकर और कान पकडकर) जी हजूर! जो हुकुम मैं आज ही आया हूं एक बार तो उनसे मिलनेको अवश्य जाऊंगा क्योंकि–मैंने उनका बहुत बडा नाम सुना है।

सेठ—नहीं २ टुम एक बार भी उसके पास मट जावो। वह तुम्हारे पर पहिली ही बार जादू फेंकडेगा फिर टुम हमारे कामके नहीं रहोगे।

क्लार्क—हाथ जोडकर जी हजूर! जो हुकुम मैं अभीसे कान पकडता हूं!

श्रीजिनवाणीमाताके समाचार।

इन्दोरके बुद्धिबहादुर कुपूतोंने मारवाडी मंदिरकी जैनपाठशालामेंसे छपी हुई अपनी जिनवाणी माताका बायकाट कर दिया है! क्या जिनवाणी माताके ऐसे शत्रु अब भी मौजूद हैं। अपशोस! खेद!! खेद! महाखेद!!!

हर्ष है कि-**तत्त्वार्थसूत्रकी श्रुतसागरी टीकाकी** पुरानी वचनिका पं. टेकचन्दजी कृत प्राप्त हुई है। इसका जीर्णोद्धार भी हम शीघ्र ही करानेवाले हैं।

शोलापुरके एक धर्मात्मा बाईकी तरफसे **वसुनंदी श्रावकाचार** मराठी **भाषानुवाद**सहित छप गया है। दक्षिणी भाइयोंके लिये हर्षका समाचार है। **हिंदुस्थानी** सेठोंको हिंदीमें भी इसका जीर्णोद्धार कराना चाहिये।

जैनपदसंग्रहदूसरा भाग—(भागचंदजीकृत पदोंका संग्रह) जो

हमारे सूचीपत्रमें छपा लिखा है वह अभीतक तैयार नहीं हुआ है माघसुदीमें तैयार होगा।

पार्श्वपुराणजी चौपई बंध—कविवर भूधर दासजीकृत जो कि पहिले दिल्लीमें छपा था वही बडे टाईप और उत्तम प्रकारसे हमारी तरफसे छप रहा है होली बाद तैयार हो जायगा।

वृंदावनविलासकी कविता २ तो छप गई हैं अब पं० वृंदावनजीका जयपुरके पं जयचंदजी वगेरह विद्वानोंके साथ जो पत्रव्यवहार हुआ है सो छप रहा है। हमारे ग्राहकगण वृंदावनविलासके लिये बडा भारी तकादा कर रहे हैं सो भाइयो! जरा धीरज रखें होलीपर्यंत यह तैयार होगा तब ही सबके पास भेजा जायगा।

शोलापुरके सज्जनोत्तम नवयुवक सेठ **जीवराज गौतमचंदजीने**— तत्त्वार्थसूत्रकी मराठी वचनिका करके छपाया है, एक अध्याय छपना बाकी है, धन्यवाद है। यदि ऐसे २ नवायुवक सेठ लोग जिनवाणी मातापर दया करके जीर्णोद्धार कराते रहें तो बडा भारी लाभ होगा। शोलापुरमें बडे २ धर्मात्मा सेठ हैं उन सबको धडा लेना चाहिये।

लोकलसमाचार।

सेठ—हीराचंद गुमानजी जैन बोर्डिंस्कूलमें रहनेवाले अंगरेजी पढनेवाले विद्यार्थियोंको जो एक वर्षमें २॥ दिनतक धर्मशास्त्र पढाया जाता है उसकी पढाई जनवरीसे प्रारंभ हो गई है। अध्यापक श्रीयुत पं० लाला रामजी हैं।

सम्मेदशिखरजीपर जबसे घुडसाल बनना सुरू हुआ है, तबसे यहांकी गर्मपक्षके स्वेताम्बरी दिगम्बरी " जैनी भाइयोंमें बडी भारी हलचलसी मच गयी है। नित्य नयी प्राइवेट कमेटियां होतीं है -कई महाशय तो वंदेमातरंपत्रके एडीटर बाबू अरविंद घोषसे मिलने गये थे। कई महाशय तिलक महाराजसे सम्मति लेने गये कि ' अब हम क्या करैं " इत्यादि नानाप्रकारकी खटपट करते हैं परंतु जिनके हाथमें सम्मेदशिखरजीका पैसा है वे प्राय: एक दूसरेका सहारा लिये कुछ भी नहिं करके कालक्षेप कर रहे है। बंबईवाले तो समझते हैं कि कलकत्ते-वाले करैंगे कलकत्तेवाले बंबई वालोंकी राह देखते हैं। इसीप्रकार स्वेताम्बरी

भाई देखते हैं कि पहिले दिगंबरी भाई बाहिर हों और दिगम्बरी भाई देखते हैं कि पहिले स्वेताम्बरी भाई अगुआ हों, यहांपर मारवाडकी कहावत याद आती है कि–तूही राणी मैं ही राणी कौण भरै प्रिंडेका पाणी ? सो हमारी समझमें तो ऐसी अवस्थामें कुछ भी नहिं होना है ।

दिगम्बरजैनप्रांतिकसभा मुम्बईके बालख्याल ।

बाल ख्याल नं ३ ।

अबका ख्याल बहुत बढिया और बहुत बडा है । शोलापुर जिलेमें कुंथलगिरि १ प्रसिद्ध तीर्थ है वहां सेठ गणेश गिरधर परंडावालोंकी तरफसे मंगसर सुदि १२ को प्रतिष्ठोत्सव हुआ था जिसमें दशबारह हजार जैनी भाई आये थे। प्रतिष्ठोत्सवके प्रबंधकर्त्तावोंनें प्रांतिकसभासे दक्षिणी भाइयोंको लाभ पहुंचानेके लिये प्रान्तिक सभाको निमन्त्रण दिया था, सभाने भी सादर स्वीकार किया था परंतु मोकेपर मुख्य सभासद वा कार्याध्यक्ष सभाप्रति मंत्री उपमंत्री वगेरह को भी नहीं गये । गये केवल मात्र सभाका ल्कार्क सिपाही और एक संदूक। जिस मेलेवालोंको बहुत बुरा लगा । उन्होंने अपना बडा भारी अपमान हुआ समझ परन्तु विचारे करते हीं क्या लाचार ल्कार्क सिपाई पेटीको ही सभापति मंत्री उपमंत्र आदि मानकर सभाका कार्य प्रारंभ कराया। हर्ष है कि शोलापुरके कई चल्ते पुरे सभासदोंके आनेसे सभाका अधिवेशन एक रकम अच्छा होगया क्योंकि उस सम्मेदशिखरजीका प्रस्ताव रखनेके लिये कांग्रेस वगेरह तार वगेरह दि गये । परन्तु हमारे दानवीर सभाके सभापति सेठ माणिकचंदजीको यह ब बहुत बुरी लगी । खेद है कि हमारे सभापति साहब इन दश हजार दक्ष भाइयोंके चित्त दुखानेके लिये तो आप बीमार बन गये और जैन यङ्गमे एसोसियेसनके पांच सात बाबुओंकी खातिर तवाजो करनेके लिये हट्टे बनकर ५ दिन पहिले ही सूरतको चले गये ।

सूचना—पाठक महाशय ! छापखानेमें कंपोजीटरोंकी कमी हो जा कारण अबका अंक बहुत देरसे निकला है सो क्षमा करें ।

सम्पादक ।

Reg. No. B. 719.

होलीतक–वृंदावनविलासकी लूट– जारी रहैगी।

क्योंकि---जो महाशय पौष महीनेके भीतर २ जैनहितैषीका मूल्य १।) रु. और वृंदावनविलासके लिये ≈) कुल १।≈) भेज देंगे उनको ही हमने वृंदावन विलास **विनामूल्य लुटाना** स्वीकार किया था सो पौष महीना तो बीत गया परन्तु अभी तक अनेक महाशयोंने प्रमादसे वृंदावनविलासकी लूटका हमारा इस्तहार जो ३७ वे ३८ वे अंकमें छपा है नहि पढा. इसकारण फिर भी हम एक महीनेकी अवधि बढा देते हैं अर्थात् जो महाशय फाल्गुण सुदी पूर्णमासी तक १।≈) भेज देंगे उनको ही छठे अंकके साथ वृंदावनविलास **विनामूल्य** भेजा जायगा -**फाल्गुण सुदी १५ के पश्चात् मूल्य भेजनेवालोंको वृंदावनविलास विनामूल्य नहिं भेजा जायगा** किन्तु १।[illegible] की जगह २) रु. भेजनेसे ही **वृंदावनविलास** भेजा जायगा। इसकारण जिन महाशयोंको वृंदावन विलास सरीखा महान उपयोगी ग्रन्थ विनामूल्य लेना हो, वे शीघ्र ही एक रुपया पांच आने मनीआर्डर करके भेज दें। मनीआर्डरकी कूपनमें अपना पूरा पता साफ अक्षरोंमें लिखना कोई भी महाशय न भूलें।

विशेष उपहार।

वृंदावनविलासके साथ २ एक और भी अपूर्व ग्रंथ उपहारमें (विना मूल्य) भेजा जायगा जिसका नामादि इस अंकके भीतर पृष्ठ २४ में देखिये।

कूपनपर [illegible]–

अनेक ग्राहक महाशय मनीआर्डर भेजते हैं परन्तु खेद है कि मनीआर्डरके कूपनपर अपना पता नहीं लिखते- सो मनीआर्डर भेजनेवाले महाशयोंसे प्रार्थना है कि मनीआर्डरका फारम लिखते समय स्पष्ट देवनागरी लिपीमें मनीआर्डरकी रकम और अपना (ग्राहक बननेवालेका) पूरा २ पता कूपनपर लिख दिया करें और जवाबी कार्ड वा टिकट आये बिना किसीको भी जवाब नहि दिया जाता है यह बात भी ध्यानमें रक्खें।

निवेदक– नाथूराम- **पन्नालाल जैन**

मालिक–**जैनहितैषीकार्यालय**

जैनिककी चाल पोष्ट-**कालबादेवी** (बंबई)

ॐ

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र।
तिनहित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

चतुर्थ-भाग | माघ-वीरनिर्वाण संवत् २४३४। | अंक ४० वां.

महासभाका सुधार और उसके सभापति।

पाठक महाशय! हमारे यहांकी महासभा जिसका नाम **श्रीमती भारतवर्षीय दिगंबरजैनधर्मसंरक्षिणी महासभा** है और जिसके स्थापन करनेका उद्देश्य स्थापनकर्त्ता महाशयोंका यह था कि इसके द्वारा दिगम्बर जैन समाजमें एकता स्थापनपूर्वक संस्कृतविद्या और जैनधर्मसंबंधी समस्त प्रकारकी विद्याओंका प्रचार करके जैनधर्मकी रक्षा करना चाहिये। इस उद्देश्यकी सिद्धिकेलिये मुख्य कार्य उच्चकक्षाकी धार्मिक और संस्कृत विद्याकी पढाईके लिये एक '**दिगम्बरजैनसंस्कृतमहाविद्यालय**' स्थापन करना और उसको सांगोपांग करनेकेलिये उपदेशकभंडारकेद्वारा उपदेशक भेज २ कर प्रान्तिकसभाये तथा उनकी शाखासभाये स्थापन करानेका कार्य करना, जगह २ छोटी २ पाठशालायें स्थापन करना, उनकी उन्नतिके लिये **दिगम्बर जैनपरीक्षालय** स्थापन करना और इन सबको पुष्ट करने और प्रचार करनेके लिये एक साप्ताहिक **जैनगजट** निकालना आदि कार्य स्थापन करके महासभा और महाविद्यालयादिका काम धडाकेके साथ चलाया गया था जिसकी आज्ञासे उसकी छायामें रहकर प्रान्तिक सभायें भी स्थापन हुई जिनमेंसे बबईप्रान्तिकसभाने सबसे बढ़कर काम चलाये थे उसने एक **उपदेशक भंडार** एक **जैनमित्र** मासिक पत्र एक **संस्कृतविद्यालय** तथा शेषमें **परीक्षालय** भी स्वतंत्र स्थापन करके महासभाके उद्देश्योंका साधन करने लगी थी। महासभा भी

यथारीति उन दिनोंमें अच्छा कार्य चलाने लगी थी परन्तु उसके कार्यकर्ताओंमें अनेकता होनेसे विद्वान् कार्यकर्तागण महासभासे उदाशिनता धारण करके पृथक् हो गये तब महासभाका कार्य सब अंग्रेजी पढे बाबू लोगोंके ही हाथमें ही रह गया। जैनधर्मके जानकार जैनधर्मकी रक्षा करनेवाले विद्वानोंका हाथ निकल जानेसे हमारे उत्साही बाबु गण यथेच्छ मार्गसे प्रवर्त्तने लगे–जो चाहा सो महासभामें किया। जिससे जैनधर्मकी रक्षा करनेवाली महासभा केवल लौकिक धर्मकी रक्षार्थ अंग्रेजीका कालेज स्थापन करना आदि प्रयत्न करने लगी सो वह भी कुछ नहिं हो पाया क्योंकि धर्मको छोडकर वा धार्मिक कार्योंको गौण करके जो कार्य किया जायगा वह कदापि सम्पन्न वा फलप्रद नहिं हो सक्ता। विगत वर्ष हमारे बाबू लोगोंने महाबिद्यालयको मथुरासे उठाकर संस्कृतविद्याके संस्रवरहित म्लेच्छविद्या-प्रधान सहारनपुर नगरमें ले गये थे और महासभाका अधिवेसन भी वहीं पर नियतकराके महाविद्यालयके मुख्य उद्देशका खून करके उसे अंग्रेजी कालेज बनानेके उपायोंमें हद्दसे अधिक प्रयत्न किया था परंतु जैनमित्रकी तीव्र समालोचनासे वह अन्याय प्रयत्न सफलताको प्राप्त नहीं हुआ—शेषमें बाबू लोगोंके समूहमें भी अनेकताने प्रवेश करके उन सबको ढीले कर दिया। फल उसका यह हुआ कि, सर्वसाधारण जैनी भाईयोंकी जो कुछ महासभा पर श्रद्धा थी और उससे कुछ भलाईकी आशा रखते थे वह नष्ट हो गई। इसके पश्चात् गतवर्ष कलकत्तेमें एक अधिवेसन फिर भी हो गया परंतु वह अधिवेसन क्या था एक बच्चोंकासा खेल था। बलके महासभा और उसकी शाखा "**जैनयङ्ग-मेन्स एसोसियेसन** नामकी जैन्टलमेन सभाकी कार्यवाइयोंसे मालूम हुआ कि, हमारे बाबू-गण शीघ्र ही इस जैन्टलमेन सभाको ही महासभाका स्थानप्रदान करके महासभाका कार्य कुछ वर्षोंमें नेस्तनाबूद कर देंगे और इससे सर्वथा संबंध छोड देंगे, सोई कलकत्तेकी जैन्टलमेन सभाके गत वर्षके महासभाके अधिवेसनपर पृथक् तीनों प्रकारके जैनोंकी यह सभा है ऐसा प्रस्ताव करनेसे तथा अबकी बार सूरतमें तीनों जातियोंके सभा सदोंको एकत्र करके वार्षिक उत्सव करनेसे स्पष्टतया ज्ञात हो गया कि, यह **जैनयङ्गमेन्स एसोसियेसन** अब महासभाकी शाखा सभा नहीं है और इसके उद्देश भी अब पृथक् हैं। महासभाके मुख्य कर्त्ता हर्त्ता विधाता बाबू चंपतरायजी डिप्टी मजिष्ट्रेट महाशय भी अपना

काम नजीबादके लाला जुगमंधरदासजीके हाथमें देकर महासभासे पृथकसे हो गये हैं। अबकी बार बुंदेलखंडमें महासभाका अधिवेशन होनेवाला है जिससे हमें आशा थी कि अबकी बार महासभाका कुछ सुधार हो जायगा तो यह महासभा कुछ करने लग जायगी। परन्तु कार्यकर्त्ताओंका और जैनगजटका रंग ढंग देखनेसे ज्ञात होता है कि अबकी बार भी महासभाका सुधार होना कष्टसाध्य दीखता है। और २ सभावाले अपनी सभाका अगला अधिवेसन किस जगह होगा वह प्रथम अधिवेसनमें ही नियत करके अगले अधिवेसनके लिये दो तीन महीनेके बाद ही नानाप्रकारके आन्दोलन सुरू कर देते हैं बलके अपने श्वेताम्बरी जैन कान्फरेंसवाले ६–७ महीने पहिलेसे ही अपनी महासभाके भविष्यतके कर्तव्योंपर खूब आन्दोलन करके अधिवेसनको ऐसा उत्तम बना देते हैं कि सब अखबार उसकी तारीफ करते हैं। हमारे यहांकी महासभाका सभापति भी महीने बीस दिन पहिले निर्वाचित हो जाना कष्टसाध्य हो जाता है। इन सब खराबियोंका मुख्य कारण हमारी समझमें एक मात्र कार्यकर्त्ताओंकी बलके अगरेजी पढे और संस्कृती विद्वानोंकी अनेकता है। जबतक इनकी एकता न होगी तबतक महासभाका उद्देश कदापि सिद्ध नहिं होगा। इनकी एकता होना भी विन्ध्याचल और हिमाचलको एकत्र करनेकी कोशिश करना है-क्योंकि अंगरेजी विद्या ही ऐसी है कि धार्मिक श्रद्धान ज्ञान होनेसे पहिले इसके पढनेवालोंके चित्तमें धर्म व धर्मके जानकार विद्वानोंसे घृणा ऊत्पन्न कर देती है, उनके चित्तमें यही दृढ श्रद्धान हो जाता है कि इन संस्कृतके विद्वानों और पुराने आचार्योंके विछाये हुये जालने ही संसारकी समस्त प्रकारकी उन्नतिको वा राजपाटको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। और संस्कृत तथा धर्मग्रंथ पढनेवालोंके हृदय भी इतने संस्कृत हो जाते हैं कि उनको अंगरेजी पढे जेन्टलमेन बाबू और उनके आचारणोंसे परम घृणा हो जाती है, ऐसी अवस्थामें किसप्रकार संभव है कि इन दोनोंकी परस्पर घृणा दूर हो जावे। हमारे जैन्टलमेन बाबु लोगोंने इस घृणाको दूर करनेके लिये ही उन्होंने जैनयङ्मेन्स एसोसियेसन नामकी सभा स्थापन करके उसका मुख्य उद्देश्य अंगरेजी विद्वानोंमें धार्मिक श्रद्धान ज्ञान आचरणके प्रचार करनेका नियत किया था-परन्तु अब तो सायद यह उद्देश्य ही नहिं रहा-अगर हो तो भी हमारी समझमें ग्रेजुएट महाशयोंमें धार्मिक श्रद्धान ज्ञान आचरणकी शिक्षाका प्रचार करना भी चिरकालसे कोरे घडेमें भरी हुई हींगकी दुर्गंधको बाह्यो-

पचारसे निकालनेका प्रयत्न करना है और जब तक अंगरेजी पढे महाशयोंके श्रद्धान ज्ञान आचरण ठीक न होंगे तबतक संस्कृतज्ञविद्वानोंकी घृणा दूर होना असंभव है। इसकारण दोनों प्रकारके विद्वानोंमें एकता होना असंभव है।

जब ऐसी अवस्था है तो जैनधर्म और जैनजातिकी उन्नति किसप्रकार हो सकती है? इस प्रश्नका हल करना हम सरीखे अल्पज्ञोंकी लेखनीशक्तिसे बाह्य है किन्तु हमारी समझमें इस प्रश्नका समीचीन उत्तर देनेवाले और समीचीन उपाय बतानेवाले यदि हैं तो एक मात्र **जैनधर्मके सूर्य** व **जैनजातिके परमहितैषी श्रीमान् विद्वच्छिरोमणि पं. गोपालदासजी** **बरैय्या आनरेरी माजिष्ट्रेट मुरैना हैं।** क्योंकि ये महाशय जैनसिद्धान्तोंके अद्वितीय ज्ञाता होनेके सिवाय संस्कृत अंगरेजी विद्याके भी जानकार हैं। इन्होंने गतवर्ष कई लेखोंद्वारा महासभा और महाविद्यालयकी उन्नतिके समीचीन उपाय बताये थे। और अब भी यदि उन्हें कोई पूछे तो बतानेकेलिये तत्पर हैं. परंतु खेद इस बातका है कि हमारी समाजमें और खास करके महासभाके कार्यकर्ता और सभासदोंमें उनसे पूछने वा सुननेवाले ही कोई नहीं है। यदि दो चार हैं तो वे उस महा पुरुषके कथनके वा उपायोंके सूक्ष्म अभिप्रायको समझनेकी शक्ति रहित होनेसे उल्टी। वे तुर्की समालोचना करके चुटकियोंमें उडानेवाले हैं। गतवर्ष कलकत्तेवाले महाशयोंने कलकत्तेके अधिवेशनके लिये आपको बुलानेके लिये एक महाशयको भेजा था परन्तु पंडितजी साहबने उस समय अपना जाना व्यर्थ समझकर व्यापार आदिका कारण बताकर इनकार कर दिया था। जिसके लिये सहयोगिनी **जैनपताकाने** अबकी बार पंडितजीको महा सभाके अधिवेसन पर पधारनेके लिये प्रार्थना की है. परंतु इसप्रकार प्रार्थना करनेसे तथा बुलानेकेलिये एक आदमीको भेजदेनेसे ही पंडितजी साहबका पधारना होजाना कष्टसाध्य है। जो महाशय पंडितजीको इसप्रकारकी क्रियासे महासभामें बुलानेका प्रयत्न करते हैं वे भूलते हैं और वे पंडितजीको बुलानेकी क्रियासे अनभिज्ञ हैं।

यदि महासभाके कार्यकर्त्ता वा जैनसमाजके हितैषी महाशय गण महासभाका सुधार करनेकी इच्छासे उक्त पंडितजीको महासभाके अबके अधिवेसनपर बुलाकर उनकी अलौकिक विद्या और जातिहितैषिताका परिचय लेना चाहें तो उनको चाहिये कि—अबके अधिवेसनका अध्यक्षस्थान इन्हीं महाशयके

दर्शनीय शरीरसे सुशोभित करावें और उनके साथ साथ जितने संस्कृतज्ञ व धर्मरहस्यज्ञ जैनी विद्वान् हैं उन सबको विशेष प्रकारसे निमन्त्रणप्रदान पूर्वक अधिवेसनपर पधारनेकी प्रार्थना करनी चाहिये। जबतक इसप्रकारकी क्रिया नहिं किया जायगी हमारी समझमें पंडितजी साहब कदापि किसी अधिवेसनमें आनेके लिये व्यर्थ ही अपने उभयप्रकारके चालू कार्य छोडनेका प्रयत्न नहिं करेंगे। इस हमारे लिखनेसे अनेक महाशय ऐसा अभिप्राय न समझलें कि—उक्त पंडितजी साहब बडे मानी हैं जबतक सभापतिके स्थानप्रदानका मान न देंगे तबतक वे महासभामें आवेंगे ही नहीं। यदि कोई महाशय ऐसा समझें तो उनकी बडी भारी भूल है। हम पंडितजीके परिणामोंको भलेप्रकार जानते हैं-मान कषायका उदय उनमें जो समझते हैं वह कदापि नहीं है तथा सर्वथा ऐसा भी नहीं है कि वे मुनिकी समान निरभिमानी ही हों किन्तु गृहस्थ विद्वानोंको जिससे विद्यादेवीका अपमान न हो उतना मान रखना उनकेलिये उचित और एक भूषणावह होता है इसलिये कदाचित उतना मान रखते भी हों तो हमारे लिये वह भी भूषणावह है क्योंकि सर्वथा निरभिमानी पुरुषका प्रभाव चाहे वह विद्वान् हो चाहे राजा हो सर्व साधारणपर कदापि नहीं पडेगा। **दूसरे** जब हमारे पंडितजी विद्या धर्म व धर्माचरणादि गुणोंमें अद्वितीय हैं तो हमारा परमकर्त्तव्य है कि उनको बडेसे बडा अधिकार देकर बडे भारी सन्मानसे बुलाकर उनसे अपने कल्याणका उपदेश श्रवण करें। विना पूर्णतया आदरसत्कारके उनको बुलाना धर्म और उनकी अलौकिक विद्याका अपमान करना ही है। इसीकारण ही हम यह प्रस्ताव करते हैं कि, यदि महासभाका सुधार करके जातिधर्मकी उन्नतिकेलिये समीचीन उपायोंकी योजना करना हो तो अबके महासभाके अधिवेसन पर श्रीमान् पंडित गोपालदासजी महाशयको ही सभापतिका स्थान प्रदान करना चाहिये। यदि महासभाका सुधार करना किसीको भी मंजूर न हो और कलकत्तेके अधिवेसनकासा बालख्याल करना हो तो चाहे जिस निरक्षर लक्ष्मीपात्रको सभाकी खुरशी पर विठाकर अपनी हवस पूरी करलेवें। परन्तु यह बात याद रहे कि—जब तक महासभाके अधिवेसनपर जैनधर्मके ज्ञाता विद्वानको सभापति नहिं बनावेंगे तब तक कोई भी विद्वान् महासभाके अधिवेसनमें नहीं जावेगा। और जब तक जैनधर्मके जानकार समस्त देशके विद्वान्

महासभामें सामिल नहीं होंगे तब तक महासभाका " **भारतवर्षीयदिगम्बर जैनधर्मसंरक्षिणी महासभा** " ऐसा नाम रखना तीन कालमें भी सार्थक नहीं होगा। हम आशा करते हैं कि महासभाके कर्तागण इस प्रस्तावपर शीघ्र ही विचार करके उक्त पंडितजीसे सभापति बननेकी यथारीतिसे प्रार्थना अवश्य ही करेंगे. और पंडितजी साहबसे भी हम प्रार्थना करते हैं कि यदि महासभाके सभापतिके स्थानके सुशोभित करनेका नियमानुसार प्रार्थनापत्र आवे तो अवश्य ही स्वीकार कर लेवें।

महासभाके सुधारके विषयमें यदि उक्त महापुरुषको सभापति बनावेंगे तो वे अत्यन्त समीचीन सुधारोंकी सूचना देंगे ही परंतु हम भी इस समय इस विषयमें अपनी अल्पज्ञताकी एक सूचना दिये देते हैं यदि महासभाके कर्त्तागण इस सूचनापर ध्यान देंगे तो कुछ कार्य होनेकी संभावना है—

यह तो हम ऊपरके प्रस्तावमें कह ही आये हैं कि अंगरेजी विद्वानों और संस्कृतज्ञ विद्वानोंमें इस समय एकता होना असंभव है और जबतक एकता न हो पूर्णतया उन्नति होना भी कष्टसाध्य है इसलिये हमारी समझमें कुछ दिनतक दोनों प्रकारकी विद्वन्मंडलीको एकत्र होकर काम करनेकी जगह अपना २ काम बांटकर भिन्न २ काम करनेका नियम करना चाहिये। अर्थात् हमारे संस्कृतज्ञ विद्वान् तो लौकिक विषयोंसे प्रायःअनभिज्ञ हैं और अंगरेजीके विद्वान् धार्मिक विषयोंसे कोरे हैं। इसकारण-धार्मिक उन्नतिका कार्य तो सर्वथा संस्कृतज्ञ विद्वानोंको सौंप दिया जाय और लौकिक उन्नति करनेका कार्य अंगरेजीके विद्वानोंको सौंपदिये जांय। अर्थात महासभाके तो समस्त अधिकार संस्कृतज्ञ विद्वानोंके सुपुर्द कर दिये जांय और जैनयङ्मेन्स एसोसियेसनका काम अंगरेजी विद्वानोंके हाथमें है ही और अबकी बार महासभाके अधिवेसनपर एक प्रस्तावसे अनुमोदन करके उसके कार्योंमें लौकिक विद्या वगैरहकी उन्नति करनेकी स्वतंत्रता दे दी जाय। परन्तु दोनोंको सर्वथा स्वतंत्र भी नहिं हो जाना चाहिये। अर्थात् लौकिक सभाके लौकिक प्रस्ताव ऐसे होने चाहिये जिनसे धर्मके किसी भी कार्यमें बाधा न हो और धार्मिक सभाके धार्मिक प्रस्ताव भी ऐसे न होने चाहिये जो लौकिक प्रस्तावोंके विरुद्ध वा व्यर्थ करनेवाले हों। बलके महासभामें लौकिक प्रस्तावोंका अनुमोदन और लौकिकसभामें धार्मिक

प्रस्ताओंका अनुमोदन होना चाहिये। इसप्रकार परस्पर एक दूसरेके अविरुद्ध दोनों सभाके कार्य संपादन करने और परस्पर यथाशक्ति सहायता देना चाहिये इसप्रकार करनेसे दोनों मंडलीके विद्वानोंमें उत्तरोत्तर एकता भी बढती चली जायगी। परन्तु यह प्रस्ताव तब ही हो सकता है कि--अबके अधिवेसनपर श्रीमान् पंडित गोपालदासजी महाशयको सभापति नियत करके समस्त संस्कृतज्ञ विद्वानोंके साथ २ जैन जातिमें जितने ग्रेजुएट हों उन सबको भी इस अधिवेसनपर बुलाना चाहिये। यदि सरकारी नौकरी आदिके कारण समस्त महाशय गण नहिं पधार सकै तो प्रत्येक प्रान्तके पंडित वा ग्रेजुयेटोंकी तरफसे एक एक दो दो डेलीगेट नियत होकर आना चाहिये जिससे समस्त देशके समस्त विद्वान् भाइयोंकी सम्मतिसे उक्त प्रकारके दो विभाग करके दोनों सभावोंके कार्य नियत होकर अपनी २ शक्त्यनुसार कार्य चलाये जावें। आशा है कि इन दोनों प्रस्तावोंपर **जैनगजट जैममित्र जैनपताका** आदि दिगम्बर जैनसमाजके पत्र अपनी २ सम्मतिप्रदान करके समाजका हितसाधन करैंगे।

जैनजातिके क्षय होनेका कारण।

हजार दो हजार नहीं, दो तीन सौ वर्ष पहले ही जैनियोंकी ८४ जातियां और प्रत्येक जातिके लाखों घर विद्यमान थे। परन्तु आज हम देखते हैं कि, सारे भारतमें जैनियोंकी केवल २०-२५ जातियां शेष रह गई हैं, और उनमें भी अनेक ऐसी जातियां हैं. जो १०-२० वर्षमें समाप्त हो जावेंगी। सरकारी मनुष्यगणनाके अनुसार ही देखिये, तो मालूम होगा कि, सन् १८९१ में जैनियोंकी संख्या १५ लाखके अनुमान थी, वही घटते घटते सन् १९०१ की मनुष्यगणनाके अनुसार १३॥ लाख रह गई। अर्थात् १० वर्षमें हमारी जातिमें १॥ लाखकी न्यूनता हो गई! कितनी भयानक बात है? यदि आगें भी इसी हिसाबसे जैन जाति घटती रही, तो १००-१५० वर्षमें ही जैनियोंका नामशेष हो जावेगा। इसका कारण यह है कि, आरोग्यरक्षाके नियमोंकी ओर जैनजातिका ध्यान बिलकुल ही नहीं है। और आरोग्यरक्षा ही जीवनरक्षा तथा संतानवृद्धिकी जड है। स्वास्थ्यरक्षाकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है, कि अन्यान्य जातियोंमें प्रति हजार ३२ आदमी मरते हैं, परंतु जैनियोंमें ५३ मरते

हैं। सारांश यह कि, आरोग्यरक्षाके नियमोंका पालन अन्य जातियां जितना करती हैं, जैनजाति उतना भी नहीं करती।

स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंकी पालना न करनेसे एक तो आयुका शीघ्र ही क्षय हो जाता है, दूसरे संतान कम होती है और जो होती है, वह कम जोर तथा अल्पायु होती है। इसीसे दस वर्षमें जैनियोंकी कुल मनुष्यसंख्याका प्रायः दशवां हिस्सा न्यून हो गया, जिसे सुनकर हृदय कंपित हो जाता है।

इस लेखमें स्वास्थ्यरक्षाके अन्य नियमोंका विचार न करके हम केवल गर्भाधानसंस्कारके विषयमें कुछ लिखेंगे, जिसकी ठीक २ पालना न होनेसे संतान कम होती है, कम जोर होती है. और कम उमर होती है।

पूर्वकालमें हमारे हितैषी आचार्योंने जो संस्कारविधिके ग्रन्थ निर्म्माण किये हैं, उनका हमारी आरोग्यरक्षासे बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन दिनों उक्त संस्कारविधिके नियमोंका ठीक २ पालना होता था, उन दिनों हमारे यहां बडे २ पराक्रमी बुद्धिशाली महापुरुष होते थे, जिनका नाम संसारमें अभीतक अमर है। परन्तु कालके कुटिल चक्रमें पड़कर जबसे हम संस्कार हीन हो गये हैं, तबसे हमारे समाजमें निःसत्त्व बुद्धिहीन, कायर, खुशामदी लोगोंकी वृद्धि हो रही है. और जाति दिनपर दिन क्षय होती जाती है। सोना चांदी जैसी धातुओंको भी जब संस्कारके विना धातु संज्ञा नहीं होती और मिट्टीके तुल्य समझी जाती हैं. तब संस्कारहीन मनुष्य, मनुष्योंकी गिनतीमें कैसे आ जावेगा? इस बातको यदि हमारा समाज समझने लगे, और त्रिवर्णाचारादि ग्रन्थोंके द्वारा संस्कारविधिका प्रचार करनेको कटिबद्ध हो जावे, तो हमारी यह शोचनीय अवस्था बहुत दिन तक नहीं रहे।

षोडशसंस्कारोंमेंसे जन्ममृत्यु और विवाहसम्बन्धी अनेक संस्कार हमारे समाजमें अब भी किसी न किसी रूपमें प्रचलित हैं परन्तु जिससे सृष्टिका सबसे बडा भारी उपकार होता है, जिससे स्त्रीपुरुषोंकी स्वास्थ्यरक्षा और संतानके बुद्धि–बलका सबसे अधिक सम्बन्ध है, उस गर्भाधानसंस्कारका तो कामोन्मत्त नरपिशाचोंने समूल ही संहार कर दिया है। जिससे बड़े २ घरानोंके नामो निशान मिट गये, और घर २ वंध्या और बालविधवाओंके झुंडके झुंड नजर आने लगे। अब यदि किसी घरमें दो चार लडके बच्चे दिखलाई देते हैं, तो वेचारे इतने शक्तिहीन और रोगग्रस्त होते हैं कि, उनका

होना न होना बराबर होता है। कुलको कलंकित करने और बापदादाओंके संचित धनको नष्ट करनेके सिवाय उनसे और कुछ भी नहीं हो सकता।

पाठक महाशय! गर्भाधानविधिके विषयमें शास्त्रीय विचार वा विधि प्रगट करनेकेलिये तो आज स्थान नहीं है, अवकाशके अनुसार फिर कभी इसका उपक्रम करेंगे। आज हम केवल इसकी आवश्यकता बतलाना चाहते हैं। हमने दक्षिण प्रान्तके बहुतसे स्थानोंमें घूम कर देखा है कि, वहांकी प्रायः समस्त समाजोंमें गर्भाधानसंस्कार यथाविधि किया जाता है वहांपर प्रथम तो लडके लडकियोंका विवाह ही बे जोडका और बे समय नहीं होता, प्रायः "**द्वादशवर्षा कन्या षोडशवर्षः पुमान्**" का ही सम्बन्ध होता है। दूसरे पाणिग्रहणके समय करस्पर्शनकरनेके सिवाय दम्पतिका एकान्त संवास तब तक नहीं होता, जबतक कि दुलहिन स्वाभाविक वयःप्राप्त अर्थात् रजस्वला न हो जावे। मासिकधर्म होनेके पहले इस प्रान्तमें द्विरागमन (गौना) ही कभी नहीं हो सकता। यदि इसकेसिवाय आवश्यक समयपर दुलहिनको पतिके घर जाना पडता है, तो परस्पर दर्शन मात्रसे ही दोनोंको संतोष करना पडता है। एकान्तवास कभी भी नहीं होने पाता! इसके विरुद्ध हमारे यहां विशेषकर मारवाडी भाइयोंमें विवाह होनेके दूसरे ही दिन चाहे दुलहा दश अथवा साठ वर्षका हो और दुलहिन आठ ही वर्षकी क्यों न हो, एकान्तवास अथवा सुहागरात्रि मनाई जाती है। यह कितना बड़ा राक्षसी कृत्य है। इसप्रकार अप्राप्त अवस्थामें जो नरपशु एकान्तवास करते तथा कराते हैं. यदि उनका ही वंश ध्वंस नहीं होगा तो और किनका होगा? यह कितनी बडी लज्जाकी बात है कि जिस कर्मको पशु भी नहीं कर सकते हैं, उसको समनस्क पंचेन्द्रिय मनुष्य करता है, और सो भी जैन कुलमें उत्पन्न होकर! पशुओंमें कोई भी ऐसी जाति नहीं है, जो यौवनावस्था प्राप्त होनेके पहले कामसेवन करता हो। एक मनुष्य ही ऐसा अति पशु है, जो अपने हाथसे ही कुठाराघात करके अपना वंशच्छेद करता है।

यदि यह कार्य इतना गर्हित और हानि कारक न होता, तो बारह वर्षसे कम उमरकी लडकीके साथ एकान्तवास करनेवालोंके लिये गवर्नमेंटकी ओरसे सख्त कारागारका दंड देनेका नियम नहीं बनाया जाता। यह घोर अपराध है, इसीलिये ही ऐसा नियम बनाया गया है। परन्तु खेद है, कि हम लोग अपनी

म्लेच्छतृष्णाको पूर्ण करनेकेलिये सरकारकी आज्ञाको भी पैरोंसे रोंधनेमें संकुचित नहीं होते। अस्तु, सरकारकी नजरसे तुम भले ही बचे रहो, परन्तु याद रक्खो, तुम्हारे इस वृहत्पापकर्मका बदला तुम्हे अवश्य ही मिलेगा।

देखो! आज ये जितनी बालविधवायें दिखलाई देतीं हैं, तुम्हारे इसी गर्हित कृत्यके कारण से हुई हैं। जितनी सन्तानहीन स्त्रियां हैं, तुम्हारे इसी महापापके फलसे हैं, जितनी स्त्रियां प्रदरादि रोगोंसे व्याकुल हैं, तुम्हारे इसी पापकार्यके असरसे ही हैं, और जितने रंडुए हैं, अर्थात् विवाहके दोचार वर्षके पश्चात् ही अपनी स्त्रियोंको परलोकका रास्ता बता चुके हैं, इसी अत्याचारके कारणसे ही हैं। कहां तक कहें, ये जो घर २ में सत्त्वहीन कान्तिहीन और मूर्ख लडके दिखलाई देते हैं, इसी पैशाचिक अत्याचारके ही फलस्वरूप हैं।

हाय! लोग कैसे अविचारी हैं कि, संतान न होनेके कारण जब वंशक्षयका भय हो जाता है, तब अतिशय दुःखी होते हैं, और आखिर दूसरे किसी गोत्रज लडकेको गोद लेकर पराये पुत्रसे पुत्रवान बननेको तयार हो जाते हैं, परन्तु इस जरासी विषयाभिलाषाको नहीं छोडते!

भाइयो! दक्षिणदेशमें जिस दिन विवाहिता लडकी रजोवती होती है, उस दिन जहांपर उसका पति होता है, चिट्ठी लिखकर अथवा तार देकर बुलाया जाता है। यदि कारण विशेषसे उसके आनेमें दश पांच दिनकी देरी हो जाती है, तो उस लडकीको चतुर्थस्नान नहीं कराया जाता। एक कागजकी कोठरी बना दी जाती है, जबतक कि पति न आवे, वह उसीमें सोती बैठी रहती है और किसी भी पुरुषका दर्शन नहीं करती है। जब पति आ जाता है, तब चतुर्थस्नान करके सबसे पहले उसीके दर्शन करती हैं। उसीदिन रात्रिको वे दोनों झूलेमें बिठाकर झुलायें जाते हैं, और नानाप्रकारके शास्त्रीय शान्तिकारक विधान तथा उत्सव करके उनका एकांतवास तथा गर्भाधानविधि कराई जाती है। प्यारे भाइयो! कैसी अच्छी विधि है यही विधि हमारे आचार्योंने त्रिवर्णाचारादि ग्रन्थोंमें लिखी है। वह दिन कब होगा, जब आप लोग भी अपने त्रिवर्णाचारादिके अनुसार इसी प्रकारसे इस आवश्यकीय संस्कारको वर्तावमें लाओगे और उक्त महापापके कारण अत्याचारको जातिसे शीघ्र ही निकालकर अपनी जातिकी वा कुलकी रक्षा करोगे इत्यलम्।

लालाराम जैन बंबई।

मनोविनोद ।

(८)

दो बाबुओंका वार्तालाप ।

एक बाबू—कहिये बाबू-साहब आजकल कौन २ सा अखबार पढते हैं ?

दूसरा—भाई आजकल तो कई नये अखबार और कई पुरानोंसे नये होकर निकले हैं अर्थात् कलकत्तेसे जैनपताका, सूरतसे दिगम्बरजैन (गुजराती) वर्धासे जैनबंधु ये तीन तो नये पत्र आते हैं और देवबंदसे जैनगजट बम्बईसे जैनहितैषी, जैनमार्तंड नये उत्साह और विशेष सुधारके साथ निकले हैं। जैनमित्र समस्त विषयोंसें भूषित होकर निकलने लगा है ।

पहिलाबाबु—इनमेंसे तरक्की किस अखवारने की है ?

दूसराबाबू—'जैनगजटने' क्योंकि आजकल इसमें प्राय: सब लेख वचनिकारूप जैनग्रंथोंसे उद्धृत करके लिखे जाते हैं अर्थात् इसमें जैनग्रंथ छपने लगे जिससे हमारे भाई सभा करते हैं तो उसमें और कुछ भी व्याख्यान नहीं देकर जैनगजटको ही पढकर सुना देते हैं शास्त्रजीकी सभामें भी रोज २ अब शास्त्रजी न वांचकर सातवें दिन इसी जैनगजटको वांचकर सुना देनेसे काम चल जाता है । सायद कहीं २ पूजा करते समय भी इसीको बांच देनेसे पूजा हो जाती होगी । जैनशास्त्रोंके उत्तम लेखोंके कारण हमारे जैनी भाई इसपर इतने मोहित हो गये हैं कि-सोते बैठते चलते फिरते जीमते और तो क्या.........जाते भी जैनगजटकी स्वाध्याय किया करते हों तो ताज्जूब नहीं ।

पहिला—तब तो इसके ग्राहक भी बहुत बढ गये होंगे ?

दूसरा—इसमें क्या सक है ? सुना है कि इसके २००० ग्राहक हो गये हैं ।

पहिला—तब तो बडी भारी उन्नति की है पहिले युगका घाटा इस एक ही वर्षमें पूरा हो जायगा । परन्तु बाबुसाहब यह पत्र तो महासभाका है न ?

दूसरा—वेशक !

पहिला—तब तो इसमें जैनग्रंथ छपने सुरू हो गये सो बडा भारी अन्याय हो गया-महासभा तो छापेकी कट्टरविरोधिनी है उसने तो छपे ग्रंथोंके प्रचारको

रोकनेकेलिये मथुरामें एक हस्तलिखित ग्रंथोंका सरस्वतीभंडार स्थापन किया था ?

दूसरा—बाबू-साहब महासभा छापेकी विरोधिनी होगी परन्तु महासभाके मंत्रीगण तो विरोधी नहीं हैं वे तो हमेशह छापेके प्रचार करनेवाले हैं। इसीलिये जैनगजटमें आज कल जैनग्रंथोंसे उद्धृत किंवा अनुवाद किये हुये उपदेश (लेख) छपते हैं और इसीलिये जैनगजटके सुयोग्यसंपादक बाबू जुगुलकिशोरजीने जैनपताकामें अलीगढ़निवासी छापेके महाविरोधी पंडित प्यारेलालजीके भतीजे पं. श्रीलालजीके धार्मिक लेखोंमें आत्मानुशासनके श्लोक व अर्थ—छपते देखकर जैनगजटमें बडा भारी हर्ष प्रगट किया था !

पहिला-तब तो जैनगजट महासभाके उद्देशोंका बडा भारी विरोधी है परंतु ऐसा नहीं होगा तुम जैनग्रंथ छापनेका झूटा दोष मढते हो। मैंने सुना है कि एक जैनग्रंथ प्रकाशकने विज्ञापन छापने और बांटनेकेलिये एक प्रार्थना पत्र भेजा था परंतु बाबूसाहबने छापने व बांटनेसे साफ २ इनकार कर दिया था।

दूसरा—नहीं ! साफ २ कदापि इनकार नहीं किया होगा क्योंकि मैं-बाबू साहबको अच्छीतरहसे जानता हूं कि-वे छापेके बडे पक्षपाती हैं। २४ सितंबरके जैनगजटके साथ देवबंदनिवासी जैनीलालजीका छपे जैनग्रंथोंका सूचीपत्र तो बांटा था।

पहिला—बाबूसाहब जैनीलालजी तो खास देवबंदके रहनेवाले हैं सो बाबुसाहबके यार दोस्तोंमें होंगे इसलिये गुपचुप बांट दिया होगा।

दूसरा—वाह बाबू साहब वाह ! तुमने यह कहावत नहीं सुनी कि-'**गुड़तो खाय और गुलगुलोंसे परहेज**' सो संपादक साहब क्या इसी लोकोक्तिको चरितार्थ करते हैं !

(९)

बगुला चरित्र।

(नवीन हितोपदेशसे उद्धृत)

तीर गोमतीके रहता था, एक बडा ध्यानी बगुला।
बडे वृक्षपर उसका घर था, वहीं बैठता पंख फुला ॥

रंग ऊपर उज्ज्वल था लेकिन, दिल भींतरसे था काला ।
अपने घरमें आप अकेला, नहिं जोरू नहिं था साला ॥ १ ॥
बानी उसकी कोमलसी कुछ, सूरत भी भोली भाली ।
मंद चाल थी सीधी सादी, लेकिन लंबी डगवाली ॥
आँखें उसकी चपल गोल थीं, पलकोंमें छिपनेवालीं ।
लेकिन ध्यान लगानेमें थीं, नहीं जरा डिगनेवालीं ॥ २ ॥
प्रात: जब सरितामें जाकर, एक पैरसे होय खड़ा ।
भोली मछली उसे समझतीं, यह तपसी है कोई बड़ा ॥
क्या मजाल जो भोंह–चोंच या, चोटी–ग्रीवा हिल जावे ।
शांत समझ चैली[1] गर सम्मुख, आई तो क्या बच जावै ॥ ३ ॥
इसी दशामें सरिता तटपर, रह कर ही वह बड़ा हुआ ।
मार मार झख[2] जीवनकाटा, रहा भुवन[3]में पड़ा हुआ ॥
इसप्रकार बहु काल बिताया, तब उसका जी घबराया ।
देशाटन करनेका दिलमें, शौक़ खूब ही चर्राया ॥ ४ ॥
गरज वहाँसे शुभ सायतमें, पश्चिमकी दिशको उडकें ।
चला अकेला जन्मभूमितज, भाग्य भरोसेको करकें ॥
कुछ दिन फिरा भटकताासा वह, मारा मारा यहां वहां ।
एकरोज क़िस्मतसे पहुँचा, रहते थे कुछ हंस जहां ॥ ५ ॥
निर्मल अगम पयोनिधि देखा, तब उसके दिलको भाया ।
रत्नाकर सुन नाम और भी, मुँहमें पानी भर आया ॥
बना किनारे महल विलोका, और खूब जी हरषाया ।
रत्नाकरके राजभुवनमें, जाय आपको ठहराया ॥ ६ ॥
अपनाहीसा देख हंसकुल, रूप–रंग–पंखोंवाला ।
रत्नाकरके तटपर ही है, आनंदसे रहनेवाला ॥
यह सब था अनुकूल मगर वह, मोतीका चुगनेवाला ।
तब शरमाया इसकारण कि, मैं झखका भखनेवाला ॥ ७ ॥
सोचा किया देर तक दिलमें, कैसे रहने पाऊंगा ।
गर मेरा खुलगया भेद तो, तुरत भगाया जाऊंगा ॥

---

१ चैलीली खूबसूरत छोटी मछलीको कहते हैं (२) मछलियें (३) पानीमें।

हां। लेकिन 'बकव्रत , जो पालूं, तो मुझको भोला भाला ।
समझि मराली दिया करेंगी, सुंदर मोतिनकी माला ॥ ८ ॥
देख दूरसे एक हंसनी, पहिले दिलमें घबराई ।
है कोई यह अजब जानवर, बला कहांसे घुस आई ॥
राजहंससे कहकर उसने, भेदभाव सब पुछवाया ।
जाति पांति कुल आदि जानकर, पास उसे तब बुलवाया ॥ ९ ॥
बोली तुम हो जलतटवासी, तो मेरे ही कुलसे हो ।
क्यों शरमाते आनेमें हा? कुछ डरते आकुलसे हो ॥
रहो खुशीसे सदन तुम्हारा, खाते शीतल पवन रहो ।
मानिकसम मोतिनसे जीवन, पालो तुम मनमगन रहो ॥ १० ॥
इतना सुनते ही बगुलाजी, मनही मनमें फूल गये ।
टांग उठा इक, ग्रीव सिकोडी, धवल कमलसे फूल भये ॥
" परदेशीपर किया अनुग्रह, तुमको होगा पुण्य बडा ।
चरनदास हो झूटन खाकर, यहीं रहूंगा कहीं पडा "॥ ११ ॥
इसप्रकार जब हुआ खुशीसे, बगुला हंसोंमें शामिल ।
जान पडा कि बैल गया है, सींग तुडा बछडोंमें मिल ॥
व्याघ्रचर्मको ओढ गधा भी, सिंहवंश अवतंस हुआ ।
चाल सीखकर आधी धूधी, कौआ भी कलहंस हुआ ॥ १२ ॥
यों रहने वह लगा चैनसे, दे जीवन परके करमें ।
पर दिलहीमें कुढ़ता है ज्यों, नीमकीट अम्रतसरमें ॥
पहिलेसा झख मार मारकें, खाना उसका खुलाखुली ।
छूट गया जाहिरमें लेकिन, हड़प गये जब जहां मिली ॥ १३ ॥
लेकिन कै दिन चलैगी ऐसी, उसकी यह बगुलाभक्ती ।
हांडी काठ किसी विधिसे नहिं, बार दूसरी चढ़ सक्ती ॥
'पड़दा जबतक पडा हुआ है तबतक है इज्जत सारी ।
खुला भेद तो मुझे खौफ है, फिरै कहीं मारी मारी ॥ १४ ॥
हंसमंडलीमें जिसदिनसे, बगुलाजी हैं घुस आये ।
नीरछीरका न्याय भूलगये, हंस अहंसा कहलाये ॥
सच है बुरा साथ कज्जलसा, होता है काला काला ।

साफ दिलोंको कर देता है, साफ साफ वह दिलकाला ॥ १५ ॥
बकचरित्रका कहना पाठक ! खाली एक बहाना है ।
बुरी आदतें जिन्हें पड़ी हों, उन्हे राहपर लाना है ॥
बगुला कैसा कहां हंस है, किसने देखा भाला है ।
मीर कौन नहिं इसे जानता, कविका पंथ निराला है ॥ १६ ॥

विविधसमाचार ।

शोक है कि—श्रीमतीभारतवर्षीयदिगंबरजैनधर्मसंरक्षिणी महासभाके स्थायी सभापति मथुरानिवासी श्रेष्ठिवर्य **द्वारका प्रसादजीका** ता २० जनवरीको परलोकवास हो गया। आपकी उमर बहुत ही थोडी थी आप खंडेलवाल जैनवंशोत्पन्न होनेपर भी आपका धर्म श्री वैष्णव था । जैनधर्मसे सर्वथा अनभिज्ञ थे तथापि आप दिगंबर जैनधर्मसंरक्षणी महासभाके स्थायी सभापति बनाये गये थे क्योंकि आपके पिता श्रीमान् राजा लक्ष्मणदासजी सी. आय. ई. भी इसी सभाके सभापति थे। महा सभाके कार्याध्यक्षोंसे प्रार्थना है कि अब वार्षिक अधिवेसनसंबंधी तीन दिन काम चलानेकेलिये चाहे जिस धनपात्रको सभापतिकी खुरशीपर बिठा देवैं परंतु स्थायी सभापति किसी ऐसे विद्वान्को बनाया जावै जो कि जैनधर्मके रहस्योंको भलेप्रकार जानता हो ।

नामपरिवर्तन—हमारी महासभा जब स्थापन हुई थी तो उस समय उसके उद्देशानुसार '**श्रीमती भारतवर्षीयदिगम्बरजैनधर्मसंरक्षिणी महासभा**' नाम रक्खा गया था परन्तु खेद है कि कई वर्षोंसें इस नाम मेंसे '**धर्मसंरक्षणी**' शब्दकों उडा दिया गया है अब महा सभाके कागजात व विज्ञापनों वगेरहमें '**भारतवर्षीयदिगम्बरजैनमहासभा**' इतना ही नाम लिखा वा छापा जाता है सो इसका कारण क्या है सो मालूम नहीं हुआ । क्या किसी प्रस्तावकेद्वारा धर्मरक्षाके शब्दको कालापानी कर दिया गया है ? या महासभाका मूल उद्देश ही पलट गया? हमको आशा है कि इसके मूल कर्त्ता हर्त्ता विधाता श्रीमान् बाबू चंपतरायजी महामंत्री तथा वर्त-

मानके सहायक महामंत्री साहब इसका शीघ्र ही उत्तर प्रदानसे हमारे हृदयको शांत करेंगे ।

नये बोर्डिंगका मुहूर्त—सुना है कि फाल्गुण सुदी ७ को शोलापुर नगरमें **'नाथारंगजी दिगम्बरी जैनबोर्डिङ्ग स्कूल सोलापुर'** नामका एक जैन बोर्डिङ्गहाउस स्थापन होगा, मूल फंड कितना है सो मालूम नहीं परंतु सौ रुपयोंमेंसे ४० रुपये संस्कृती विद्यार्थियोंके स्कालरोसप वगेरहमें व्यय किया जायगा आशा है कि इस बोर्डिङ्के स्थापक और प्रबंधकर्त्ता महाशय बोर्डिङ्में रहनेवाले अंगरेजी विद्यार्थियोंको धर्मशिक्षणका प्रबंध उत्तम रीतिसे करेंगे ऐसा न हो कि दानवीर सेठ साहबके बंबईके जैन बोर्डिङ्की तरह वर्ष भरमें कुल २॥ दिन (६० घंटे) ही धार्मिकशिक्षा दी जाय ।

लेखकोंके नाम—कलकत्तेकी सहयोगिनी **जैनपताकाकी** एस. बी. एक जैनी. इत्यादि गुप्त नामोंसे लेख छपानेवाले डरपोंक वा अपात्र लेखकोंके नामोंकी समालोचनासे हमेशह अपनेको **एक जैनी** लिखनेवाले एक लेखक. अबसे अपना नाम स्पष्टतया अपने लेखके नीचें छपाने लगा है ।

ईडरके पंचोंका अपमान—ईडरके पंचोंने अपने यहांकी पाठशाला वगेरहके प्रबंधकेलिये अपनी जातिके शिरोमणि समझ दानवीर सेठजीको अपने यहां पधारनेकी प्रार्थना किया थी दानवीरजी भी ता. २४ दिसंबरको सूरतसे वहां जाना स्वीकार किया था जिससे वहांके पंचगण बडे हर्षायमान हुये, परंतु सेठजी साहब जब सूरत पधारे तो वहां न मालूम किस धर्मात्माने सेठजीको बहका दिया जो सेठजीने जानेंसे इनकार करके ईडरके पंचोंको हृसोत्साह कर दिया । उन्होंने रातोरात अहमदावाद जाकर फूल वगेरहमे सन्मानार्थ तैयारी करनेमें ५०) ६०) रुपये खर्च करके से[illegible] सन्मानका बहुत कुछ प्रबंध किया था सो सब मिट्टी हो गया। सेठजी[illegible] प्रकार जानेकी प्रतिज्ञा करके दो चार बाबूओंके सन्मानार्थ अपनी जाति[illegible] पांचसौ जैनी भाइयोंका अपमान करना कदापि उचित नहीं था क्योंकि न[illegible] उस उमडे हुए उत्साहमें ईडरके पंच क्या क्या नये धर्मकार्य कर डालते [illegible] कितना लाभ होता उसपर कुछ भी विचार नहीं करकें केवल दूसरोंकी ही [illegible] हसे इसप्रकार करडालना कदापि उचित नहीं था ।

नयीविक्रयार्थ आई हुई पुस्तकें ।

संशयतिमिरप्रदीप ।

यह पुस्तक हाल ही छपकर तयार हुई है । इसमें पंचामृताभिषेक, केशर लेपन, पुष्पपूजन, आदि विषयोंका अनेक ऋषि प्रणीत ग्रन्थोंके आधारसे निर्णय किया गया है । तेरहपंथी और बीसपंथी दोनो ही पक्षके सज्जनोंको यह पुस्तक मंगाकर पढना चाहिये । मूल्य सिर्फ ।) आना मात्र है ।

जीवदया ।

बाबू माणिकचन्दजी जैन बी. ए. ने यह अपूर्व पुस्तक लिखी है । इसकी मोडर्न रिव्यू अंगरेजी जैनगजट, नागरीप्रचारिणी सभा, नागरीहितैषिणी पत्रिका, सरस्वती, हिंदीग्रंथमाला, [illegible]प्रदीप, राघवेन्द्र, स्वदेशबांधव, बंगवासी, [illegible]समाचार, भारतमित्र, भारतजीवन, हिंदीजैनगजट, जैनमित्र, [illegible]मित्र, मोहिनी आदि हिन्दी अंग्रेजी सब ही अखबारोंने इसकी तारीफ की है। धर्मात्माओंको दो २ चार प्रतियां मंगाकर आप पढना चाहिये, और अपने [illegible]धर्मी मित्रोंको भेट करना चाहिये । मूल्य ।=) मात्र ।

जैनधर्मामृतसार द्वितीयभाग ।

यह पुस्तक वर्धा सभाने छपाया था पहिले हमारे पास मिलता था बीचमें [illegible]रे पास नहीं रहा इस कारण सूची पत्रमेसे इसका विज्ञापन उठा दिया था [illegible] भाइयोंकी फरमायस आते रहनेसे फिर भी हमने इसकी कई प्रतियें [illegible] है । इसमें प्रश्नोत्तररूपमें श्रावकाचार, तत्त्वविचार, और नित्य क्रिया हिन्दी भाषामें तथा मराठी भाषामें मूल श्लोक व प्रमाण सहित लिखी है [illegible] भाषा और हिंदी भाषावाले बालक युवा वृद्ध तथा स्त्रियोंके लिये बडा [illegible]गी ग्रंथ है । मूल्य १) रुपया डांक खर्च जुदा ।

मिलनेका पत्ता—

मालिक-जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय

हीराबाग पो० गिरगांव (मुम्बई)

होलीतक-वृंदावनविलासकी लूट-जारी रहैगी।

क्योंकि—जो महाशय पौष महीनेके भीतर २ जैनहितैषीका मूल्य १।) रु. और वृंदावनविलासके लिये ≈) कुल १।≈) भेज देंगे उनको ही हमने वृंदावन विलास **विनामूल्य लुटाना** स्वीकार किया था सो पौष महीना तो बीत गया परन्तु अभी तक अनेक महाशयोंने प्रमादसे वृंदावनविलासकी लूटका हमारा इस्तहार जो ३७ वें ३८ वें अंकमें छपा है नहिं पढा. इसकारण फिर भी हम एक महीनेकी अवधि बढा देते हैं अर्थात् जो महाशय फाल्गुण सुदी पूर्णमासी तक १।≈) भेज देंगे उनको ही छट्टे अंकके साथ वृंदावनविलास **विनामूल्य** भेजा जायगा—**फाल्गुण सुदी १५ के पश्चात् मूल्य भेजनेवालोंको वृंदावनविलास विना-मूल्य नहिं भेजा जायगा** किन्तु १।≈) की जगह २) रु. भेजनेसे ही **वृंदावनविलास** भेजा जायगा। इसकारण जिन भाइयोंको वृंदावन-विलास सरीखा महान् उपयोगी ग्रन्थ विनामूल्य लेना हो, वे शीघ्र ही एक रुपया पांच आने मनीआर्डर करके भेज दें। मनीआर्डरकी कूपनमें अपना पूरा पता शास्त्री अक्षरोंमें लिखना कोई भी महाशय न भूलें॥

लीजिये ! दूसरी भेट।

अर्हत्पासा केवली

पाठक महाशय ! हमारे धर्मके पुराने पंडितोंमें एक-विनोदीलालजी संस्कृतके बडे भारी पंडित हो गये हैं उन्होंने संस्कृत श्लोकोंमें एक **अरहंत्पासा केवली** नामक ग्रंथ बनाया था उसको सर्वसाधारण जैनी भाइयोंके हितार्थ **कविवर वृंदावनजीने** दोहे चौपई छंदोंमें भाषानु-वाद कर दिया था—सो यह पुस्तक कारणविशेषसे हम **वृंदावनविला-सके** साथ नहिं छपा सके परन्तु यह पुस्तक भी हमने जुदा छपाया है सो समस्त ग्राहकोंको यह पुस्तक भी वृंदावनविलासके साथ **विनामूल्य** ही भेजेंगे।

यह एक बहुत ही उपयोगी और अपूर्व पुस्तक है इसीलिये जैनहितै-षीके ग्राहकोंकी भेटमें विनामूल्य पहुंचानेका प्रबंध किया है। आशा है कि इसको पाकर हमारे ग्राहक गण बहुत ही प्रसन्न होंगे।

पन्नालाल जैन, पो० कालबादेवी, (बुम्बई.)

ॐ

जैनहितैषी.

अथवा

(जैनसमालोचक)

मासिक पत्र.

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा संपादित व प्रकाशित।

चतुर्थ भाग	फाल्गुन वीरनिर्वाण संवत् २४३४।	अंक ४१ वां

नियमावली

१। इस पत्रका [illegible] मूल्य डांकखर्चसहित अग्रिम १।) और पीछेसे २) रु० है। और [illegible] तक जिनका मूल्य आजायगा वह अग्रिम समझा जायगा। फुटकर अंकका मूल्य ।) आने।

२। यह पत्र [illegible] अनेक महाशयोंके पास भेजा जाता है। प्रथम अंक पहुंचनेपर यदि कोई महाशय कार्डद्वारा सूचना देंगे अथवा दूसरा अंक लौटा देंगे तो उनका नाम काट दिया जायगा। जो महाशय न तो नाम काटनेके लिये कार्ड भेजेंगे और न दूसरा अंक लौटावेंगे वे महाशय पक्के ग्राहक समझे जांयगे। और उनको ५ अंक तक भेजकर छट्ठा अंक वी. पी. द्वारा भेजा जायगा।

३। जो भाई साफ २ हिंदीके सिवाय उर्दू, अंगरेजी व मूडी वगैरहमें चिट्ठी भेजेंगे उनकी तामील नहिं होगी व रद्दीमें फेंक दी जायगी।

पत्र व मूल्य भेजनेका पता—पन्नालाल जैन,

जौलिकरकी चाल पो. कालबादेवी (मुंबई.)

कर्नाटक छापखाना मुंबई.

ॐ

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

| चतुर्थ— भाग. | फाल्गुण-वीरनिर्वाण संवत् २४३४ । | अंक ४१ वां. |

महासभाके सभापति ।

हर्ष है कि-अबकी बार कुंडलपुरके अधिवेशनपर सभापतिका आसन देव-प्रकृति श्रीमान् बाबू देवकुमारजी रईस आनरेरी मजिष्ट्रेट आरानिवासीने स्वीकार किया है-सो बहुत ही योग्य हुआ । आप हमारी जातिके श्रीमानोंमें बडे ही बुद्धिमान् विवेकी और सुचतुर पुरुष हैं । काशीकी श्रीमती स्याद्वादपाठशालाके स्थापक व चालक महामंत्री आप ही हैं. स्याद्वादपाठशाला काशीका कार्य आपने बडी योग्यतासे चलाया और चलाते हैं । आरा शहरमें सभापाठशाला वगैरह धर्मकार्योंके मुख्यप्रबंध कर्त्ता भी आप ही हैं-आप इन सब धर्मकार्योंमें बडे ही योग्य प्रबंधक हैं । हमें पूर्णतया उम्मेद है कि-अबकी बारका महासभाका अधिवेशन विलक्षण ही होगा और यह भी उम्मेद है कि-तीर्थराज सम्मेद शिखरजीकी रक्षार्थ मुकदमेबाजी, डेप्युटेशन भेजने आदिमें कष्टसे उपार्जन किये हुये जैनी भाइयोंका पैसा व्यर्थ ही व्यय न करनेकी सम्मति देकर-विदेशी बहिष्कार और स्वदेशी ग्रहणकी सम्मति देकर जैनजातिके पूजनीय धर्मस्थान तीर्थराजकी रक्षा करानेका प्रस्ताव स्वीकार करावेंगे । और महाविद्यालयकी जो दुर्दशा सहारनपुरमें हो रही है उसका तथा जिस भारतवर्षीय सरस्वती भंडारकी नीव डालनेके लिये बंबईमें आपने बेहद प्रयत्न किया था उसका समीचीन प्रबंध कराकर शीघ्र ही काम चलानेकी कोशिस करेंगे ।

महासभाके लिये प्रस्ताव।

अबकी वार महासभामें कौन २ से प्रस्ताव पेस करने चाहिये सो जातिके समस्तविद्वानोंकी सम्मतिसे निर्णय करकें उसका खर्डा पहिलेसे ही प्रकाशित कर देनेका अभिप्राय सहायक महामंत्री साहबके पत्रपरसे ज्ञात होता है संभवतः प्रस्ताव भेजनेके लिये प्रार्थनापत्र सहायक महामंत्रीकी तरफसे समस्तविद्वानोंके पास गये होंगे एक पत्र हमारे पास भी आया था हमने भी अपनी बुद्ध्यनुसार आवश्यकीय प्रस्तावोंकी सूची भेज दी है जो अत्यावश्यकीय प्रस्ताव थे उनके विषयमें सविस्तर सम्मति हम ३९ तथा ४० वें अंकमें प्रकाश कर चुके हैं सो पाठक तथा महासभाके कार्यकर्त्तावोंके दृष्टिगोचर हुये होंगे परन्तु आजकल समयकी बलिहारी है. अखबारोंकी सम्मति व विद्वानोंके लेखोंपर ध्यान न देकर निरक्षर भट्टाचार्य वा बछियाके बाबा धनपात्रोंकी ही हांमें हां मिलाते हैं तथापि भी हम अपने कर्त्तव्यके अनुरोधसे आज फिरभी हम महासभामें अवश्य ही पास होने योग्य प्रस्तावोंका संक्षेपतासे उल्लेख कर देते हैं—

१। महासभाका कोई स्थायी सभापति नियत नहीं करकें जो वार्षिक अधिवेसनके सभापति हों वे ही महाशय १ बर्षकेलिय स्थायी सभापति समझे जांय और वे सभापति विद्वान् विवेकी ही होने चाहिये बछियाके बाबा मूर्ख धनाढ्योंको यह गौरवका आसन देकर अपवित्र नहिं करना चाहिये और सभापतिका चुनाव अधिवेशनसे छहमास पहिले प्रबंधकारिणी सभाकी बहुसम्मतिसे होना चाहिये ऐसा न हो कि महामंत्री वगैरह दो चार महाशयोंने चुन लिया वही सभापति।

२। महाविद्यालयकी उन्नति म्लेच्छविद्याप्रधान पंजाब देशके सहारनपुर सरीखे नगरोंमें कदापि नहीं होगी—महाविद्यालय संस्कृत और धार्मिक विद्याकी उन्नतिके लिये स्थापित हुआ है इसकारण इसके लिये सर्वोत्तम स्थान एक मात्र पार्श्वसुपार्श्व भगवानकी जन्मपुरी व संस्कृतविद्याकी खानि काशी नगरी ही है। जबतक महाविद्यालयका स्थान काशीमें परिवर्तन नहीं होगा तबतक कदापि वास्तविक विद्याकी उन्नति नहीं होगी इसकारण इसके स्थानका निर्णय अबकी बार अवश्य होना चाहिये।

३। श्रीमान् बाबू देवकुमारजी साहबने जो जिनवणी माताके जीर्णोद्धारार्थ

'भारतवर्षीय स्याद्वादग्रंथालय भंडार स्थापनका मुंबईमें प्रयत्न किया था उसका अनुमोदन होकर उसके लिये पचीसपचास हजारका चंदा एकत्र होना चाहिये और आगेको काम चलानेके लिये एक कमेटी व मंत्री नियत कर देना चाहिये । जबतक भंडारोंमें गलती सड़ती अपनी परमप्रिय जिनवाणी माताके जीर्णोद्धारका प्रबंध नहीं करेंगे । तबतक महासभा विद्यालयादि समस्त धर्मकार्य बिना एकडेके शून्यवत हैं इसलिये सबसे पहिले यही प्रस्ताव होना चाहिये ।

४ । महासभाने पहिले " छपे हुये जैनग्रंथोंका प्रचार नहिं होना चाहिये ऐसा प्रस्ताव पास करके उसको कार्यमें परिणत करनेके लिये हस्तलिखित ग्रंथोंका एक सरस्वती भंडार स्थापन किया था परंतु समाजमें जितना काम हुआ इससे उलटा ही हुआ क्योंकि महासके कार्याध्यक्ष व जैनगजट वगैरह गुप्तप्रकारसे छपे ग्रंथोंकी उन्नति करनेमें तत्पर रहे अर्थात् इस समय ' छपे ग्रंथोंका प्रचार अवश्य होना चाहिये, दोचारको छोडकर सबके सब जैनी धनी ज्ञानी बालक वृद्ध युवा स्त्री इसके पक्षपाती हैं, परन्तु जबतक महासभासे यह प्रस्ताव पास न हो जाय तबतक इस उन्नतिकारक कार्यका प्रचार होना और जिनवाणी माताका-जीर्णोद्धार होना कठिन है, इसकारण इस पुराने प्रस्तावका फिरसे विचार करके ' छपे ग्रंथोंका प्रचार अवश्य ही होना चाहिये, ऐसा प्रस्ताव पास होना चाहिये, यदि अब भी हमारे भाइयोंका अज्ञानभाव दूर नहिं हुआ हो और पुराना प्रस्ताव ही अनुमोदन हो तो -जैनगजट वगैरहमें संस्कृत व वचनिका रूप जो धर्मशास्त्रोंके लेख छपते हैं वे सर्वथा बंद होने चाहिये और महासभाके सभापति, मंत्री. महामंत्री, उपदेशक, विद्याविभाग वगैरहमें गुप्तभावसे छापेकी पोलिसी चलानेवाले हों उनको एकदम खारिज करना चाहिये ।

५ । सम्मेदशिखरजी पर हमारे स्वच्छाचारी अंगरेज प्रभु अपनी विहार भूमि बनाकर हमारे धर्मस्थान और धर्मकार्योंको रसातल पहुचाना चाहते हैं सो इसके विरुद्ध हमारे अग्रनेतागण सरकारसे डेप्युटेसनों द्वारा प्रार्थना अथवा अदालतमें प्रार्थना करके लाखों रुपया बरबाद करना चाहते हैं सो बडी भारी भूल है जो स्वार्थपटु हाकिम हमारा धर्मधन छीनकर अपना ही स्वार्थसाधन करना चाहते हैं उनके सामने उनके ही विरुद्ध अर्जी करके न्याय मांगनेसे उनसे न्याय मिलना सर्वथा असंभव है क्योंकि यह बात अनुभवमें आगई है । जिन सरकारी गुलामों और खुशामदी महाशयोंको इस विषयमें संदेह हो, वे बम्बईके

श्रीवेंकटेश्वर समाचार प्रेससे' देशकीबात, नामकी पुस्तक मगाकर अद्योपांत देखेंगे तो मालूम हो जायगा कि हमारी न्यायशीला सरकारने हमारे साथ पूर्वकालमें क्या क्या सलूक किये हैं। अत एव अब सम्मेदशिखरजीकी अर्थात् अपने धर्मकी रक्षा करना हो तो जैनीमात्रको अबसे स्वदेशीवस्तुओंका ग्रहण और विदेशी वस्तुओंका त्याग करना चाहिये और अंगरेजी व्यापारियोंके साथ व्यापार संबंध, व उनकी गुलामगिरी छोडकर स्वतंत्र व्यापारादि करके अपने ही पैरों खडा होना चाहिये? ऐसा प्रस्ताव महासभासें यदि पास नहीं किया जायगा तो सम्मेदशिखरजीकी रक्षा होना सर्वथा असंभव है। कदाचित् महासभामें यह प्रस्ताव नहीं रक्खा जायगा तो कांग्रेस वा बंबईप्रान्तिक सभाकी तरह बडाभारी विरोध फैल जायगा क्योंकि दमोहके भाई आये थे तथा बुंदेलखंड और मध्यप्रदेशके अनेक यात्री आये थे उनसे यही ज्ञात हुआ कि इस अधिवेशनपर विदेशीबहिष्कारका प्रस्ताव ग्रहण नहीं किया जायगा तो बडा भारी विरोध हो जायगा।

६। अगले वर्ष महासभाका अधिवेशन कहां होना चाहिये सो जगह २ के भाइयोंकी प्रार्थनाओंसे अथवा विना प्रार्थनाके भी अभीसे ही नियत हो जाना चाहिये और हमारी समझमें अगले वर्ष महासभाका अधिवेसन बंबईमें होना चाहिये क्यों कि एतक तो यहांके भाई आज दो वर्षसे महासभाका अधिवेसन कराना चाहते हैं परंतु एक नालायक दुष्टात्मा इस प्रस्तावको पास नहिं होने देता किन्तु अगले वर्ष उस नालायक और उसके हिमायतियोंकी कुछ भी परवाह नहिं करके स्थानीय पंच महसभाका अधिवेशन करानेकेलिये तत्पर हैं। उसका गुप्त भावसे आमन्त्रण भी सायद महामंत्रीके पास पहुंच गया है और अधिवेशन पर प्रगटतया भी आमंत्रण दिया जायगा ऐसी आशा है। दूसरे यहां पर अधिवेसन होनेसे यहांके भाइयोंमें तथा महासभावालोंमें जो वैर विरोध है वह सब नष्ट होकर महासभा वास्तवमें काम करनेवाली हो-जायगी।

७ परीक्षालयका काम वर्त्तमानमें जिसके हाथमें है वह इस कामके योग्य नहीं है, अतएव अबकी बार यह भार किसी योग्य पुरुषके हाथमें देना चाहिये- हमारी समझमें इसके योग्य नागपुरनिवासी श्रीयुत सेठ नेमीलालजी बहुत योग्य हैं। उनके हाथ नीचें एक वेतनभोगी क्लार्क अवश्य होना चाहिये।

इनके शिवाय और मामुली प्रस्ताव होते ही हैं- किंतु ये ७ प्रस्ताव अत्यावश्यकीय हैं इन पर अवश्य ही कार्यकर्त्ताओंको विचार करना चाहिये।

दिगम्बरजैनप्रान्तिकसभा बंबईका वार्षिक खेल हो गया।

अबकी बारका अधिवेसन ठीक कांग्रेसकी तरह एक ही पक्षका वा कर्जन साही हो गया—कांग्रेसमें सभापति चुननेवाले थे मेथा वाचा गोखले एंड को० और बंबई प्रान्तिकसभामें सभापति चुनेवाले थे, माणिकचंद लल्लूभाई शीतल एँडब्रदर्स। अबकी बार गर्मपक्षका कोई भी मेम्बर वा डेलीगेट नहीं था जो कुछ थे सब गुजराती गेले भाई नर्मपार्टीके और सभापति तथा कार्याध्यक्ष गण भी सरकारी नोकर वा खुशामदी तथा सरकारी पदवियोंके धारन करनेवाले थे। इसीकारण ही सभापतिसाहबने अपने व्याख्यानमें बायकाटका भी बायकाट कर दिया और प्रस्तावोंमें भी यह प्रस्ताव नहीं चुना गया बलके बंबई शोलापुर आदिसे कई तार चिट्ठियां बहिष्कारका विषय लेना चाहिये ऐसी पहुंची थीं परन्तु हमारे **हीरा माणिक शीतल एण्ड कोने** सबको दबा रक्खा, ऐसी अवस्थामें क्या होना था। हां खर्चमें बेशक २०००) रुपये स्वाहा हो गये जिनमेंसे ९००) रुपये सभाको दफतरसे भेजने पड़ेंगे।

तीर्थराजकी रक्षार्थ चंदा और धनाढ्यगण।

गतवर्षोंमें स्वेताम्बरी भाइयोंके साथ सम्मेदशिखरजीकी पेढियों बाबत जो मुकद्दमा चला था उसमें प्राय: १५०००) रुपये खर्च हो गये थे। चंदेके रुपये सर्व साधारण भाइयोंके ८–९ हजारके करीब आये थे परंतु किसी धनाढ्यने कुछ भी सहायता नहीं किया, अबतक ७०००) रुपये दानवीर सेठ माणिकचंदजीके सम्मेदशिखरजीपर कर्जके चले आते हैं। बंबईमें भी सम्मेदशिखरजीके लिये चंदा हुआ था परंतु उसमें भी धनाढ्योंने चंदा नहीं लिखा तब वह चंदा ज्योंका त्यों कागजमें ही रह गया। सिर्फ बाहरके भाइयोंके रुपयेसे ही काम चला था। क्या धनाढ्य गणोंका फर्ज नहीं था कि यथा शक्ति सहायता देते? अस्तु यह तो बीता हुआ रोना है। परन्तु वही रोना अब वर्तमानमें भी तीर्थराजकी रक्षाके लिये चंदा करनेमें हुआ है अर्थात् हमारे धनाढ्य महाशयोंका कागजी चंदा करीब डेढ लाखके लिखा गया है और साधारण गरीब भाइयोंने जगह २ पंचायती करके सम्मेदशिखरजीकी रक्षार्थ करीब ४००० चालीस हजारके

नकद रुपये तीर्थक्षेत्र कमेटीमें भेजे हैं परन्तु खेद है कि *धनाढ्य महाशयोंने जो बडी २ दिखाऊ रकमें भर दीं हैं उनमेंसे सायद एकका भी रुपया नहीं आया* है तीर्थक्षेत्रकमेटीकी तरफसे छपी हुई प्राईवेट चिट्टियां जार ही हैं परंतु उनका कोई उत्तर देता होगा हमे विश्वास नहीं हैं। साधारण भाइयोंके ४० हजार रुपयोंमेंसे प्रायः आठ नौ हजार रुपये तो हमारे अगुओंके डेप्युटेसन दौरे वगेरहके खर्चमें स्वाहा हो गये हैं रहे सहे हाईकोर्टमें नालिस करते स्वाहा होजांयगे। हमारी समझमें इसप्रकार सिर्फ गरीबोंके ही रुपये स्वाहा करना योग्य नहीं है किन्तु जिन २ धनवानोंने बडी २ रकमें लिख दीं हैं पहिले उनका रुपया ही उडाना चाहिये गरीबोंका रुपया तो- हमारी समझमें जो साधारण भाई सम्मेदशिखरजीके लिये अपने शरीर तक अर्पण करनेमें तत्पर हैं ऐसे दो चार हजार भाइयोंका एक संग निकाल कर सम्मेदशिखरजीपर बिठाना चाहिये और उनके भोजनाच्छादन और खातिरीमें खर्च करके तीर्थराजकी रक्षार्थ भगवानसे प्रार्थना करने और बंगला बंधनेकी जगह आत्मोत्सर्ग करनेमें खर्च करना चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि-सरकारसे जाकर लडना भिडना या मारकाट करना किन्तु इसका अर्थ यही है कि--सिखरजीपर हजार दो हजार जैनियोंको हर समय उपस्थित रहना चाहिये जिस समय बंगलोंकी नीव पडै उस समय मंदिरजीमें भगवानसे प्रार्थना करके बंगला बंधनेकी जगहपर जाकर बैठ जाना चाहिये और सरकारसे कहना चाहिये कि यह धर्मस्थान हमारे प्राणोंसे भी प्यारा है १४ लाख जैनियोंमेंसे एकका भी प्राण रहते इसपर बंगला बनवाकर इसे नष्टभ्रष्ट कदापि नहिं करने देगें। सरकार यदि करना चाहैं तो पहले हम सबको तोपके मुहसे उडाकर बंगलोंकी नीवको भर दीजिये और बंगलोंकी नीवको लगाइये इसप्रकार प्रार्थना करना चाहिये और मरनेके लिये तैयार हो जाना चाहिये। मुकदमा लडने वा डेप्युटेसन भेजने वगेरहमें गरीबोंकी एक पाई भी खर्च नहीं करना चाहिये। चंदा सब भाइयोंको अपनी शक्तिको न छिपाकर तीर्थराजकी रक्षाके लिये देना चाहिये किन्तु जबतक उपर्युक्तप्रकारसे तीर्थराजपर बैठ कर प्रार्थना करनेका प्रस्ताव महासभासे पास न हो तथा जबतक धनाढ्य महाशयोंके रुपये तीर्थक्षेत्र कमेटीमें न आ जाय तबतक सर्व साधारण पंचायतियोंका रुपया तीर्थक्षेत्र कमेटीमें वा कलकत्ते नहिं भेजना चाहिये। सब भाइयोंको चंदा करके अपनी २ पंचायतीमें ही जमा रखना चाहिये। यदि हमारे अग्रनेतागण उक्तप्रकारका प्रस्ताव पास नहिं

करावे और धनाढ्यगण अपना २ चंदा नकद न भेजकर सहायता न दें तो उस चंदेमे अपने २ गांवसे दो २ चार २ वा दस बीस भाइयोंके खर्चका प्रबंध करके स्वतंत्र अपने २ यहांसे डेलीगेट नियत करके तीर्थराजकी रक्षार्थ प्राण देनेके लिये सम्मेदशिखरजीपर भेजना चाहिये । जब तक प्रत्येक पंचायती हमारे अग्रनेतागणोंकी (जो कि प्राय: सब ही सरकारी गुलाम वा सरकारी भिक्षाके इच्छुक हैं) परवाह न करकें अपने स्वयं बलसे कटिबद्ध न होंगे और विदेशी वस्तुओंके वर्तनेका त्याग नहिं करेंगे तब तक कदापि सम्मेदशिखरजीकी रक्षा नहीं होगी ।

पंचानंदएसोसियेसनकी आठवीं रिपोर्ट ।

(रिपोर्टर-सत्यानंद वाचस्पति)

संपादक महाशय ! इससे पहिले मैं पंचानंदएसोसियेसनकी ७ रिपोर्टें भेज चुका हूं परन्तु जबतक रिपोर्टें छपाकर प्रगट नहिं की जांयगी तब तक सर्वसाधारणको कैसें मालूम हो कि--पंचानंदकमेटीनें क्या क्या प्रस्ताव हुये और उनके अनुसार क्या क्या कार्रवाई शुरू की गई ! इसलिये हमारा अनुरोध है कि–अबकी बार यह आठवीं रिपोर्ट अवश्य ही छाप देनेकी कृपा करें। यदि अबसे आप हमारी रिपोर्टें नहिं छापेंगे तो हम आइंदा कदापि रिपोर्ट नहिं भेजेंगे—

रिपोर्ट ।

पंचानंद एसोसियेशनकी आठवीं बैठक ता: ९ फर्वरी सन १९०८ को सहर मुंबईमें नापैदबनियेकी दुकानके पीछें नीमतलें रात्रिको १ बजेसे ३॥ बजे तक हुई । जिसमें प्रथम ही **लाला विरोधराज** उपदेशकने मंगलाचरण किया–तत्पश्चात् **मिष्टर-मायाप्रसाद जनरल सिकत्तर** महाशयने फरमाया कि आजकी सभामें प्रथम ही समस्त कार्याध्यक्ष गण गताधिवेशन पर सुपुर्द हुये अपने २ कार्योंकी संक्षिप्त रिपोर्टें सुनावें तत्पश्चात् जनरल सिकत्तरा महाशयाका व्याख्यान होकर आगेंके लिये समस्त कार्याध्यक्षोंके कार्यनिर्वाचन होंगे । अतएव समस्त सभासद् गण ध्यान लगा कर सुनै ।

तत्पश्चात् **जनरलसिकत्तरा अविद्या बाईने** खडे होकर अपनी रिपोर्ट सुनाई कि–मुझे गताधिवेशनपर महासभा और बंबई प्रान्तिक सभाके कार्याध्यक्षोंको वशीभूत करके इन दोनों ही संस्थाओंको ढीली पोली कर देनेका कार्य सुपुर्द किया

गया था सो मैं प्रथम ही तो महासभाके कार्याध्यक्षोंके पास रहकर उनसे मैंने सहारनपुर और कलकत्तेके अधिवेसनोंपर वे वे बुद्धिमानीके कार्य कराये कि जिससे महासभापर जैनीमात्रकी श्रद्धा उठ गई और महाविद्यालयको मथुरासे उठवा कर म्लेच्छभाषाप्रधान नगरमें स्थापन करवाया जिससे उसकी जैशी दुर्दशा होनी चाहिये हो गई। तत्पश्चात् मैं बंबईमें आई परंतु गजपंथाके अधिवेशनपर पं०गोपालदासजी बरैया आदिके पहुंचनेसे मेरी कार्रवाई कुछ भी नहीं चल पाई परन्तु मैंने यहांके कार्याध्यक्षोंको भी वशीभूतकरकें यहांपर भी मुखिया सेठियोंको उल्लू बना दिया जिससे सभासे कोई भी कार्य महत्वका नहीं हो पाया। तत्पश्चात् मैंने सूरतके जैन एसोसियेसनके अधिवेसनको व्यर्थ बनानेके लिये प्रयत्न किया सो आप लोगोंकी कृपासे सफल मनोरथ हुई। वहांपर सिर्फ पांचसात बाबू लोग आये थे-उन्होंने सूरतके स्वेताम्बरी जैनियोंको लेकर अपना अधिवेसन बडी धूमधामके साथ कर डाला परन्तु मेरी कृपाने प्रस्ताव कोई भी कामके पास नहिं करने दिया हां एक प्रस्ताव मैंने जैनसमाजकी औरतोंको परदाप्रणाली उठानेका पास करवा दिया जिससे हमारे हितैषी लाला विरोधराज उपदेशककी खूब बन आई है। तत्पश्चात् मैं ज्वरपीडित होगई सो बंबई प्रान्तिक सभाके कुंथलगिरीवाले अधिवेसनपर नहिं पहुंच पाई और हमारी शिष्य मंडली अर्थात् हीरामाणिक एण्ड ब्रदर्स भी नहिं जापाये जिससे सोलापुरकर कई नव युवकोंने वह अधिवेसन बडे जोरशोरका करडाला स्वदेशीग्रहण विदेशीवस्तुका बहिष्कार वगैरह कई प्रस्ताव पास करडाले परन्तु मैंने जब पावागढवाले अधिवेशनको मिट्टी बनानेके लिये प्रयत्न किया तो उस अधिवेसनमें कुंथलगिरिके अधिवेशनका भी बायकाट करवा दिया क्यों कि पावागढके अधिवेसनपर जितने थे वे सब मेरे शिष्य **हीरामाणिक शीतल** एण्ड **ब्रादर्स** थे जिससे स्वदेशीका तथा विद्यालयादि धर्म कार्योंका कोई भी प्रस्ताव ऐसा नहिं हो पाया कि जिससे हम लोगोंको हानि हो और आइंदाके लिये भी मैंने अपने प्रधान शिष्योंको भलेप्रकार समझा दिया है जिससे अब हमारे विरोधी मारवाड़ी व हिंदुस्थानी सभासद तथा कार्याध्यक्षोंका नाम निसानतक सभामें नहीं रहैगा-यहांपर हमारा परमशत्रु एक मात्र **जैनमित्र** है उसके बंद करनेकेलिये भी उसदिन **हीरामाणिक शीतल एण्ड ब्रादर्स**की कमेटीमें प्रस्ताव पेश करा चुकी हूं देखिये अब उसका क्या फल होता है। इसप्रकार मेरी संक्षिप्त रिपोर्ट है अब आइंदेको क्या किया जावै सो मुझे आज्ञा मिलनी चाहिये।

तत्पश्चात् **सभापति रायबहादुर पंचानंद महाशयने** उठकर अ०
वाईके कार्योंकी बहुत कुछ प्रशंसा करके कोटिश: धन्यवाद प्रदान करके लाला **विरोधराज** उपदेशकको अपनी रिपोर्ट सुनानेकी आज्ञा दी और बैठ गये।तब श्रीयुत लाला विरोधराज उपदेशकजीने फरमाया कि--सभासद गणो! मुझे गताधिवेशन पर महासभा और बंबई सभाके कार्याध्यक्षोंमें परस्पर विरोध करा देनेका कार्य सोंपा गया था--सो मैंने प्रथम ही तो बाबू चंपतरायजी महामंत्री महासभा और उनके सहायक महामंत्री बाबू बनारसीदासजी तथा बाबू अर्जुनलालजी वगेरह कार्याध्यक्षोंमें वह विरोध डाला कि जिससे तीनों ही महाशय महासभासे अलग होगये। तत्पश्चात् मैं कलकत्तेके महासभावाले अधिवेशन पर गया सो वहांपर भी मैंने मारवाडी व हिंदुस्थानियोंके साथ एसोसियेसन और महासभावालोंका विरोध करा दिया जिससे वहां पर भी सिवाय मामूली प्रस्तावोंके कुछ भी कामका प्रस्ताव नहीं हो पाया। वहांसे आकर मैंने काशीस्याद्वादपाठशालाके स्थापकोंमें थोडीसी अनेकता बनाकर त्वरित ही बंबईमें चला आया क्योंकि यहां पर ज्वैन्ट जनरल सेक्रेटरी महाशय मिष्टर माया प्रसादजीने पहुंचकर यहांकी सभामें बहुत कुछ आंदोलन मचा दिया था परंतु यहांके दो एक मारवाडी कार्याध्यक्षोंके सामने बिचारे मायाप्रसादजीकी कुछ कारवाई चलती नहीं थी इसकारण त्वरित ही मुझे अर्जन्ट तार देकर काशीसे बुलालिया--फिर मेरे आनेसे तो मिष्टर मायाप्रसादजी बडे जोशमें आगये अपनेको एक अद्वितीय वीर समझने लगे क्योंकि यहांके प्रधानकार्याध्यक्ष महाशयके वे मूछके बाल हो गये थे सो हम दोनोंने शीघ्रही यहांपर कार्याध्यक्षोंमें अनेकताका संचार कर दिया जिससे गजपंथाके अधिवेशनपर अविद्याबाईके परमभक्त मिष्टर दानवीरजीने उस अनेकताको दूर करनेका उपाय भी किया था परन्तु हमारे और मिष्टर मायाप्रसादजीके षड्यंत्रसे दूर होना तो दूर रहे किन्तु और भी अधिक हो गया था क्योंकि यहांके मारवाडी समाजके मुख्य सेठिया लोगोंने महासभाका अधिवेशन और प्रान्तिकसभाका अधिवेशन दोनों ही मुम्बईमें करना चाहा था परन्तु मिष्टर मायाप्रसादजी और मैंने अपनी गुप्त मंत्रणासे यह प्रस्ताव उडवा दिया था जिस्से मारवाडी मुखियापंच प्रान्तिक सभासे रुष्ट हो गये सो यह रुष्टता वा अनेकता मनही--मनमें सुलगती रही और हम दोनों भी अपने अस्त्र चलाते रहे जिससे गत आश्विन वदि तृतीयाको

मेरा इतना जोर बढ गया कि-मैंने उसी दिन ही तेरा पंथी मंदिरमेंसे प्रान्तिक सभा और जैनमित्रका दफतर फिकवा दिया और प्रां० सभाके सभापति सेठ दानवीरजीको हमारी जनरल सिकत्तरा अविद्याबाईने पहिलेसे ही अपना भक्त बना लिया था सो उन्होनें भी सभाको हीराबागमें महीने वीस दिनतक भी आश्रय नहीं दिया जिससे प्रान्तिक सभाका व उसके बडे २ सभासदोंका (सेठिया लोगोंका) बडा भारी अपमान होनेसे वे सबके सब दानवीरजीसे रुष्ट हो गये उनकी इच्छा थी कि-अबके पावागढके अधिवेशनपर उनको इस अपराधका प्रायश्चित दिया जायगा परंतु उनके न जानेसे पायश्चित देना तो दूर रहे किन्तु सभाकी रिपोर्टमें कुछ पंक्तियें इस अपमानकारिणी कार्रवाईके जिकरमें छपगई थीं सो उन रिपोर्टोंको वितरण नहिं करके उल्टा सभापतिसाहबका अपराध छिपा दिया गया क्योंकि इस अधिवेशनमें अविद्याबाईके परमभक्त **हीरामाणिक शीतल एन्ड ब्रदर्स**का ही कर्जनशाई राज्य था सो जो चाहा सो अन्याय कर डाला। अब हमने सभाकी नियमावली सुधरवाकर वह प्रबंध करा दिया है कि अबसे इनके व हमारे पक्षके विरोधी बंबई व शोलापुरी सभासदोंकी कुछ भी नहिं चल सकैगी। जिससे अनेकताकी आग दिनोदिन और भी प्रज्वलित होती रहैगी। इधर सभाके कर्ता हर्ता सब जने सरकारी गुलाम वा सरकारी पदवीके धारी हैं सो कुछ भी हमारे विरुद्ध नहिं कर सकैंगे। महाशयगणो! मेरी अथवा यों कहिये कि-मेरी और मायाप्रसादजीकी यह संयुक्तरिपोर्ट है।

तत्पश्चात् इनकी भी सभापति साहबने बहुत कुछ प्रशंसा किथी और जनरल सिकत्तरा अविद्या बाईने अनुमोदन करके कोटिश: धन्यवाद दिया। तत्पश्चात् सभापति साहबने बाबू आलस्यचंदको अपनी रिपोर्ट सुनानेकी आज्ञा दी।

बाबू आलस्यचंदजीने फरमाया कि-महाशय गण गताधिवेसन पर महासभा और बंबई सभाके अर्थात् हमारे विरोधी सभासदोंको जाकर वशमें करना जिससे वे महासभा वगेरहमें तथा हमारे विरुद्ध कार्योंमें सामिल होकर विघ्न न डालैं सो प्रथम ही तो मैं समस्त जगहोंके जैनी विद्वानोंके पास गया सो उन्हे अपने भक्त बनाकर ऐसे उदासीन कर दिये कि-वे सभा सोसाईटी पाठशाला वगेरहके कामके ही नहीं रहे दो चार चलते पुरजे विद्वान् हैं परंतु उनको हमने दूसरे २ कार्योंमें ही लगा दिये हैं। फिर मैं विद्वज्जनसभाके सेक्रेटरीके पास जाकर उसे ऐसा मिट्टी बना दिया कि वह सभाविभाको एक दम ही भूल गया।

तत्पश्चात् मैं सम्मेदशिखरजीके लिये कोशिश करनेवाले मुखियाओंके पास गया सो उन्हे तत्काल ही प्रमादी बना दिया जिससे वे न तो मुकद्दमा लड़ते हैं और न कोई समीचीन दूसरी कार्यवाई ही करते हैं और न मगसी तारंगा केसरियां नाथ वगेरह तीर्थोंपर श्वेतांबरी गण जो अपना अधिकार जमाते जाते हैं उनके विरुद्ध ही कुछ कारंवाई कर सके। इसीप्रकार शोलापुरके बडे २ समर्थ सभासदोंको भी मैंने ऐसा छकाया है कि वे प्रान्तिक सभाके कर्ता हर्ता **हीरामाणिक सीतल एँड ब्रादर्सके** विरुद्ध आंख खोलकर भी नहीं देखते कि प्रान्तिकसभामें क्या क्या अन्याय हो रहा है। इसप्रकार सबको आलसी बनाकर अपना कार्य साध लाया हूं अब आगेके लिये क्या हुकुम होना है सो फरमाइये।

तत्पश्चात् सभापति साहब इनको भी बहुतसा धन्यवाद देकर बैठ गये फिर **अविद्याबाई जनरल सिकत्तरने** थोड़ासा व्याख्यान दिया।

परंतु इतनी धीमी आवाजमें दिया कि मैं भलेप्रकार सुन नहिं सका परंतु उसका अभिप्राय नजीक बैठनेवालोंसे यही मालूम हुआ कि कुंडलपुरमें महासभाका अधिवेसन होनेवाला है अबकी बार दमोहवालोंने महासभाका अधिवेशन जोर शोरके साथ करानेका बीड़ा उठाया है-सो उसमें स्वदेशीग्रहण विदेशीबहिष्कार महाविद्यालयका सुधार वगेरह अनेक उत्तमोत्तम प्रस्ताव होनेवाले हैं सो अबकी बार सबको कुंडलपुर जाकर-इस अधिवेसनकी भी मिट्टी पलीत करनेका प्रबंध करना चाहिये।

तत्पश्चात् सभापति **रायबहादुर पंचानंद महाशय उठे** और अविद्याबाईके व्याख्यानका अनुमोदन करके समस्त कार्याध्यक्षोंको आजसे ही कुंडलपुरके अधिवेसनके विरुद्ध कारंवाई शुरू करदेनेका हुकुम देकर निम्नलिखित प्रकारसे कार्य बांट दिये—

१। श्रीयुत बाबू आलस्यचंदजी तो अपने पुराने भक्त पंडितों और पंचों तथा सेठोंके पास जाकर उन्हे वशीभूत करें जिससे वे महासभाके अधिवेशनमें आने ही नहीं पावें और न कोई कहींसे डेलीगेट ही भेजने पावे।

२। दूसरे-लाला विरोधराज उपदेशकजी पाठशालाओंके प्रबंध कर्त्ता पंचों और जैनपत्रके सम्पादकोंके पास जाकर उन्हे ऐसी उल्टी पट्टी पढावें जो प्रत्येक कार्यमें परस्पर विरोधी बन जावें-तथा महासभाके कार्यकर्त्ताओंको भी जहांतक बने अपने भक्त बनावें।

३। तत्पश्चात्—मिष्टर मायाप्रसादको अभी तो बंबईमें ही डिटेक्टिव इन-स्पेक्टरकी तरह रहकर गुप्तभावसे तथा पत्रव्यवहारोंसे सबकी खबर लेते रहें और जहां मोका देखें वहींपर अपना मायाजाल फैलाकर सबको फांसलें।

४। और श्रीमती अविद्याबाई जनरलसिकत्तराको खास कुंडलपुर और दमोहमें हाजिर रहना चाहिये और सबको तथा खास करकें रिसेफसेन कमेटीके चेयरमैन श्रीमन्त सेटजीको वशमें करनेकी कोशिश करें तत्पश्चात् अधिवेशनपर सबके सब कार्याध्यक्ष कुंडलपुरमें हाजिर होकर सब जने मिलकर अपना २ कार्य संपादन करें यदि बन पड़ा तो उस समय मैं भी हाजिर होऊंगा मेरी तबियत बुढापेमें विवाह करनेके कारण ठीक नहीं रहती यदि उस समय मेरी तबियत टंच रही तो अवश्य ही हाजिर होऊंगा नहीं तो यहां बैठा ही यथाशक्ति देख रेखका कार्य करता रहूंगा। इसप्रकार कार्यनिर्वाचन करकें समस्त सभासदोंको धन्यवाद देकर एसोसियेसनकी आठवीं बैठकका कार्य समाप्त किया गया और सब जने रायबहादुर पंचानंद महाराजकी जय बोलकर उठ खडे हुये।

आपका हितैषी—**सत्यानंद वाचस्पति।**

जैनगजटकी दुष्टता।

पाठक महाशय! जैनगजट अंक ७ में फिर भी संपादक महाशयने जैनहितैषी पर अपनी कुटार लेखनी चलाई है और आगेको भी अपनी दुष्ट लेखनी चलाकर जैनहितैषीको एकदम बंद कर देनेकी इच्छा जनाई है। लाचार अब हमको भी जैनगटके प्रत्येक दुष्ट लेखकी दुष्टताका जबाब देना ही चाहिये अब '**शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्साधवं प्रति साधवं**' किये बिना जैनगजट देवता अपनी दुष्टतासे बाज नहिं आवेंगे दूसरे आपने हमको पहिले लेखोंको उत्तर न देनेके कारण कायर वा निर्लज्ज बताया है सो उस कायरता और निर्लज्जताकी भी लज्जा रखना फर्ज पड़ा परंतु जैनगजटके पहिलेके दुष्ट लेखों तथा इस लेखका सविस्तर उत्तर तो हम अगले अंकोसे देंगे आज केवल जैनगजटमें जैनहितैषीका मुह छिपाना' ऐसे हेडिंग देकर देवबंदमें किसीको भी जैनहितैषी नहिं भेजनेके कारण व्यर्थ ही हमपर दोष लगाये हैं और साथ २ फिर भी जैनहितैषीके बंद करनेकी कोशिशकी है उसका थोड़ासा उत्तर दिये देते ह।

संपादकमहाशयजी! आपके पास तो जैनहितैषीके अंक इसलिये भेजे जाते थे कि आप इसकी यथार्थ समालोचना करकें हमारा उत्साह बढावेंगे और आपके

मित्रगणोंके पास इस लिये भेजे जाते थे कि वे नमूना देखकर ग्राहक बनें और इससे कुछ लाभ उठावेंगे परंतु खेद है कि—आपने और आपके मित्रोंने न मालूम किस जन्मका वैर निकाला कि इसे भंडहितैषी' भंडवचनोंका पिटारा बता कर इसके बंद करनेकी कोशिश करी तब बताइये कि आप लोगोंके पास जैनहितैषी किस लिये और किस नातेसे भेजा जाय भला आपसरीखे सभ्य पुरुष जैनहितैषीको क्यों बाचलने और क्यों मूल्य देने लगे ? लाचार देवबंदके सब ग्राहकोंके नामपर कलम फेर कर जैनहितैषीका भेजना बंद किया गया परन्तु इस लिये बंद नहिं किया था कि देवबंदमें जैनहितैषी नहिं भेजनेसे आपको पढनेके लिये जैनहितैषी मिलैगा ही नहीं ऐसी मोटी समझ तो आपकी तथा आपके क्लार्क साहबकी ही है जो कि ता. ८ फर्बरीका जैनगजट न तो दामदेकर ग्राहक बननेवाली सूरजबाईके पास भेजा और न जैनमित्रके आफिसमें तथा ही राबागमें ही किसीके पास भेजा तब हमने विचार किया कि हमारे जैनहितैषीके न पहुंचनेसे उसकी देखा देखी अनुकरणप्रिय संपादक साहबने भी बंबईमें जैनगजट नहीं भेजा परन्तु खेद है कि हमारी देखा देखी पेशगी दाम देकर लेनेवाले ग्राहकोंको पास न भेजकर बडी भारी मुखतयारी बुद्धिका परिचय दिया है। संपादकजी जिस प्रकार आपनें दिल्लीसे मगाकर जैनहितैषी पढा उसीप्रकार हमने चोपाटीसे दानवीरसेठजीके बंगलेसे मंगाकर ता. ८ फरवरीका जैनगजट देखा था। अस्तु इसमें आपका कसूर नहीं है तो आपके क्लार्क साहबका अवश्य ही कसूर है।

हमने अपने लेखमें अपनेको योग्य संपादक बताकर घमंड किया हो ऐसा वाक्य कहीं भी नहीं लिखा है यह दोष देना आपका सर्वथा झूटा है हां जैनगजटके संपादकोंको नवासिखुए अवश्य बताया है सो इसको कोई भी झूठ साबित नहीं करसक्ता है। यदि आपने जैनगजटकी इस नई संपादकीसे पहिले किसी पेपरकी संपादकी की हो तो बताइये जो आगेसे आपको वृद्धसंपादकके नामसे लिखा जाया करै।

अंतमें आप अपनी समीचीन सज्जनता प्रगट करनेके लिये लिखते हैं कि जैनगटको जैनहितैषीसे कुछ द्वेष नहीं है और न जैनहितषीको बंद करना चाहता है इतना वाक्य लिखकर आगें आप फरमाते हैं कि—हां इतना जरूर चाहता है कि—"जैनहितैषीमें असभ्य और भंडवचनोंका प्रकाशित होना बंद होजावै ईसीको सब पसंद करते हैं ताकि उन्नतिमें विघ्न उपस्थित न हो " तथा आगें

जाकर आप फिर भी हमें उपदेश देते हैं कि यदि वास्तवमें अपना और जातिका हित चाहते हैं तो आप अपनी असभ्य लेखनीको रोकिये और अपने पत्रसे भंड वचन निकाल दीजिये जबतक आप अपने पत्तसे इस कलंकको दूर नहीं करेंगे और बरसाती मेंडकके भावको नहिं निकालेंगे तबतक आपका पत्र किसीको भी आदरणीय नहिं हो सक्ता है " इसके सिवाय पहिले आप यह भी लिख चुके हैं कि हमशहकी तरहँ अबकी बार भी अपने ग्रहाकोंको विश्वास दिलाया है कि जैनहितैषी बंद नहीं होगा इत्यादि "

पाठक महाशयो ! अब आप ही इन जैनगजटके ऊपर लिखे वाक्योंको वांचकर बताइये कि इनके लिखनेका खास अभिप्राय क्या है! हम समझते हैं कि एक सामान्य बालक भी इन पंकियोंको बांचकर इनका अभिप्राय कह देगा कि—जैनहितैषी पत्रमें असभ्य और भंडवचनोंके और कुछ भी नहीं छपता है उन असभ्य और भंडवचनोंके प्रकाश करनेवाले पत्रसे उन्नतिमें विघ्न उपास्थित होगा इसलिये जैनहितैषी पत्रके ग्राहक बननेवाले पापी हैं–वृंदावन विलास वगेरह उपहार देने तथा बंद नहीं करनेका जैनहितैषीमें जो विश्वास दिलाया गया है वह सर्वथा झूठा है । आप कदापि विश्वास नहीं करना अगर करोगेतो धोखा खाओगे "

कहिये पाठक महाशय ! इसीको जैनगजटके संपादक महाशय कहते हैं कि "जैनगजटको जैनहितैषीसे द्वेष नहीं है और न वह जैनहितैषीको बदनाम करना चाहता है " बाहरी सज्जनता और सहृदयता ?

बाबू साहब ! इसप्रकारके सर्वथा झूठे दोष लगाकर जैनहितैषीके भंड वचनों और असभ्यवचनोंका पिटारा बताना आपकी दुष्टता नहीं है तो और क्या है ?

मनोविनोद।

(१०)

सारमेय चरित्र।

(नवीन हितोपदेशसे उद्धृत)

पाठक ! ध्यान लगाकर सुनिये, जो कुछ कथा सुनाता हूं ।
एक जानवर पकड़ आपके, आज साम्हने लाता हूं ॥

रूपरंगसे जैसा उसको, मैं उपरसे पाता हूं।
कामोंसे वह नहीं है वैसा, यही समझ चकराता हूं॥ १॥
इसीलिये मैं कहूं आपसे, जरा उसे पहिचानो तो।
सुन चरित्र अस रूप आदिसे. भेद भावको जानो तो॥
नीर छीरके न्याय हंस हो, सांच झूंठको छानो तो।
कपटरूप यह कोई हो वह, बहिष्कारको ठानो तो॥ २॥

यह देखो अब सम्मुख आया, करो ठीक इसका संधान।
लंबे लंबे हाथ पैर ये, नखवाले हैं तेज महान॥
यह शिकार करता है इनसे. बडे दावपेचोंके साथ।
क्या मजाल जो बचकर जावे, पड जावे यदि इसके हाथ॥ ३॥
जरा कहीं भी खटका होवे, करता है चौकन्नेकान।
धीमी बातें भीं सुन लेवें, ऐसे इसके लंबे कान॥
दबी हुईसी इसकी आंखें, रखतीं हैं अच्छी पहचान।
एकबार ही देखा जिसको, उसको ये लेतीं हैं जान॥ ४॥
चौडासा आन न है इसका, जिसमें छोटे छोटे दांत।
पा जावै तो सहज पेटसे, खींच निकाले सारीं आंत॥
कालीं कालीं हैं ओठोंपर, नहीं सघन पर छोटी मूंछ।
पूछताछ है बडे घरोंमें, ऐसी अतिशय बांकी पूँछ॥ ५॥
खाता जिसका नमक है उसकी, मान कहीको जाता है।
रहता है मनमगन सदा ही, स्वामिभक्त कहलाता है॥
लेकिन ओरोंको लखते ही, दूरहिसें गुर्राता है।
मोकेसे धोखेमें पाकर, काट किसीको खाता है॥ ६॥
स्वामीका प्यारा है ऐसा, सदा साथमें रहता है।
शीत लखै नहिं उष्ण कहीं भी, सुख दुख सारे सहता है॥
रेल ट्राम आदिकमें बैठा, बरा बरी प्रभु लहता है।
जैसी इच्छा पावै तैसी, शिर हिलाय हां कहता है॥७॥
जरा चढी त्यौरी प्रभुपावै, लोट चरनपर जाता है।
कूं कूं करके पूंछ हिलावे, अपना पेट दिखाता है॥

इंगित पाकरकें अंगुलीका, दौड़ दौड़के आता है ।
गिरीं पड़ीं चीजोंको मुखसे, उठा उठाकर लाता है ॥८॥
घरमें जिसका प्रेम देखता, उसपर चढने आता है ।
मुख चुंबनके लिये हरखसे, मुखकों पास बढाता है ॥
कुर्सी मेज पलंग कुछ भी हो, मोका जब जहं पाता है ।
नहीं किसीकी परवाकरकें, आसन वहीं जमाता है ॥ ९ ॥
रूखा सूखा जैसा जब जो, मिल जावै खा लेता है ।
अनुशासन स्वामीका पाकर, बजा नमककी देता है ॥
इसकारण स्वामी अरु स्वामिन, सदय भई खुश रहतीं हैं ।
हाथ फेर पुचकार प्यारसे, नटखट उसकी सहतीं हैं ॥ १० ॥
यह चरित्र अत्यल्प है पाठक ! पूरा है अति बड़ा हुआ ।
इतना और समझलो की है, नायक उसका पढ़ाहुआ ॥
अब तो खूब आपने इसका, कच्चा चिट्ठा जान लिया ।
नामधामसे काम नहीं कुछ, रूप रंग पहचान लिया ॥ ११ ॥
होगी जिनकी बालबुद्धि तो, श्वान इसे वे मानैंगे ।
प्रौढबुद्धिवाले ही इसको, खूब तरहसे जानैंगे ॥
कोई पूछे तो कहदेंगे, यह धोखेकी जाली है ।
नरतनमें है श्वान आतमा, इससे चाल निराली है ॥ १२ ॥
मजा मौज इस चोपदकी लखि हुये और भी हैं दो चार ।
भोला भाला स्वाभी भी लखि, भक्त उन्हे नित करत पियार ॥
देखा देखी इस चौपदकी, आज काल वे करते हैं ।
तो भी रहन सहनमें उसकी समता नहिं कर सकते हैं ॥ १३ ॥
सज्जन साधुवाद पाते हैं, इसमें कुछ भी नहीं विवाद ।
जिनकी श्वानवृत्ति होती, है उनहीका होता अपवाद ॥
स्वामि भक्तिके साथ पालना, सच्चरित्र कीजे मति धीर ।
कहते हैं सो उभयलोकमें, सुख औ यश पावेंगे **मीर** ॥ १४ ॥

सूचना—कुंडलपुर जानेवाले भाइयोंको मालूम हो कि-हमारे यहांके जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालयके छपे हुये समस्त प्रकारके जैनग्रन्थ विक्रयार्थ कुंडलपुरमें चैत वदि ८ को पहुंचैगे सो जिनको ग्रन्थ लेना हो वहींसे ले लेवैं ।

लीजिये !
जैनहितैषीका !!
उपहार !!!
तैयार हो गया ।

जिनका मूल्य आ गया उनको तथा जिन्होंने वी. पी. करने की आज्ञा दी है उनको—

वृंदावन विलास,

अर्हत्पासा केवली

और

मनोरमा उपन्यासके बाकी रहे पत्र सबके सब

चैतसुदी प्रतिपदा तक ।

भेज दिये जायगे

और

जो महाशय चैत सुदी १५ तक पुराने तथा नये ग्राहक बनकर वल्युपेबल भेजनेका पत्र भेजेंगे उन सबको वैशाख बदि १ को ऊपर लिखे तीनों ग्रंथों सहित छट्ठा अंक मय डांक खर्चके १॥) के वल्युपेबलसे भेज दिया जायगा ।

चैतसुदी १५ से पीछे-ग्राहक बननेवालोंको ये ग्रंथ कदापि विनामूल्य नहीं मिलेंगे ।

इसकारण जिनको २॥) रुपये मूल्यके ३ ग्रंथ विनामूल्य लेना हों वे शीघ्र ही इस अंकके साथ जो छपा कार्ड भेजा गया है उसमें अपना पूरा २ पता साफ २ हिंदी अक्षरोंमें लिखकर जैनहितैषीके ग्राहक बन जावें । ऐसा कार्ड आने ही बैसाखबदि १ को हम १॥) के व्ल्युपेबलसे नीचे लिखे ३ ग्रंथ भेज देंगे।

[illegible]

१) जैनहितैषी [illegible] मूल्य [illegible]
[illegible] है उनमें से [illegible]

२) [illegible]) सबके [illegible]

३) [illegible]

४) [illegible]
[illegible]
[illegible]

५) सभी ग्राहक [illegible] तथा तीनों पुस्तकोंका [illegible]
[illegible] का वेल्यु पेबल भेजा जायगा-

परन्तु—

जो महाशय व्हेल्युपेबल भेजनेके लिये आज्ञापत्र भेजें उनको नीचे लिखी [illegible] सूचनाओंको पढकर आज्ञापत्र भेजना चाहिये-

१) आपके पास जैनहितैषी पहिलेसे जाता है कि नये ग्राहक बनते हो।

२) यदि पहिलेसे जैनहितैषी जाता है तो आपको कौन २ सा अंक नहीं मिला।

३) जिस पतेसे जैनहितैषी जाता है-वह पता-ठीक है कि-नहीं यदि ठीक नहिं हो तो अब व्हेल्युपेबल और आगेको जैनहितैषी किस पतेसे भेजा जावे- परन्तु पहले जिस पतेसे जैनहितैषी आता है वह पता भी हमको जरूर जरूर लिख भेजें नहीं तो आपको वी. पी. नहीं भेजा जा सकेगा।

४) जिनको जैनहितैषीके ऊपर लिखी उपहारकी पुस्तकोंके सिवाय हमारे यहांके कारखानेकी दूसरी पुस्तकें मगाना हो तो उनका भी नाम लिख भेजें वे भी इसी व्हेल्युपेबलके साथ भेजदी जांयगी जिससे आपको डांक खर्चका बचत होगी।

५) जब आपके वेल्युपेबलका रुपया हमारे पास आ जायगा तो आपका ठि-काना हरसदाके जैनहितैषी रवाने करनेके लिये छपा लेंगे-इसकारण अपना पता देवनागरी अक्षरोंमें सब मुहल्ला पोष्ट जिला वगैरहके साफ २ लिखना होगा यदि साफ २ न लिखनेसे पता अशुद्ध छप जानेके कारण आपके पास जैनहितैषी बराबर नहिं पहुंचेगा तो उसके जुम्मेदार हम नहिं होंगे।

पत्र भेजनेका पता—**पन्नालाल जैन—कालबादेवी (बंबई)**

श्रीः

जैनहितैषी.

[illegible]

(जैन[illegible])

मासिक पत्र.

पन्नालाल बाकलीवाल द्वारा संपादित व प्रकाशित।

चतुर्थ भाग	वीर निर्वाण संवत् २४३४।	अंक ४२ वां

नियमावली

१. इस पत्रका वार्षिक मूल्य डांकखर्चसहित अग्रिम १।) और पीछेसे [illegible] रु. है। जो महाशय [illegible] जिनका मूल्य आजायगा वह अग्रिम समझा जायगा। फुटकर अंकका मूल्य ।) आने।

२. यह पत्र जैनी सभाओं और [illegible] महाशयोंके पास भेजा जाता है। प्रथम अंक पहुंचनेपर यदि कोई महाशय कार्डद्वारा सूचना देंगे अथवा दूसरा अंक लौटा देंगे तो उनका नाम काट दिया जायगा। जो महाशय न तो नाम कटानेके लिये कार्ड भेजेंगे और न दूसरा अंक लौटावेंगे वे महाशय पक्के ग्राहक समझे जावेंगे और उनको ५ अंक तक भेजकर छट्ठा अंक वी. पी. द्वारा भेजा जायगा।

३. जो भाई साफ २ हिन्दीके सिवाय उर्दू, अंगरेजी व मूडी वगैरहमें चिट्ठी भेजेंगे उनकी तामील नहीं होगी वे रद्दीमें फेंक दी जावेंगी।

पत्र व मूल्य भेजनेका पता—**पन्नालाल जैन,**

[illegible] पो. **कालबादेवी** (मुंबई.)

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

जैनहितैषीके ग्राहकोंको सूचना।

हमने जैनहितैषीके ग्राहकोंको **वृंदावनविलास अर्हत्पाशाकेवली** और **मनोरमा उपन्यास** ये तीन ग्रन्थ ।) आने डांकखर्च वगैरहका लेकर चैतसुदी १५ तक देना स्वीकार किया था परन्तु अनेक महाशयोंका अनुरोध ऐसा हुआ कि–" यह बहुत थोड़ी मियाद है अनेक भाई आपके इस्तहारको बांचते तक नहीं इसकारण इसकी एक महीनेकी मियाद और भी बढा देना चाहिये " लाचार हमको अब वैशाख सुदी १५ तककी मियाद बढाना पड़ी है।

इसकारण—

भाइयोंसे प्रार्थना है कि यदि आपको उक्त तीनों ग्रंथ विनामूल्य लेना हो तो वैशाख सुदी १५ से पहिले २ जैनहितैषीका १।) और ।) आने तीनों ग्रंथोंकी रवानगीका खर्च कुल १॥) रुपयेके वी. पी. भेजनेका कार्ड स्पष्ट देवनागरी हिंदी अक्षरोंमें पता लिखकर भेजिये। यदि कार्ड द्वारा वी. पी. भेजनेकी आज्ञा देनेमें विलंब करेंगे तो **वैशाख मासके पश्चात् फिर ये ग्रंथ विनमूल्य नहीं मिलेंगे** उस समय इनका मूल्य २) या २॥) रु. देना होगा।

क्षमा प्रार्थना।

हमने गतांकके साथ प्रकाशित किया था कि–तीनों ग्रंथ चैत्र सुदी १५ तक सबके पास भेज दिये जांयगे परन्तु वृंदावनजीके जीवन चरित्र लिखनेवाले संपादक भाई नाथूराम प्रेमीके महासभाके अधिवेसन पर चले जानेसे वृंदावन तैयार नहीं हो पाया अब सबकेपास भेजना सुरू कर दिया है आशा है कि यह देरीका अपराध हमारे अनुग्राहक ग्राहक गण क्षमा करेंगे।

भाइयोंका कृपाकांक्षी दास—**पन्नालाल जैन**

ॐ

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

चतुर्थ— भाग.	चैत्र-वीरनिर्वाण संवत् २४३४।	अंक— ४२ वां.

लेखकोंसे प्रार्थना।

हर्ष है कि आजकल हमारे समाजमें दिनों दिन लेखकोंकी उन्नति होती जाती है। जैनगजटके द्वारा पहुंचते हैं, द्वारसे कई लेखक तैयार हो रहे हैं इसीप्रकार जैनगजट, जैनमित्र, जैनपताका आदिमें अनेक भाई अपने २ हृदयके विचार प्रगट करके लेख देते हैं परन्तु खेद है कि वे लेखके नीचे अपना नाम देते हिचकते हैं सो ऐसा नहीं चाहिये। तथा संपादकोंको भी चाहिये कि विना नामका लेख अपने पत्रमें कदापि नहिं छापें। हां पंच वा मनोविनोद विना नाम वा फर्जी नामसे छाप सकते हैं। सहयोगिनी **जैनपताकाने** जैनगजटमें छपे हुये विना नाम वा संक्षिप्त नामवाले लेखों पर कटाक्ष किये थे परन्तु अब वह स्वयं विना नामके लेख देती है सो ऐसा कदापि नहीं चाहिये। सहयोगिनीके पांचवें अंकमें '**सरस्वती**' नामका किसी लेख बंबईनिवासी एक जिनवाणी भक्तके नामसे छपा है परंतु हम जहांतक समझते हैं उस लेखका लिखनेवाला बंबईका नहीं है क्योंकि बंबईमें जिनवाणीमाताका ऐसा शत्रु कोई भी नहीं है जो इसप्रकारका लेख लिखे। इसका लिखनेवाला तो कोई कलकत्तेमें अथवा खुरजा फीरोजाबाद वा अलीगढमें हो सकता है।

शोक ! शोक !! महाशोक !!!

हमारा धर्म वा धर्मस्थान छिनगया ।

जैनियोंका तीर्थराज सम्मेदशिखरजी सरकारी कर्मचारियोंने अपने ऐस आरामके लिये छीनकर १४ लाख जैनियोंके हृदयपर वज्राघात करादिया ।

भाईयो ! ता. २५ मार्चको याद रखिये कि-यह दिन जैनियोंके हृदयस्थ धर्मभक्तिका नाशक है । इसी दिन लार्ड मिंटोने हुकुम दिया है जिसका अभिप्राय यह है कि सम्मेदशिखरजीके पाश्चिमी पर्वतोंपर अंगरेज और पूर्वीय पर्वतों पर हिंदुस्थानी खुशीसे बंगले बनावें वीचकी पहाडियोंपर जहां जैनियोंके मंदिर बने हैं वह जगह जमींदारकी है उसके लिये कोर्ट आफ बोर्डसे उचीसे ऊंची रकम देकर खरीदनेकी जैनीलोग अर्जी करें अन्यथा वहांपर भी बंगले बंधेंगे उसे चाहे जो खरीद सकते हैं ।

भाइयो ! जिस पर्वतराजकी रेणु रेणु पवित्र व पूजनिय थी जिसपर आप लोग सवेरे ४ बजेसे बंदनाके लिये नंगेपावों चढकर पशाव थूक नासिकामल वगेरहको १२ घंटे तक रोक रखते थे, वह पवित्र पहाड आज हमारे राजकर्मचारियोंने अपने ऐस आरामके लिये छीन लिया । क्यों छीन लिया कि तुम लोग बहुत कालसे छत्रीसे बनिये बनगये अपने धर्मको छोड दिया । तीर्थराजकी भक्ति छोडदी दूसरे तुमारी जातिके खुशामदी टट्टुओंने अपने पेट मान पदवियोंकी रक्षाकेलिये सरकारी कर्मचारियोंके विरुद्ध खडा होना उचित न समझा

यहां तक कि इस हृदयको टूक २ करनेवाले उस तारको भी महासभामें पढकर सुनानेके लिये महाशयोंने दो दिन तक बहुत ही कोशिस कियी परंतु ४–५ हजार जैनीभाई महासभाको तोड मोडकर इनको सजा देनेके लिये तैयार होगये तब इन धर्मात्मा महाशयोंने सम्मेदशिखरजीका तार सुनाया और इसकी रक्षाका उपाय अंगरेज जातिसे सर्वथा व्यापार संबंध छोड देने तथा स्वदेशी वस्तुओंका स्वीकार विदेशी वस्तुओंका त्याग करकें सम्मेदशिखरजीपर दो तीन हजार भाइयोंको भेजने वगैरहका प्रबंध करना था सो नहिं करकें विलायत तक मुकद्दमा लडकर लाखों रुपियोंसे अंगरेजी वारिष्टरोंके पेट भरनेका रास्ता साफ किया ।

भाइयो ! अब कोई उपाय नहीं है यदि आप अंगरेज जातिसे लेन देन वा अन्यान्य व्यवहार छोडकर सब चीजें स्वदेशी लेना विदेशीको छूना तक नहीं इसप्रकार प्रतिज्ञा करकें देश भरमें आन्दोलनकरकें गैयामी अंगरेजोंके पेटभर लात मारना चाहे ! तथा–सम्मेदशिखरजीपर जाकर बंगलोंकी नींममें अपने धर्मके लिये जान देनेकों तैयार हो जांयगे तो भी ये सरकारी गुलाम वा खुशामदी टट्टू आपका तीर्थक्षेत्रकमेटीके तीन लाखके चंदेमेंसे एक पैसेकी भी मदद नहिं देंगे बलके पैसेकी मदद देना तो दूर रहै किन्तु '**हां ऐसा करना चाहिये**' इतनी सम्मति तक नहीं देंगे ।

तब कहिये कि–आप क्या कर सकते हैं ?

इसलिये हमारी प्रार्थना है कि-आप कानमें तेल डालकर चूंडियें पहनकर घरमें बैठ जावें और अपने मुहसे अपनेको कदापि जैनी नहिं कहें अथवा लेखनीसे अपनेको जैनी वा सरावगी वगैरह कदापि न लिखा करें क्योंकि आपका जैनधर्म वा श्रावकधर्म नष्ट हो गया आपका धर्मस्थान नष्ट हो गया उसको आपने ही प्रमादके वशीभूत होकर खो दिया अब आपको जैनी वा श्रावगी कहलाना ऐसा है कि–**आंखोंके तो अंधे और नाम नयनसुख** ।

शोक ! शोक !! महाशोक !!!

प्रांतिकसभा बंबईका अन्याय।

पाठक महाशय! गतवर्ष गजपंथाके अधिवेशनपर अगले वार्षिक उत्सवके निमंत्रणोंपर विचार किया गया तो अबकी शाल पावागढ और अगला अधिवेसन दहीगांव होगा ऐसा प्रस्ताव पास हो चुका था परन्तु अबके सभाके अग्रनेता **हीरामाणिकसीतल एण्ड को० ने** दहीगांवके भाइयोंको हताश करके जिस जगह एक भी जैनीका घर नहीं, पीनेको पाणी तक मिलना कठिन है ऐसी जगह तारंगाजी तीर्थपर अधिवेसन करना नियत किया है सो यह सरासर अन्याय है इसका फिरसे विचार होना चाहिये।

प्रांतिकसभा बंबईका दूसरा अन्याय।

प्रांतिक सभाका दूसरा अन्याय यह है कि—एक मुख्य विद्वान् सभासदके आग्रहपूर्वक प्रार्थना करनेपर भी सभापतिसाहबने सभाका दफतर भाडेके मकानमें न रखकर जबरदस्ती तेरहपंथी जैनमंदिरमें स्थापन करवाकर सभाके दफतरको फिंकवाया सभाका महा अपमान करवाया फिर वह दफतर सभापति साहबके हीराबाग नामकी धर्मशालामें आया तो वहांपर भी उसे आश्रय नहीं मिला बाहर फींक देनेका हुकुम हुआ परंतु उस समय भाग्यसे वेही सभासद महाशय आ-गये थे जिससे हीराबागके कमरेसे बाहर निकलवाकर एक खुली जगहमें रखवाया जब कोई भाडेका मकान नहीं मिला और एक मकान महीने वीसदिनमें खाली होनेवाला है तबतक हीराबागमें ही आश्रयदें तो अच्छा हो. इसप्रकार क्लार्ककी प्रार्थना पर भी महीने वीसदिनके लिये सभाको आश्रय नहीं दिया। इसप्रकार रक्षाकरनेकी जगह सभाका महा अपमान करनेवाले महाअपराधीको कुछ भी दंड नहीं देकर फिर उसी ओधेपर कायम रखना और प्रत्यक्ष्यतया महाअपराध सावित होनेपर भी सभाकी रिपोर्टमें पांच सात पंक्ति दफतर फेंके जानेकी अचानक घटनाके उल्लेख होनेसे उस रिपोर्टको अधिवेशनपर न बांटकर उस महा अपराधके छिपानेकी कोशिश करना अन्याय नहीं तो क्या है? जिसके मगजमें राईभर भी बुद्धि होगी वह अवश्य ही इसको महा अन्याय वा अविचार कहेगा यदि कोई महाशय कहै कि—सेठजी बडे **दानवीर** और **समर्थ हैं' समरथको नहिं दोष गुसांई,** की नीतिसे उनपर यह दोष आही नहिं सकता अस्तु हम

थोडी देरकेलिये इस नीतिको भी मानलेते हैं परंतु इस नीतिवाक्यका यह तो मतलब कदापि नहिं हो सकता कि समर्थ चाहे जितने अपराध करें उनको दोष वा पाप कुछ भी नहीं लगै–हम कहते हैं कि–इस नीति वाक्यका यही अभिप्राय है कि यदि कोई समर्थ पुरुष भूल चूकसे या किसी दुष्टात्माकी संगतिसे एक आध अपराध करले तो माफ किया जा सकता है परन्तु जब तक कि वह माफी न मांगे और आइंदेको ऐसी भूल नहिं करनेके लिये प्रतिज्ञा न करले तबतक कदापि माफ नहिं कर सकते परन्तु खेद है कि हमारे सेठजी न मालूम किस ग्रहसे ग्रसित हो रहे हैं कि–अब भी सभा पाठशालादि तोडनेके लिये कोशिश करते रहते हैं। अभी हालहीमें सेठजीकी सज्जनताका एक ताजा उदाहरण और मिला है वह यह है कि–सेठजी सभापतिके सिवाय कोषाध्यक्षका काम भी स्वयं करते हैं पाठशालाके पाठक तथा विद्यार्थियोंके स्कालर शिप–सभाके क्लार्क वगैरहकी तनखा तथा जैनमित्रादिके छपाई कार्यके लिये जो कुछ रुपया खर्च होता है मंत्रीके हस्ताक्षरोंसे बिल सही हो जाता है तब सेठजीके यहांसे रुपये मिलते हैं ऐसा नियम है–सो अध्यापककी तनखाह वगैरहके लिये क्लार्कने एक बिल किया मंत्रीने स्वीकार करकें हस्ताक्षर कर दिये। क्लार्कने सेठजीकी दुकानपरसे रुपये मांगे तो देनेसे इनकार हो गया। इसकी दो चार दिन तब बडी चर्चा रही जब सभा पाठशाला जैनमित्र वगैरह सबके बंद होनेकी नौबत आगई–तो श्रीयुत पंडित धन्नालालजीने सेठजीके यहां जाकर कैफियत मांगी कि ऐसी बे–कायदे कार्रवाई करकें सभा पाठशालादि धर्मकार्य क्यों तोडे जाते हैं ? यदि आपको सभा पाठशालादि धर्मकार्योंको तोडना ही मंजूर है तो कायदेसे प्रस्ताव पास करकें बंद कीजिये। तब आपने फरमाया कि सभाका क्लार्क काम बराबर नहीं करता हमारी हुकुमउदूली करता है इसकारण सलाह मांगनेसे लल्लूभाई प्रेमानंदने सलाह दी कि रुपया देने बंद कर दो सब सीधे हो जांयगे सो लल्लूभाईके कहनेसे ही मैने रुपये नहिं दिये। तब उक्त महाशयने कहा कि–क्लार्ककी गुस्ताखी हो तो उससे कैफियत मांगना अथवा निकाल देना आपके हाथमें है। लल्लूभाई कुछ आपसे बडे ओधेदार तौ हैं ही नहीं जो उनके कहनेसे बिल न दें। लाचार सेठजीको उसी दिन रुपये भेज देने पड़े। अगर पं. धन्नालालजी बंबईमें न होते तो सभा पाठशाला जैनमित्र सब बंद हो जाते किन्तु भाग्यसे उक्त महाशय यहां पर थे जिससे इन सबकी रक्षा

हुई। लल्लूभाईसे पूछा गया कि तुमने सभापतिको ऐसी अनुचित सलाह क्यों दी तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया कि मैं ऐसी कच्ची सलाह कदापि नहिं दे सकता सेटजीको उस समय कोई जबाब नहिं आया होगा तब मेरा नाम ले दिया होगा।

कहिये पाठक महाशय! सभा पाठशालादिके ऐसे हितैषी महाशयको अब भी सभापति बनाये रखकर और उनसे सभा वगेरह धर्मकार्योंकी उन्नति चाहना यह अन्याय नहीं तो क्या है? परंतु क्या किया जाय शोलापुरके धनाढ्य सभासद तो कानमें तेल डालकर आंख मूंदकर सो गये। बंबईके सभासद सेठजीके ममीचीन वर्त्तावसे रुष्ट वा उदाशीन हो गये। सभापर अधिकार एक मात्र हीरामाणिकचंद्रतिल एण्ड कंपनीका रह गया तो ऐसे अन्यायोंपर कौन विचार करे?

प्रान्तिक सभा बंबईका तीसरा अन्याय।

विदित हो कि इस देशके प्रतिष्ठाकारक भोले भाले भाई प्रान्तिक सभाकी बडी भारी इज्जत करते हैं और प्रतिष्ठाके समय सभाके आनेसे विद्वानोंके उपदेशसे हमारे देशको बडा लाभ होगा ऐसा समझकर अपने यहांके प्रतिष्ठा उत्सवमें प्रांतिकसभाका नैमित्तिक अधिवेशन करानेके लिये बडा भारी यत्न और मंडपवगेरहके लिये खर्च करते हैं परंतु सभाके कार्यकर्त्ता गण "कुछ न कुछ चंदा तो होगा ही" ऐसी आशासे इस नैमित्तिक अधिवेसन करना स्वीकार करलेते हैं। कुछदिन हुये एक नैमित्तिक अधिवेसन कुंथलगिरीमें हो ही गया था। आज-कल दूसरा अधिवेशन निंबगांव जिला पूनामें हो रहा है इसकी मंजूरी पावागढके अधिवेशनपर होगयी थी। परंतु खेद और अन्यायकी बात यह है कि अधिवेसनपर प्रान्तिकसभाकी पेटी (हातबक्स) क्लार्क और सिपाहीके सिवाय न तो सभापति जाते हैं और न मंत्री ही जाते हैं जिससे सभाको बुलानेवालोंके चित्तमें बडा भारी दुःख होता है तथा अपना अपमान भी समझते हैं। सो ऐसा कदापि नहीं चाहिये यह भी एक अन्याय है इसप्रकार करनेसे सभाका गौरव घटता है फिर कोई भी सभाको आमंत्रण नहीं देगा।

दिगंबरजैनमहासभाका वार्षिक अधिवेशन हो गया।

परंतु

काम कुछ भी नहिं हुआ।

महाभाके कुंडलपुरी अधिवेशनपर विद्वद्वर्य श्रीयुत पंडित **गोपालदासजी बरैया** तथा **धन्नालालजी काशलीवाल** वगेरह प्रायः सब ही विद्वान महासभाको सच्ची धर्मसंरक्षिणी महासभा बनानेके लिये गये थे परंतु अंगरेजी पढे कर्मचारी तथा खुशामदी धनाढ्य महाशयोंका पंडितोंपर प्रभाव पड जानेके कारण महासभा सच्ची '**श्रीजिनधर्मसंरक्षिणी दिगम्बरजैनमहासभा** नहिं बन पाई और न महासभा तीर्थराज सम्मेदशिखरजीकी रक्षाका ही कोई समीचीन उपाय कर सकी। तथा सबसे मुख्य और प्रथम कार्य समस्त धर्मकार्योंकी मूल पतितपावनी भंडारोंमें गलती सड़ती श्रीमती जिनवाणीमाताक रक्षा करनेका समीचीन उपाय करना था सो इस विषयमें भी कुछ नहिं कर सकी। सुना है कि सरस्वतीभंडारके मंत्रीकी बदलाबदली हुई है अर्थात्– पं. जवाहिरलाल साहित्य शास्त्री मंत्री बनाये गये हैं परंतु बाबू देवकुमारजीने जिस सरस्वतीभंडारकी स्थापना बंबईमें की थी और जिसका भार दानवीर सेठ माणिकचंदजी जे. पी. और उनकी मूछके बाल प्राइवेट सेक्रेटरी बाबू—शीतलप्रदजीको सोंपा था उनकी जगह ये मंत्री साहब नियत हुये हैं वा मथुरामें जिस सरस्वतीभंडारके मंत्री मान्यवर लाला मूलचंदजी वकील थे उनकी जगह आप नियत हुये हैं? सो महासभामें पधारनेवाले किसी महाशयकी जबानीसे मालूम नहीं हुआ और यह भी मालूम नहि हुआ कि इस परमोपयोगी कार्यके लिये बजट कितना पास हुआ है इसप्रकारके खेलोंसे हम तो यही समझते हैं कि महासभा वा हमारे धर्मात्मा भाइयोंकी अपनी मातापर अभीतक कुछ भी दयादृष्टि नहीं हुई है अगर होती तो इसका कोई समीचीन उपाय करते।

हां महासभामें दो काम अच्छे हो गये–एक तो यह कि हमारे बाबू–कार्यकर्त्तागण महासभाका उद्देश्य और नियमावली पलट कर मनमानी धर्मविरुद्ध कार्यवाहीपर उतारु हो गये थे सो–विद्वच्छिरोमणि श्रीयुत पं. गोपालदासजीके अत्याग्रहसे महासभाका मुख्य उद्देश '**धार्मिक विद्या और धर्मसे अविरुद्ध लौकिक**

विद्याकी उन्नति करना हो गया है। इसके विरुद्धमें **एक जैनी** महाशयने **बहुत कुछ** कहा परन्तु किसकी ताकत थी जो धार्मिकविषयमें जैनधर्मके **सूर्य पं० गोपालदासजीके** सामने बोलता? अंतमें जब सबका मत लिया गया तो सब सभासदोंका मत पंडितजीकी तरफ और उन **एक जैनी महाशयकी** तरफ एक भी मत नहीं मिला। लाचार झखमारके सबको यह उद्देश्य मानना पडा और नियमावली भी ठीक हो गई-परंतु भाइयोंको याद रहै कि-इस नियमावलीके अनुसार काम होनेमें अभी संदेह है क्यों कि-यह नियम महासभाके कर्त्ता हर्त्ता विधातावोंके विरुद्धपक्षी पंडित गोपालदासजीके पवित्र मस्तकसे निकला है।

दूसरा कार्य यह भी अच्छा हो गया कि-महाविद्यालयका स्थान सहारनपुरसे बदलकर काशीमें कर दिया गया परंतु खेद है कि स्याद्वादपाठशालामें नहिं मिलाया गया-सुना है कि महाविद्यालयका फंड पाठशालाके फंडसे नहिं मिलाया जायगा। इसका अभिप्राय यही है कि यदि इसकी काशीमें उन्नति नहीं हुई तो काशीसे उठाकर और भी तीसरीबार स्थान बदल दिया जायगा। अस्तु इस अभिप्रायसे भी यदि ऐसा किया गया है तो भी कुछ हानि नहीं है-वर्ष दो वर्ष भी यदि महाविद्यालय काशीमें रहैगा तो सबको मालूम हो जायगा कि-महाविद्यालयकी उन्नति हुई कि-नहीं। हमारी समझमें तो दोनोंका फंड मिलाकर दोनोंके नामोंका संयोग करकें **स्याद्वादविद्यालयकाशी,** ऐसा नाम रख देते तो अच्छा होता।

ये सब प्रस्ताव मुम्बईसे गये हुये भाइयोंकी मुख जबानी सुने हैं उसीपरसे हमने टीका लिखी है-असलमें क्या क्या प्रस्ताव हुये सो अभीतक महासभाके कार्यकर्त्ता महाशयोंके हाथमें हैं जैनमित्रके उपसम्पादक वगैरहने छापनेको मांगे थे परन्तु उन्होंने देना उचित नही समझा। इसलिये हम अपने पाठकोंसे प्रार्थना करते हैं कि महासभाके उक्त प्रस्तावोंपर हमने जो कुछ लिखा है सुनकर लिखा है। इसके जुम्मेवार सुनानेवाले हैं। महासभाके प्रस्तावोंकी विशेष समालोचना महासभाके मुखपत्र जैनगजटमें छपनेपर की जायगी किन्तु खेद है कि-अभीतक जैनगजटके दर्शन नहिं हुये।

पेटार्थू कौन नहीं है?

सहयोगिनी जैनपताका अंक ७ में ' **अनूठारहस्य,** शीर्षक देकर एक

पेटार्थू और लेखकके वार्तालाप द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि-जैनग्रंथ छपा छपाकर जिनवाणीमाताका जीर्णोद्धार पूर्वक सर्वत्र प्रचार करके ज्ञानोन्नतिमें सहायता करते हुये अपने लगाये हुये पैसे और कायिक मानसिक परिश्रमके फलस्वरूप व्यापार करके गुजारा करते हैं वे निरे पेटार्थू वा पापी हैं। परंतु सहयोगिनीको विचारना चाहिये कि दुनियांमें ऐसा कौनसा मनुष्य है जो पेटके अर्थ उद्यम करके पेट न भरता हो और ऐसा कौनसा व्यवसाय है कि-जिसमें पेटार्थू गण झूठ चौरी मायाचारी अनुचित घृणित खुशामदी किये विना नीतिसे काम लेते हों। आजकल पेटके अर्थ पेटार्थू गण वह २ घृणित कार्य करते हैं कि-जिनके स्मरण करते वा उल्लेख करते ही मनुष्यको लज्जा आती है परंतु कर्त्तव्यानुरोधसे आज थोडेसे पेटार्थू लोगोंका प्रकार लिखना पडता है—

एक प्रकारके **बडे पेटार्थू** तो ऐसे हैं कि-जिनका बहुत बडा पेट होता है बडी २ दुकानें हैं दुकानोंके मुनीम बडी २ चौरियां करते हैं तथा वे मुनीम अपनी बहू बेटी वा स्त्रीसे अनुरक्त हो प्रत्यक्षतया व्यभिचार करके कुलको वर्णशंकर करते रहते हैं तथापि वे बडे बडे पेटार्थूगण ऐसे दुष्टात्माओंको दंड नहिं देते दंड देना तो दूर रहा खारिज तक नहीं करते बल्के उल्टी खुशामद करके उनके सब अत्याचार सहते रहते हैं और उसकी ही आज्ञानुसार सेठजीको चलना पडता है किसलिये कि-पेटके लिये। क्योंकि यह मुनीम अनुभवी है इसीकेद्वारा हजारों लाखों पैदा किये हैं यदि इसको छोड देंगे तो दुकानका काम कौन चलावैगा? यदि इसको दंडित किया जायगा तो यह शीघ्र ही पलमा चौडै कर देगा अर्थात् व्यापारी समाजमें हमारा भेद खोलकर हमारा दीवाला काढ देगा तो हमारा पेट कैसें भरैगा? कहिये! ये निरे पेटार्थू हैं कि नहीं?

दूसरे पेटार्थू-अनेक प्रकारके दलाल होते हैं वे भी अपनी दलाली पकानेके लिये अर्थात्-पेटके लिये महा व्यभिचारी अन्यायी सेठों तथा मुनीमोंकी अहो रात्र खुशामदी करते रहते हैं यहां तक कि-सेठजी तथा मुनीमजीके घर अपनी २ स्त्रियोंको भेज २ कर तथा उन्हींके मकानमें अपना रहवास बनाकर सेठजी तथा मुनीमजीकी उत्तमप्रकारसे खुशामदी वा खातिरदारी किया करते हैं ऐसे पेटार्थू मुम्बई और कलकत्तेमें अनेक हैं।

तीसरे पेटार्थू–वे हैं जो ऐसे ही व्यभिचारी सेठोंके यहां तथा मुनीमोंके हाथके नीचें गुमास्तगिरी करकें अपना पेट पालते हैं और वे भी दलालोंकी तरह सेठजी तथा मुनीमजी साहबकी अपनी २ स्त्रियोंद्वारा खातिरदारी करनेमें कोई प्रकारकी कसर नहीं रखते। बलके ये पेटार्थू उनसे भी बढकर एक विद्या जानते हैं उससे भी प्राय: सेठजी वा मुनीमजीकी खातिरदारी करकें अपना पेट पालते रहते हैं।

चौथे पेटार्थू—वे हैं कि–जो विना पूंजीके ही झूठ मायाचारी फरेबीसे अपनी अपनी प्रतिष्ठा वढाकर ॥) ।॥) सैंकडेकी आडत लेकर बाहरके व्यापारियोंको हजारों लाखोंका माल रवाने करते हुये उनको ठगते रहते हैं। नाम तो आठआने वारहआने सैंकडेकी आड़त खाकर साहूकारी सर्राफी व्यापारका रखते हैं और चौरीसे ५) रु. सैंकडेतकका कस लगा लेते हैं तो भी पेट नहीं भरता। बट्टा–दलाली मुदतका व्याज तो प्राय: खा ही जाते हैं। इसके सिवाय कपडेकी गांठोंमें दो आनेकी रस्सी लगती है तो आढतीपर चार्ज करेंगे ।≈) आने ।) की टाट लगी दाम लगावेंगे ॥) गांठको कलमें कसवाईके ॥) देंगे आढतीपर लगावेंगे १ रु. रेलपर पहुचानेका गाडीभाडा एक गांटपर ≈) लगेंगे और आढतीपर लगावेंगे ।≈) ॥) आने, बिल्टी रजिष्टरीमें भेजनेसे लगेंगे ≈)॥ आने और आप लगावेंगे ।) आने-बाजारसे माल लावेंगे कोई भाव, आढतियोंको लगावेंगे दूसरा चढा हुआ भाव। आढ़तिया जिस नंबरकी धोती या कपडा मगाता है वह न भेजकर अपने खरीदे हुये धोती जोडे वा कपडे भेज देंगें। ये पेटार्थू इसीप्रकार मायाचारी जूआचोरीसे बाहर गांवके भोले भाले असमर्थ व्यापारियोंको ठगते हुये अपना पेट पालते रहते हैं परंतु इसप्रकार अन्यायसे कब तक पेट पालेंगे कुछ दिन बाद जब अन्यायका पैसा अन्यायमें लगकर स्वाहा हो जाता है तब लाख पचास हजार रुपये घरमें रखकर दिवाला काढ देते हैं अर्थात् घाटा निकाल कर साहूकार बन जाते हैं अदालतमें धर्मकी कसम खाकर कह देते हैं कि-हमारे पास देनेको कुछ भी नहीं है। बस अदालतसे साहूकारी सवित होते ही दूसरे दिन दूसरेके नामसे फिर वही ठगाईका काम सुरू कर देते हैं। मारवाडी जातिका तो प्राय: यही व्यवसाय हो गया है–जिससे प्रतिवर्ष करोडों रुपयोंका विलायती कपडा वगेरह माल सब देशोंमें प्रचार करके भारतका सत्यानाश कर डाला और करते जाते हैं।

पांचवें पेटार्थू वे हैं—जो मुफस्सिलसे गल्ला रूई किराना मंगा २ कर थोडीसी आढतपर अंगरेजोंके हाथ बेच २ कर देशको दरिद्र करते हुये अपना पेट पालते रहते हैं—ये पेटार्थू भी उक्त पेटार्थुओंकी तरह हर बातमें अपने देशभाई आढ़तियोंकी गांठ काटनेमें कसर नहीं रखते।

छट्टे पेटार्थू—उक्त चौथे पांचवें पेटार्थू ठगोंके दलाल होते हैं सो वे प्रत्यक्षरूपसे दलालीके सिवाय बेचने खरीदनेवालोंसे गुप्त दलाली (रिसवत) खाकर खराब मालको चौखेमालके भावमें विकवाकर दोनोंमेंसे एक व्यापारीकी गांठ काट लेते हैं।

सातवें पेटार्थू—वे हैं जो कि–जवाहिरातका धंदा करते हैं–ये लोक चाहे कैसा ही संबंधी वा भोला व्यापारी, वा भोला ग्राहक तथा दलाल क्यों न हो. अपनी गर्दन उनकी गोदमें रख देनेपर भी धर्मकी कसम खाकर उसकी गांठ काटनेमें जरा भी नहीं हिचकते। जो कोई गरीब बणिक पुत्र इनसे जवाहरातका कार्य सीखकर जवाहिरातकी दलाली करके अपना गुजारा करना चाहता है तो सिवाय अपने अत्यंत निकट संबंधीके किसीको भी अपनी विद्या नहीं सिखाते। और न किसीको व्यापारादिकमें द्रव्य सहायता ही देते हैं। इन पेटार्थुओंमें झूट बोलना, कहकर मुकर जाना, मायाचारीसे प्रवर्त्तना विद्वानोंको बदमास लुचे कहकर अनादर करना वगेरह अन्याय कार्य तो इनके यहां धर्मका अंग समझा जाता है। ऐसे २ पेटार्थुओंसे संबंध कभी न हो भगवानसे यही प्रार्थना करते रहना चाहिये।

आठवें पेटार्थू—वे हैं कि जो झूटमूट ही पंडित त्यागी धर्मात्मा बनकर ऐसे ही अन्यायी सेठोंके घर जी हजूर! हां साहब!! इत्यादि चाटुवाक्योंसे खुशामदी करते हुये उनके झूठे टुकड़े तोडते हैं और घरबाहर सर्वत्र अपना प्रभाव जमाकर उनके यहांकी स्त्रियोंको एकांतमें बैठकर नानाप्रकारकी शिक्षायें देते रहते हैं। जिनकी अन्यायरूप चर्या देखनेसे बडी भारी घृणा होती है। ऐसे पेटार्थू अपने पेटके लिये सभा पाठशालादि धर्मकार्योंके नष्ट करानेमें भी रंचमात्र संकोच वा पापसे भय नहीं करते।

नवमें पेटार्थू—वे हैं कि जो पंडित विद्वान् होकर भी ऐसे नालायक बछियाके बाबा धनाढ्योंके यहां नोकरी करने वा नोकरी वा किसीप्रकारकी प्राप्ति की इच्छा रखते हैं और उनके अछते गुणोंकी प्रशंसा करके उनकी झूठी

कीर्ति करके श्वानवृत्तिसे भोले भाले भाइयोंको भ्रममें डालते हैं । ऐसे पेटार्थू अपने पेटकेलिये उन सेठोंके पास अपने संबंधी वा हितैषीमित्रोंकी झूठी निंदा करते हुये भी नहीं शरमाते हैं ।

दशवें पेटार्थू—वे हैं जो कि विदेशी व्यापारियोंके यहां नोकरी वा दलाली करकें उनके व्यापारको बढाकर देशके व्यापारको नष्ट करकें देशको दरिद्र बना रहे हैं ।

ग्यारहवें पेटार्थू—वे हैं जो रेलवेकी नोकरी करकें देशभाईयोंको टिकट देने माल चढाने वा मुसाफरी करने वगेरह में नानाप्रकारकी तकलीफें देकर रिशवत खाते रहते हैं ।

बारहवें पेटार्थू—वे हैं जो पुलिस तथा अदालत वगेरहमें सरकारी नोकरी करकें अपने देशी भाइयोंपर नानाप्रकारके जुल्म करते रहते हैं और प्रजाकी पुकार पर विचार नहीं करकें प्रजाकी तरफसे सरकारी अफसरोंकों झूठी खबरें पहुंचा कर प्रजाके विरुद्ध कार्रवाई करके अपना पेट पालते रहते हैं ऐसे पेटार्थुओंसे देशका बडा भारी अकल्याण होता रहता है ।

तेरहवें पेटार्थू—वे हैं कि जो सरकारसे आनरेरी मजिस्टेट्रेट रायबहादूर सी आई, ई, आदि पदवियें प्राप्त हैं अथवा सरकारी कर्मचारियोंकी खुशामदी करकें इन पदवियोंकी तथा बडी २ दासवृत्तियोंकी इच्छा रखते हैं अथवा अनेक जमींदार हैं जिनका जन्म सरकारी खुशामदी करनेमें ही जाता है ऐसे खुशामदी टट्टू ऐसे पेटार्थू होते हैं कि वे हरसमय जिसप्रकार बिल्लीसे चूहा डरता है उसीप्रकार सरकारी अंगरेज कर्मचारियोंसे डरते रहते हैं । हमसे कभी ऐसा कोई काम न होजाय कि जिससे ये हाकिम लोग नाराज होकर हमारी जमींदारी बरबाद करदें वा रायबहादूरी वगेरह छीन ले वा देवे ही नहीं। ये पेटार्थूगण अपने धन मान (गुलामी वा खुशामदीपनकी) और पेटकी रक्षाके लिये धर्मको भी छोड देते हैं । ऐसे २ खुसामदखोर मानार्थी पेटार्थुओंने ही हमारे दादे पडदादेसे चले आये धर्मस्थान तीर्थराज समेदशिखरजी को सर्वथा खो दिया । अगर ये खुशामदी टट्टू सभा-डेप्युटेसन वगेरहमें कर्त्ता हर्त्ता न होते तो अबके महासभाके अधिवेसनपर तीर्थराजकी रक्षार्थ कुछ न कुछ उपाय होजाता ।

चौदहवें पेटार्थू—वकील मुखत्यार वा बारीस्टर वगेरह हैं जो कि अपने पेटके लिये दो भाइयों वा रिस्तेदारोंको पंचायतीसे फेसला न करवाकर अदालतोंमें लड़ा २ कर झूठेको सच्चा और सच्चेको झूठा बना २ कर अपने मुवक्किलोंको दिवालिया करके सर्वस्व हरण कर लेते हैं ।

ऐसे २ सैंकड़ों पेटार्थू धर्म जाति और देशका सत्यानाश करते रहते हैं उनकी तरफ सहयोगिनीकी दृष्टि न जाकर जो भाई अपनी विद्या बुद्धि और तनमनधनको लगाकर प्राचीन परमहितोपदेशी जैन ग्रंथोंको संशोधन अनुवादन प्रकाशन करके जातिमें जिनवाणी माताका प्रचार करके सच्ची प्रभावना करते हुये ज्ञानकी बढवारी करते रहते हैं और साथ साथ अहोरात्र किये हुये परिश्रम और लगाये हुये धनका फलस्वरूप न्यायरूप अपनी आजीविका भी करते रहते हैं उनको सहयोगिनी जैनपताका निरे पेटार्थू वा पापी कहती है यह कितने अविचारकी बात है सो पाठक स्वयं विचार करें ।

सहयोगिनी इस व्यापारमें एकमात्र दूषण बताती है कि इस छपानेके कार्यमें जिनवाणी माताका अविनय होता है सो उसका भ्रम है क्योंकि विनय दो प्रकारका है एक उपचार विनय और दूसरा निश्चय वा मूलविनय सो मूलविनय तो इससे भलेप्रकार पलता है, रहा उपचार विनय सो यह ग्रंथ छपानेवालोंसे भले प्रकार नहीं बनता किन्तु ग्रंथ खरीद कर स्वाध्याय करनेवालोंसे अगर वे चाहैं तो भलेप्रकार बन सकता है । जिसप्रकार हम हाथके लिखे ग्रंथोंको चौकीपर रखकर बांचना नमस्कारादिकरना वगेरह उपचार विनय करते हैं उसीप्रकार छपे हुये ग्रंथोंका भी कर सकते हैं अगर स्वाध्याय करनेवाले छपे ग्रंथोंको थोड़ी कीमतके समझकर उपचार विनय नहीं करें तो इसमें छपानेवालोंका कोई दोष नहीं है—छपानेवालोंका मुख्य उद्देश जिनवाणीमाताके सर्वोपयोगी उपदेशों वा ज्ञानका विस्तार करना और गौणतासे अपने लगाये हुये परिश्रम और धनका फलस्वरूप नफा उठाना है । स्वाध्याय करनेवाले जिनवाणी माताका अविनय किया करें इस अभिप्रायसे वे थोड़े ही छपाते हैं । स्वाध्यायकरनेवाले छपे ग्रंथोंका जो कुछ अविनय करते हैं वे बहुत भोले हैं । वे हस्तलिखित जिनवाणीमाताका लौकिकविनय करते हैं और छपे ग्रंथोंका विनय कम करते हैं सो वे भाई जिनवाणीका विनय नहीं करते किन्तु पैसेका विनय करते हैं । अस्तु थोडी देरके लिये यह भी मान लिया जाय कि—स्वाध्याय करनेवालोंसे छपे ग्रंथोंका विनय बन ही नहीं सकता है तो इसमें

कौनसा महापाप लग गया ? उपचारविनय करना सम्यक्चारित्रका एक अवांतर (छोटासा) भेद है । सो यदि अव्रतीसे जो कि पांचों पापोंमेंसे एक भी पापका त्यागी नहीं है उनसे यह औपचारिक विनय नहिं पला तो उसके लिये कोई विशेष दूषण नहीं है । हां जो भाई निर्दोष सम्यगदर्शन सम्यगज्ञान और सम्यकचारित्रके धारक अर्थात् दूसरी तीसरी आदि प्रतिमाके धारी हैं उनके व्रतमें अतीचार मात्र लग सकता है । हम तो यहां तक कह सकते हैं कि–जो भाई लौकिक विनयके न पलनेके कारण छपे वा लिखे ग्रंथोंकी सर्वथा स्वाध्याय ही नहिं करते उनसे तो खाटपर पड़े २ भी अर्थात् उपचार विनयको सर्वथा न पालकर भी जो स्वाध्याय करनेवाले हैं वे हजार दरजे अच्छे हैं और उपरि लिखे चौदह प्रकारके पेटार्थू भाइयोंकी अन्यायरूप आजीविका करने वालोंकी अपेक्षा तौ प्रमादरहित जैनग्रंथोंको शुद्ध २ छपाकर वेचनेकी न्यायरूप आजीविका करनेवाले लाख दरजे अच्छे हैं । क्योंकि–पेट सबके लगा हुआ है–जो पेटके अर्थ दूसरी आजीविका करते हैं उनसे यह जिनवाणीमाताके जीर्णोद्धारका कार्य कदापि नहिं हो सकता और जो जिनवाणी माताके जीर्णोद्धार करनेमें अपना तनमन धन लगावैगा उससे दूसरी कोई भी आजीविका नहिं बन सकती और तौ क्या मुम्बईके दानवीर सेठ **माणिकचंदजी** सरीखे लक्षाधीश हैं प्रति वर्ष लाखों रुपये विनापरिश्रम और निराकुलतासे कमाते रहते हैं । छपेहुये जैन ग्रंथ भी चौपाटीपर विक्रयार्थ रखते हैं और छाप २ कर जिनवाणीमाताके जीर्णोद्धार करनेमें भी भाव रखते हैं यदि चाहें तौ हजारों रुपये लगाकर प्रतिवर्ष सैकडों ग्रंथोंका जीर्णोद्धार करा सकते हैं परंतु आज तक १२ वर्षमें एक न्यायदीपिका और एक पुण्यास्रव ग्रंथके सिवाय किसी भी ग्रंथका जीर्णोद्धार नहिं कर सके क्यों कि–वे इस कार्यसे द्रव्यलाभकी तो इच्छा रखते ही नहीं तब क्यों इस कार्यकी परवाह करने लगे ? यह कार्य तौ जो मनुष्य व्यापारके तौरपर करेगा वही भले प्रकार कर सकेगा। इस कार्यको हम भी प्राय: बारह वर्षसे करते हैं परन्तु जबतक इससे आजीविकाकी इच्छा नहिं रक्खी तबतक तो कुछ भी नहिं कर सके और जबसे इसकार्यको आजीविका पूर्वक चलाया तो दो ही तीन वर्षमें विना किसीकी भी बडी सहायताके जिनवाणी माताका इतना प्रचार कर दिया कि जो हमारी शक्तिसे भी बाहर था और दो तीन वर्षमे ऐसे २ प्राचीन स्याद्वादविद्याके प्रभाव फैलानेवाले ग्रंथोंका जीर्णोद्धार हो जायगा कि–जिनको बडे २ लक्षा-

धीश दानवीर सेठिया लोग भी नहिं कर सकते। जिसप्रकार जौहरी लोग किसी भी दलालको अपनी विद्या नहीं बताते क्योंकि उनके दिलमें यही रहता है कि ये जौहरी हो जायगा तो हमारे पेटपर लात मारैगा उसीप्रकार प्रत्येक धंदेवाले अपना धंदा अत्यंत निकट संबंधीके सिवाय किसीको भी नहिं बताते परंतु हम चाहते हैं कि इस धंदेके करनेवाले सैकडों जैनीभाई तैयार हो जांय तो बहुत ही उत्तम हो। यदि कोई भाई इस धंदेसे सांसारिक पारमार्थिक दोनों प्रकारका लाभ उठाना चाहें वे अवश्य ही हजार पांचसो रुपया इसमें लगावें और हम हरतरहसे उनकी मदद करके उनके कामको चला देंगे। सिवाय राणीवाले सेठोंके और उनकी खुशामदी करनेवाले दो चार भाइयोंके और कोई भी विद्वान् इस कार्यका विरोधी नहीं है। राणीवाले सेठोंकी तो माया ही विचित्र है. वे सब मानके पहाड-पर चढे हुये हैं. महासभाको स्थापन हुये आज १२ वर्ष हो गये उससे कभी सहानुभूति नहिं दिखलाई। अबके अधिवेसनको तो चौपट ही करना चाहते थे परंतु भाइयोंके आंदोलनसे विशेष नुकसान नहिं पहुंचा सके। सो ऐसे २ सेठोंकी कुछ भी परवाह नहिं करके जिसप्रकार बने जिनवाणी माताका जीर्णोद्धार करके प्रत्येक जैनोंके घरमें आलमारियें भरनेका कार्य प्रारंभ करें—जबतक प्रत्येक जैनीभाई जिनवाणी माताकी सेवा (स्वाध्याय) नहिं कर पावैगा तबतक कदापि जैनधर्म और जैनजातिकी उन्नति नहिं होगी। जरा विचार कर देखिये कि जिस ईसाई मतको जैनीका एक बच्चा भी खंडन करके पादडियोंको ना जबाब कर सकता है उस ईसाईमतके धारी आज हिंदोस्थानी करीब २५–३० लाखके हो गये हैं ये सब ईसाई धर्मकी पुस्तकोंके प्रचारसे ही हुये है। ये आपका धर्म सच्चा और अखंडनीय है तो उसको पढनेवाले अवश्य ही इस धर्मके पक्षपाती होंवेंगे क्यों कि—आत्माका खास गुण वस्तुके सत्यार्थ स्वरूपकी तरफ ही नियमसे ढलनेवाला है सत्यार्थस्वरूप सबके सामने लाना आपका काम है।

संभव है कि राणीवाले सेठोंकी छायामें रहनेके कारण सहयोगिनी जैनपताकामें इस लेखका खंडन अवश्य छपैगा और छापेके झूंटमूट नुकसान बताकर इसके प्रचारकोंपर बडे २ कुवाक्य लिखे जांयगे और इसके विरुद्ध छापेके विरोधियोंकी कुतर्कोंके खंडनमें भी कोई छापेवाला कम नहीं है—हमने तो दश वर्ष पहिलेसे ही इसके विषयमें एक बडा भारी पोथा बना रक्खा है परन्तु छापेके पक्षपातियोंको

चाहिये कि छापेके विरोधी जो कुछ कहैं धैर्य धारण करके सुनते रहैं क्योंकि इस छापेके मुख्य प्रचारक सेठ हीराचंद नेमचंदजी आनरेरी मॅजिष्ट्रेट सोलापुरने जयपुरके अजुध्यावाले मेलेमेंसे अलीगढवाले पं० प्यारेलालजीके कुवाक्योंसे उत्तेजित होकर आये हुये मुरादाबादी भाइयोंके साथ २ हमको भी उपदेश दिया था कि-ग्रंथ चाहे जितने छपावो विकते चले जांयगे कोई भी भाई तुम्हारे कामका बाधक न तो है और न होगा। यदि दो चार बुद्धिके शत्रु बाधक हों और वे अखवारोंमें खंडन मंडन करें तो तुम चुप रहना एक अक्षर भी उनके विरुद्ध नहीं कहना वा लिखना। यदि कहोगे वा लिखोगे तो परस्पर विरोध बढैगा और तुम्हारे कर्त्तव्यमें हानि होगी यदि चुप रहोगे तो तुम्हारे विरुद्ध बकनेवाले कुतर्की गण '**अतृणे पतितो बह्नि स्वयमेवोपशाम्यति**' की तरह वे सब अपने आप चुप हो जांयगे सो तबसे हम इसी उपदेशानुसार चलते आये हैं और जो जो भाई छापेके पक्षपाती हैं उनको यही उपदेश देते आये हैं और इस समय जितने महाशय छापेके पक्षपाती हैं उन महाशयोंसे साविनय प्रार्थना है कि छापेके विरोधी चाहे जो कुछ अनुचित वा अन्याय वचन कहें लिखें सबको सुनकर चुप हो जाना चाहिये। किसीको एक अक्षरका भी उत्तर नहीं देकर अपना कर्त्तव्य करते जाना चाहिये। अर्थात् प्रमादरहित होकर तन मन धन और परिश्रम लगाकर शुद्धतापूर्वक जिनवाणीमाताका जीर्णोद्धार करते रहें। जहां तक बने एकबार छपे हुये ग्रंथको दूसरी बार न छपाकर नये नये ग्रंथोंके छपानेमें प्रयत्न किया करें।

श्रीजिनवाणी माताका जीर्णोद्धार।
और
सरस्वती भंडार।

(४)

पाठक महाशय! यह तो प्राय: सब ही को स्वीकार है कि-'जब तक जिनवाणी माताका जीर्णोद्धार करके घर घरमें जैनग्रंथोंकी आलमारियें न भरेंगी तब तक जैनधर्म और जैनजातिकी उन्नति कदापि नहिं हो सकती है'' सह

एक कार्डका लोभ न कीजिये !

जिन ग्राहकोंके पास प्रथम अंकसे (३७ वे अंकसे) **जैनहितैषी** बराबर जाता है, जिनोंने न तो जैन हितैषीका कोई अंक ही लौटाया और न एक कार्ड-द्वारा सूचना ही दी कि हमारे पास "**जैनहितैषी मत भेजो**" उन सबको अपने दूसरे नियमके अनुसार पक्के ग्राहक समझकर उनके पास भी **वृंदावनविलास अर्हत्पाशाकेवली** और **मनोरमा उपन्यास** ३३ वें पृष्ठसे पूर्ण तक ४३ वें अंकके साथ जो वर्दीमें १॥) रुपयेके **वी. पी.** में भेजे जांयगे जिसमें इस विद्योन्नति खातेके ।) के टिकट वगैरह खर्च हो जांयगे । इसलिये ऐसे महाशयोंसे हमारी सविनय प्रार्थना है कि जिनको जैनहितैषीका ग्राहक न रहना हो अथात **वी. पी** लेना मंजूर न हो, वे इस सूचनाके पढते ही एक पैसेके कार्डमें जिस नामसे जैनहितैषी जाता हो लिख कर सूचना दे दें जिससे हम उनके नाम **वी पी** भेजकर विद्योन्नति खातेके ।) आने व्यर्थ ही नष्ट नहीं करें ।

भाइयो ! एक पैसेके एक कार्ड भेजनेमें कदापि आलस्य नहीं करें यदि आप आलस्य वा लोभ कर जायगे तो हम **वी. पी.** भेज देंगे जिसके लौट आनेसे ।) आने विद्योन्नति खातेके व्यर्थ ही नष्ट हो जांयगे और रास्तेमें वृंदावनविलासादि खराब हो जांयगे तो इसमें भी हानि होगी सो कृपा करके एक पैसेके कार्डद्वारा सूचना देना कदापि न भूलें ।

दूसरी प्रार्थना यह है कि यदि आप ग्राहक न बनना चाहे तो न सही परन्तु ३७ वे ३८ वे अंकके साथ जो **मनोरमा** उपन्यासके ३२ पृष्ठ आपके पास गये है सो उनके विना हमारा एक ग्रंथ ॥) का । अधूरा हो गया सो कृपा करके वे ३२ पृष्ठ भी आध आनेकी टिकट लगाकर बुक पाकेटद्वारा भेज दीजिये परन्तु पाकेटपर भेजा अमुक ग्राहकने ऐसा अपना पता जरूर २ लिख देवें जो आपके नामसे ३२ पृष्ठ जमा कर लिये जाय ।

आपका—शीघ्रोत्तराभिलाषी दास,

पन्नालाल जैन.—

मालिक—जैनहितैषी कार्यालय,

पो. कालबादेवी (मुंबई)

योगिनी **जैनपताकामें** भी अंक ७ के '**सरस्वती**' शीर्षकवाले लेखमें मुंबईनिवासी एक जिनवाणी भक्तने इसी बातको पुष्ट किया है परंतु उसका कहना इतना ही है कि घरघरमें आलमारियें हस्तलिखित ग्रंथोंसे ही भरकर माताकी सेवा अर्थात् स्वाध्यायका प्रचार बढाना चाहिये–परंतु ऐसी कीसी भी धनाढ्यसे धनाढ्य दानवीर सेठों की भी सामर्थ्य नहीं है कि हस्तलिखित ग्रंथोंसे घरघर आलमारियें भर दें। घरघरकी आलमारियें भरना तो क्या अपने घरमें भी सौ पचास ग्रंथसंग्रह नहीं कर सक्ते। दूसरे जिनवाणी भक्तका यह भी कहना प्रमाद और कपट है कि "जगहं २ पर सरस्वतीभंडारोंमें इतने ग्रंथ हैं कि जिनके पढनेवाले तो क्या उनको खोलकर बांधनेवाले व रक्षा करनेवाले भी दृष्टिगोचर नहीं पड़ते" परंतु महाशयजी! ऐसे भंडार पांच पचीस शहरोंके मंदिरोंमें ही होंगे किंतु हजारों कसबे और गांव ऐसे हैं कि जहां सिवाय पूजन पाठकी दो एक पोथीके ग्रंथोंका नाम भी नहीं और सैंकडों गांव ऐसे भी हैं कि जहां दोदो चार २ घर जैनीभाइयोंके हैं और सरस्वतीभंडार तो क्या दर्शन करनेके लिये चैत्यालय तक नहीं हैं। किन्तु शहरोंमें बहुतसे ग्रंथ हैं वे शहर ऐसे हैं कि जहांके भाई न तो स्वयं ही स्वाध्याय करते हैं और न कसबे और गांववालोंको स्वाध्यायके लिये कोई ग्रंथ ही निकालकर देतें हैं। कसबे और गांववाले भाइयोंकी इतनी ताकत नहीं है कि दोचार ग्रंथ भी हाथके लिखे मंगा सकें। खेद तो यह है कि हाथके लिखे ग्रंथोंकी प्राप्तिका उपाय भी तो कहीं पर ऐसा नहीं है कि जहांसे लिखा २ कर मंगालिये जावें ऐसी अवस्थामें सिवाय छपी हुई जिनवाणीमाताका आश्रय किये विना किसीका भी कल्याण नहीं हो सक्ता। हमको तीन वर्षके अनुभवसे निश्चय हो गया है कि–इस समय जगहं २ के भाइयोंको स्वाध्याय करनेके लिये ग्रंथोंकी इतनी आवश्यकता है कि यदि कई धनाढ्य महाशय पांचसात लाख रूपये लगाकर दश वर्षमें पचीस लाख ग्रंथ तैयार कर दें तो वे सबके सब बिक जांय। गतवर्ष हमने भाषा टीका सहित १००० प्रति भक्तामर स्तोत्रकी छपाई थी ५ महिनेमें सबकी सब विक गई अब फिरसे २००० प्रति हमको छपानापडी। **भाषापूजासंग्रह** गतवर्ष सावन सुदी १ को तैयार हुई थी भादो सुदी ५ तक ६५० के करीब बिक गई। इसीप्रकार **तत्त्वार्थसूत्रकी बालावबोधिनी** टीकाकी १००० प्रति भी सावन सुदीमें तैयार हुई थीं वह भी करीब ६०० के भादों सुदी तकमें विकगई अब शीघ्र ही उक्त दोनों ग्रंथ छपाकर आषाढ मास तक हमको

तैयार करने पडैगे। इसीप्रकार मोक्षमार्गप्रकाशजी आत्मानुशासनजी पद्मपुराणजी अर्थप्रकाश वगेरह बडे बडे ग्रंथ छपे थे सो अब मिलने दुर्लभ हो गये। यदि सरस्वती भंडारोंमें हस्तलिखित ग्रंथ होते और गांवके भाइयोंको स्वाध्यायार्थ मिलते तो इसप्रकार छपे हुये हजारों ग्रंथ नहीं विकते। हाल तो हमारा विज्ञापन केवल मात्र एक हजार भाइयोंके पास ही जैनमित्र वा जैनहितैषी द्वारा जाता है यदि गांव गांवमें इस्तहार पहुंचानेका साधन होता तो ग्रंथोंकी इतनी फरमायसें आतीं कि उनकी तामील ग्रंथ छपानेवाले कदापि नहीं कर सकते।

पाठकमहाशय! संवत १९५१ या ५२ की साल महासभा मथुराके समय अलिगढनिवासी पंडित वर्य छेदीलालजी साहब शोलापुर निवासी शेठ हीराचंद नेमचंदजीको एकदिन यही बात समझा रहे थे कि हस्तलिखित ग्रंथ बहुत हैं और कोई लिखाकर मंगाना चाहैं तो हम अलीगढसे लिखवा २ कर भेज सकते हैं यह बात हम भी चुप चाप सुन रहे थे। मेलेसे मुरादाबाद जाते ही जैनहितैषीमें एक इस्तहार छपा दिया कि हमने हस्तलिखित ग्रंथ लिखा २ कर भेजनेका प्रबंध किया है जिनको जो ग्रंथ चाहिये हमसे पत्रव्यवहार करें तो एक ही हफतेमें दशबारह हजार रुपयोंके ग्रंथोंकी लिखा २ कर भेजनेकी और लिखाईके रुपये पहले मगालेनेकी चिट्ठिये आगई। मुरादाबादमें उस समय हमारे पास सिर्फ दो लेखक थे। लेखकोंके लिये भी इस्तहार दिया तो कटूमरके एक मात्र प्यारेलाल ब्यारके और कहींसे भी कोई नहीं आया वह भी ४ दिन रह कर चला गया। लाचार हमने वे सब फरमायसें उक्त पंडितजीके पास अलीगढ भेजकर प्रार्थना किथी कि आपने मथुराके मेलेमें ग्रंथ लिखा लिखाकर भाइयोंकी इच्छा पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा किथी थी सो वह प्रतिज्ञा वास्तव में सच्ची थी तो इन भाइयोंसे रुपये मगा २ कर इनकी इच्छा पूर्ण कीजिये नहीं तो स्वीकार कीजिये कि ग्रंथोंकी बडी भारी आवश्यकता है यह प्रार्थना और फरमायसें हमने रजिष्टरी कराकर भेजी थी उसके पश्चात् कई चिट्ठियें दी गईं परंतु कुछ भी जबाब नहीं आया। वे तो क्या महासभाका सरस्वती भंडार भी कुछ नहीं कर सका इसलिये "सरस्वती भंडारोंमें ग्रंथ बहुत हैं छपानेकी कोई जरूरत नहीं है" ऐसा कहना सर्वथा प्रमाद और कपट मात्र है। यदि बंबईके लेखक जिनवाणी भक्तजी अथवा छपे ग्रंथोंके कट्टर विरोधी राणीवाले सेठ और अलीगढवाले विद्वच्छिरोमणि पं प्यारेलालजी साहब लिखे ग्रंथोंके पहुंचानेका प्रबंध कर सके

तो एक हमारे पास स्वीकार पत्र भेजें हम उसको छापकर भाइयोंको प्रकाशित कर देंगे कि–जिनको हस्तलिखित ग्रंथ चाहिये इनसे लिखाकर मगा लिया करें। जहांतक हमारा अनुभव है हम कह सकते हैं कि राणीवाले सेठ सरीखे हजार सेठ एकत्र होकर पांचहजार लेखक भी यदि बिठावें तो भी छपे ग्रंथोंकी बराबरी कदापि नहीं कर सकते और न छापेके ग्रंथोंका प्रचार जो अहोरात्र बढता जाता है रोक सकते हैं। छापेमें वह सकती है कि यदि कोई महाशय रुपया लगाना चाहैं तो २५००० श्लोकवाले पद्मपुराणजी सरीखे ग्रंथकी तीन महिनेमें २५००० प्रतियें तैयार करकें दो दो रुपयेमें २५००० भाइयोंके पास पहुंचा सकते हैं और हस्तलिखित पद्मपुराणकी २५००० प्रति राणीवाले सेठों सरीखे सेठोंके सात पीढी तकके पुरखा उतर आवैं तौ भी पचीस वर्षमें तैयार नहीं करा सकते। सारांश यह है कि–अब वह द्रव्य क्षेत्र काल भाव नहीं रहे कि छपे ग्रंथोंके प्रचारको रोककर हस्तलिखित ग्रंथोंसे ही जैनधर्म और जैन जातिकी उन्नति कर सकें। अब तो वह समय है कि किंचिन्मात्र उपचार विनयकी हानिके वहाने मूल विनयका घात नहीं करकें जिसप्रकार बनैं जितने जैनग्रंथ प्राप्त हों सबको टीका टिप्पणी आदिसे संशोधनपूर्वक छपा छपाकर प्रचार करें। इसके विरुद्ध लेख देकर व्यर्थ ही विरोध खड़ा नहीं करें।

विना टके पैसेके सैंकड़ों शास्त्रोंका दान।

अथवा

हलदी लगै न फिटकरी रंग चोखो ही आवै।

अर्थात्

सरस्वतीमाताके जीर्णोद्धार करनेका एक सहज उपाय।

पाठक महाशयो! महासभावालोंनें तौ अधिवेशनपर भंडारोंमें गल सडकर नष्ट होने वाली समस्त धर्मकार्योंकी जडस्वरूप पतितपावनी प्राणीमात्रको हितोपदेश देनेवाली श्रीमती जिनवाणीमातापर कुछ भी दया नहीं कियी। हमको ऐसी आशा

नहीं थी कि ऐसे अपूर्व समूह सोने और सुगंधके संयोगमें भी जिनधर्मकी मूल जिनवाणीमाताके जीर्णोद्धारके लिये समीचीन प्रबंध नहिं होगा। न मालूम हमारे नेतागणोंने इस जिनवाणी माताके उद्धारकी ओर क्यों उपेक्षा (उदाशीनता) धारण कर रक्खी है। क्या रथयात्रा, मंदिरप्रतिष्ठा, पूजन प्रभावना, जीर्णजिनमंदिरोंका उद्धार, सभा पाठशाला स्थापन करने, वोर्डिङ् खोलने वगेरहमें जो पुण्य संचय समझते हैं क्या इन समस्त धर्मकार्योंकी पोषण करनेवाली भंडारोंमें गल सडकर नष्ट होनेवाली अपनी माताके उद्धार करनेमें पुण्य नहीं समझते? खेद है कि हमारे धनाढ्य धर्मात्मा गण अथवा अग्रनेता गण इसका कुछ भी विचार नहीं करते। न करो न सही परंतु याद रखियेगा कि जबतक जिनवाणी माताके प्राचीन पवित्र ग्रंथोंका जीर्णोद्धार करके रक्षा न करेंगे और इसीप्रकार अविनय करके भंडारोंमें सडाते रहैंगे तो आपका कोई भी काम पूरा नहीं होगा और न आप लोग धन संपदादिकसे सुखी होओगे क्योंकि सामर्थ्य रहते भी देवगुरुशास्त्रका अविनय करना बडा पाप है। दूसरे आपके जितने सांसारिक वा पारमार्थिक कार्य हैं उन सबके सिद्ध होनेका भी मूल कारण एक मात्र जिनवाणी माता ही है। समस्त धर्मकार्योंके इस मूल कारण का घात करकें कार्य करना चाहोगे तो कदापि वह सिद्ध नहिं हो सकैगा। जिस दिन महासभा स्थापन हुई थी उस दिनसे यदि जिनवाणी माताका जीर्णोद्धार करके नाना प्रकारके उपयोगी तथा इस्कूली ग्रंथोंका मुद्रण कराया जाता तो आज कई कालेज व पाठशालायें खुल जातीं परंतु खेद और शोक है कि—नगारेकी आवाजोंमें तुतीकी कोई नहिं सुनता।

पाठक महाशयो! अब इन अग्रनेता और हिताहितज्ञानरहित दानी मानी धनाढ्योंकी परवाह न करकें आइये! हम सब मिलकें कोई सहज उपाय निकालें और थोडा थोडा साहस करकें जिनवाणी माताका जीर्णोद्धार करना प्रारंभ करैं। वह उपाय हमने पहिले भी विचार करकें एकबार जैनहितैषीमें प्रकाशित किया था परंतु दो एक भाइयोंके सिवाय इस उपायकी ओर किसीका भी ध्यान नहीं गया और हमको भी इतना सावकाश नहीं मिला जो इसका पुनः पुनः आंदोलन करते। अब हमको अवसर मिला है अर्थात् आजतक हमको जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालयकी सुधारणाके लिये अतिशय परिश्रम करना पडा था अब जिन वाणी माताकी भक्तिके प्रभावसे हमारा परिश्रम सफल होने लगा है। दिनोदिन

इसकी उन्नति होती जाती है इसके सहायक भी कई विद्वान् हो गये हैं अब इस कार्यालयसे हमको विशेष संबंध नहीं है। इसकारण हमने अब एक मात्र जिनवाणीमाताकी सेवाके लिये इस जैनहितैषी पत्रको जारी करके जैनहितैषी कार्यालको धर्मार्थ पृथक् स्थापन किया है, इसके ग्राहकोंको जो अमूल्य ग्रंथ उपहारमें भेजे जाते हैं उनमें तथा इस कार्यालयसे प्रकाशित हुये अन्य ग्रंथोंके विक्रय वगेरहमें जो कुछ वार्षिक लाभ होगा वह क्लार्क वगेरहकी तनखा वगैहरका खर्च जाकर जिनवाणी माताके जीर्णोद्धार अथवा विद्योन्नतिके लिये जिन धर्मसंबंधी विद्या पढनेवाले विद्यार्थियोंको मासिक पारितोषिक (स्कॉलेरसिप) देने वगेरहमें खर्च किया जायगा, और नुकसान होगा तो जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालयके इस्तहार सूचीपत्र वगेरह जो बांटे वा छापे जाते हैं उनके बदलेमें जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालयको पूरा करना पडैगा परंतु जहांतक हमको अनुभव है यदि जैनगजट सरीखे देवता इस कार्यको क्षति पहुंचानेवाले प्रगट न होंगे तो संभव है कि, अमूल्य २ ग्रंथ उपहारमें लुटानेपर भी इस कार्यमें घाटा नहीं पडैगा। इस कारण दूसरा कार्य अर्थात् विना टका पैसेके सैंकडों शास्त्रदान करनेका कार्य भी इसी कार्यालयसे संपादन करनेका प्रबंध किया है। आशा है कि जो धर्मात्मा भाई जिनवाणीमाताके जीर्णोद्धार करके विस्तार करनेमें पुण्य समझते हैं वे इस कार्यके अवश्य ही सहायक होंगे।

अब हम **विना टका पैसेके सैंकडों शास्त्रोंका दान** अथवा **हर्दी लगै न फिटकरी रंग चोखो ही आवै** शीर्षकके कार्यका विधान बताते हैं।

जिसप्रकार आपलोग विवाह सादी वगेरहके उत्सवमें अथवा अपने किसी कुटुंबीके मरने वगेरहके समयपर धर्मार्थ कुछ द्रव्य मंदिरजी तथा पाठशाला वगेरहके लिये अलग कर देते हैं उसीप्रकार कमसे कम ५०) रुपये और अधिकसे अधिक हजार दो हजार जितनी आपकी इच्छा हो एक रकम अलग कीजिये अथवा व्यापारमें जिसप्रकार हजारों रुपये रोकते हैं अथवा थोडेसे लाभके लिये हजारों रुपये आढतियोंको उधार देते हैं उसीप्रकार जिणवाणीमाताके जीर्णोद्धारार्थ तथा विना टका पैसेके सैंकडों शास्त्र दान करनेके लिये भी कुछ रकम पृथक् निकालिये और वह रकम आधी २ करके दो बारमें हमारे पास भेजिये। हम जैन हितैषीकार्यालयमें आपके नामसे खाता लगाकर बतौर व्याजू रुपयोंके जमा कर लेंगे और जितनी रकम भेजेंगे उतनेमें कोई एक प्राचीन ग्रंथका संशोधन वा

भाषानुवाद कराकें आपकी तरफसे १००० प्रति छपा लेगें। उनमेंसे २०० प्रति आपके रुपयोंके व्याजके पलटेमें उसी वक्त आपके पास भेज देंगे सो आप असमर्थ भाइयों पढी हुई स्त्रियों तथा विद्यार्थियोंको अथवा २०० मंदिरोंमें वह ग्रंथ विना मूल्य भेज देवें। अब रही आठसे प्रति सो उसको हम उचित मूल्य में ६ महीने वा एकवर्षमें बेचकर आपने जो रकम लगाई थी वह उठाकर उस पुस्तकके खातेमें जमाकरकें बराबर कर दिया जायगा। इन आठसैं पुस्तकोंके बेचनेके लिये विज्ञापन वगेरह छपाने वगेरहमें जो कुछ खर्च पडैगा वा घाटा वा नफा रहैगा वह जैनहितैषी कार्यालयको रहैगा। जिस समय आपकी लगाई हुई रकम उन पुस्तकोंकी बिक्रीसे उठ आवेगी उस समय फिर कोई दूसरा ग्रंथ छपाकर तैयार कर दिया जायगा। उसकी भी २०० प्रति आपको दान करनेके लिये भेज दी जांयगी। इसीप्रकार प्रत्येक छमाही अथवा वडी पुस्तक हुई तो प्रत्येक वर्षमें दोसौ प्रति विना टके पैसेके आप दान कर सकते हैं और आपकी रकम वैसीकी वैसी पुस्तकोंमे लगी रहैगी। यदि आपको दो चार वर्ष ही यह दानकार्य चलाकर अपनी रकम वापिस लेना हो तो आपकी तरफसे छपी हुई पुस्तकोंको बेच २ कर वह रकम आपकी भेज दी जायगी और आपका शास्त्रदान खाता बंद कर दिया जायगा। यदि आप कमसेकम ५०) रुपये भेजेंगे तो इतने रुपयोंमें ३२ या ३६ पृष्ठकी कोई पुस्तक १००० प्रति छप सकती है। इसी हिसाबसे जो महाशय पांचसातसौ रुपये लगाकर बडी पुस्तक छपावेंगे तो खर्च पडैगा परन्तु पुस्तक वही छपाई जायगी जिसका छपाना हम उचित समझेंगे रुपया लगानेवाले भाइयोंकी इच्छानुसार कोई भी पुस्तक नहीं छपाई जायगी क्योंकि रुपया लगानेवाले भाई यह नहिं समझ सकते कि— किस पुस्तकके छपानेसे जातिधर्मको विशेष लाभ होगा और कौनसी पुस्तकमें रुपये लगानेसे शीघ्र ही उसके रुपये हाथमें आ जांयगे। इसकारण पुस्तकोंका निर्वाचन करना हमारी ही इच्छापर निर्भर रहैगा। दूसरे जो दो सौ प्रति हम विना टके पैसे बांटनेके लिये भेजेंगे उनको रकम लगानेवाले महाशय बेच नहीं सकेंगे अगर एक भी प्रति बेचैंगे तो उसका मूल्य।) रुपया कमीसन बाद देकर उनकी असल रकमके खातेमें नावें मांड दिया जायगा। इसप्रकार जिन भाइयोंको विनाटका पैसेके प्रतिवर्ष दो सौ वा चार सौ शास्त्र अगर ५००) रुपये लगाकर सौसौ रुपयोंके पांच ग्रंथ छपावैं तो एक ही वर्षमें पांच प्रकारके एक

हजार ग्रंथ विना टका पैसेके दान कर सकते हैं। सो जिन २ धर्मात्मा भाईयोंको हमारा पूर्णतया विश्वास हो और इसप्रकारसे जिनवाणी माताके जीर्णोद्धार करके सैंकडों शास्त्र दान करनेका पुण्य वा यश लूटना हो, व शीघ्र ही हमसे पत्र-व्यवहार करके जितने रुपयोंका ग्रंथ छपाना हो कागजोंके लिये आधारुपये पहिले भेजनेका प्रबंध करैं और आधे रुपये ग्रंथ छपकर तैयार होनेपर भेजना स्वीकार करें। यदि कोई महाशय आधे रुपये ही भेजकर ग्रंथ तैयार होनेपर शेषके रुपये नहीं भेजेंगे तो वह ग्रंथ लागतके भावपर किसी दूसरेको बेच दिया जायगा और पहिलेके भेजे हुये रुपये उस ग्रंथके कुल विक जानेपर वा बीच २ में जिस २ प्रकार उस ग्रंथके खरीदनेवालेको देनेका सुभीता होगा उसी प्रकारसे रुपया भेजा जायगा और दानके लिये उन्हे एक भी प्रति नहीं दी जायगी।

इसप्रकारसे यदि धर्मात्मा जिनवाणीमाताके भक्त अपनी २ शक्तिके अनुसार छोटे मोटे ग्रंथोंका जीर्णोद्धार कराकर अपना द्रव्य सफल करैंगे तो हम प्रतिवर्ष छोटे छोटे २५-३० या बडे बडे १०-१२ ग्रंथ छपा २ कर जीर्णोद्धार करा देंगे। हमारे हाथमें इस समय कई विद्वान हैं उनसे यही काम लिया जायगा। हम स्वयं भी यथाशक्ति परिश्रम करनेपर कटिबद्ध हैं। इसप्रकार करनेसे भाइयोंको भी पुण्य संचयके सिवाय विमल यशकी प्राप्ति होगी क्योंकि जिनके द्रव्यसे जो ग्रंथ छपैगा उसपर उनका नाम जीर्णोद्धार करानेवालोंमें छपाया जायगा और दोसौ प्रतियोंमें भी दान देनेवालोंका नाम छपा दिया जायगा। जैनहितैषीमें भी उनकी सच्ची दानवीरता प्रगट की जायगी। वास्तवमें जो महाशय इस पतितपावनी जिनवाणी माताके जीर्णोद्धारमें अपना धन लगावैंगे उन्हींको सच्चा दानवीर समझना चाहिये क्योंकि वे ही जिनधर्म और जैनजातिरूपी वृक्षकी जडमें जल सिंचन करके सचा हित करनेवाले सच्चे हितैषी होंगे।

पत्रव्यवहार करनेका पता— जैनसमाजका हितैषीदास।

पन्नालाल जैन

पोष्ट—कालबादेवी, मुंबई.

सूचना—हमारे गजपंथा तीर्थकी यात्रा जाने और प्रेसमें प्लेगके कारण आदमी न होनेके कारण इस अंकमें विलंब हो गया सो ग्राहक महाशय क्षमा करें।

मनोविनोद।

(११)

ऊंट और गधेकी परस्पर सहानुभूति।

' अहोरूपमहोधुनिः '

नवीन हितोपदेशसे उद्धृत।

चौपई।

पाठक ! एक सुनाऊं बात। जिसको सुन प्रफुल्ल हो गात॥
एक ऊंटकी सजी बरात। हुई बराती गधा जमात॥ १॥
बनके बना चला जब ऊंट। पडी धूम तब चारों खूंट॥
एक गधेने किया कलाम। आगे बढके किया सलाम॥ २॥
धन्य धन्य क्या सुंदर रूप। तुमसे तुम हो उष्ट्र अनूप॥
तुमसा दूल्हा रूपनिधान। आंखों देखा सुना न कान॥ ३॥
ऊंटराज सुन हुये प्रसन्न। बोले हे गर्दभ ! व्युत्पन्न॥
जरा और आवो आसन्न। बात कही तुमने प्रतिपन्न॥ ४॥
तुम हो बडे बुद्धि अवदात। इससे बडी तुम्हारी बात॥
जो होते हैं बडे सुजान। करें बडे की वे पहचान॥ ५॥
जैसे तुम हो गर्दभ ज्ञानी। कोई नहीं तुम्हारे सानी॥
जैसी ही कोमल है बानी। सुन कौवेकी मरती नानी॥ ६॥
जलते हैं कितने ही सुनके। कर मलते रहते शिर धुनके॥
यह सब दया कर्मने की है। प्रभुता हमें तुम्हें जो दी है॥ ७॥
बडे भागसे साथ तुम्हारा। हुआ हमें और तुम्हे हमारा॥
इतना कह गर्दन मटकाई। धीरें धीरें पूंछ हिलाई॥ ८॥
बल बल करकें जीभ निकाली। तब गर्दभजी बने बहाली॥
रें पूं करकें रेंके ऐसे। नरसिंहा बजता हो जैसे॥ ९॥
आपसमें सुन आप बडाई। दोनोंने मिल धूल उडाई॥
मीर मिले जैसेको तैसे। जैसी रूह फरिस्ते वैसे॥ १०॥

(१२)

दमोहमें एक शेठ औरभक्त खापर्डे साहबका वार्त्तालाप।

सेठ—(हाथ जोडकर बडी भक्तिसे) महाशयजी! आप यदि कुंडलपुर न पधारें तो बडी कृपा हो। हमारी प्रार्थना है कि–आप यहांसे वापिस चले जांय अथवा मुझे आज्ञा दीजिये जो मैं वापिस चला जाऊं?

खापर्डे साहाब—मैं बहुतसा खर्च उठाकर आप लोगोंकी महासभा देखनेके लिये आया हूं सो अवश्य जाऊंगा मेरे जानेपर यदि आपकी मर्जी कुंडलपुर जानेकी न हो तो आप चाहे वापिस चले जाइये। अफसोस आपसे तो आपकी लडकी ही अच्छी समझती है।

---

(१३)

डरपोंक सेठों और खुशामदी टट्टुओंका वार्तालाप।

डरपोंकसेठ—क्यों साहब हमने सुना है कि–खापर्डे साहब भी यहां आवेंगे?

खुशामदी टट्टु—हां हरदेके भाइयोंके तथा कुछ यहांके भाइयोंके आग्रहसे यहां आनेवाले हैं! साथमें डाक्टर मुंजे भी हैं।

डरपोंक सेठ—तब तो हम लोगोंकी बडी फजीती होगी क्योंकि–वे तो वहां स्वदेशी ग्रहण विदेशी वहिष्कारके लिये आंदोलन करेंगे और हमारे जैनीभाइयोंको भी स्वदेशी वस्तुओंके भक्त बना देंगे तो यहांके अंगरेज हाकिम हम लोगोंसे रुष्ट हो जांयगे वे समझेंगे कि इन्ही लोगोंने खापर्डे साहबको बुलाकर यह आग लगादी है।

खुशा०—इसमें क्या शक है!

डरपोंक सेठ—तो कोई ऐसा उपाय शोचना चाहिये जिससे खापर्डे साहब दमोहमें आवें ही नहीं।

खुशा०—अच्छा तो हमने एक उपाय ढूंढ निकाला है।

डरपोक सेठ—बताओ क्या करना चाहिये!

खुशा०—चीफ कमीशनर साहब इस समय दौरेमें हैं उनके लिये एक स्पेशलट्रेन इष्टेसनपर खडी है तथा दो मोटरकार भी आई हैं मोटरकार चलानेके लिये कुंडलपुर तरफकी सडक भी सुधर रही है सो खापर्डे और मुंजे साहबको कैद करके सीधे मंडाले ले जानेके लिये ही है ऐसी हवा उडा दो और एक आदमी जाकर उन्हें यह बात समझा दें जिससे वे भयकेमारे यहां आवैं ही नहीं।

डरपोक सेठ—वाह! वाह! क्या कहना है इसीको तो वकीलीबुद्धि कहते हैं। बस अब यही उपाय करना चाहिये और किसी आदमीको भेजना चाहिये।

खुशा०—अच्छा तो लो मैं उनको डरानेके लिये एक पत्र लिख देता हूं सो एक आदमीको भेजकर वह पत्र हरदामें उनके पास पहुंचा देना चाहिये।

खुशा०—लो सबसे पहिले है यही कार्रवाई करता हूं।

रिशप्सन कमेटीके मुखियासे किसी एक सेठका वार्त्तालाप।

एक सेठ—सेठ साहब! यहां तो बडा भारी गजब हो गया। दमोहमें खापर्डे साहब और मुंजेसाहब आये हुये हैं वे कल यहां जाकर स्वदेशी ग्रहण विदेशी बहिष्कारकी अग्नि जैनसमाजमें लगावैंगे तब तो हम लोगोंपर बडी भारी आफत आवैगी–अब आपको चाहिये कि खापर्डे वगेरह मेलेमें ही न आने पावैं यदि आवें तो ऐसा न हो कि कोई भी वालंटियर (स्वयंसेवक) उन्हे बुलाकर महासभामें ले आवे–यदि ऐसा प्रबंध आप नहि कर सकै तो साफ २ कहिये जो हम वापिस चले जांय हम ऐसी खतरनाहक महासभामें कदापि नहि रहैंगे।

मुखिया! अजी आप डरिये नहीं यहांके वालंटियर ऐसे नही हैं जो हमारी आज्ञाके विरुद्ध एक तिनका भी तोड सकैं और क्या मजाल है जो खापर्डे साहब मेलेमें डेरा लगा सकै और महासभामें आ सकै?

सेठ—तो खापर्डेको हाथीपर बिठाकर स्टेशनसे लाने वगैरहका जुलूस किसने किया था ?

मुखिया—हाथीपर बिठाकर लानेवाले शहरके भिन्नधर्मी थे, हमारा वालंटियर उनमें एक भी नहीं था हमने तो वह बंदोवस्त किया है कि कोई खापर्डे साहबसे मिलनेको जानेके लिये खापर्डे साहबका डेरा पूछे तो कोई भी वालंटियर नहीं बतावैगा।

सेठ—तब तो आपको सरकारसे एक और भी खिताब मिलैगा।

---

(१५)

एक ८० वर्षके बुड्ढेका वाल्यविवाहपर दिये हुये उपदेशका गूढाभिप्राय।

(एक १२ वर्षके लडकेको दिखाकर) देखो ! इस ८ वर्षके लडकेका विवाह हो गया है भला बताइये तो सही यह क्या कर सकता है ? इसीसे ही हमारी जैनजातीका सत्यानाश होगया। इसप्रकार यदि छोटी २ उमरमें लडके लडकियोंका विवाह हो जाया करैगा तो हम सरीखे साठ सत्तर वर्षके बुड्ढोंको विवाह करनेके लिये १३-१४ वर्षकी लडकी कहांसे मिलैगी ? अभी हालमें शोलापुर प्रांतमें एक हमारे जातिभाई बुड्ढसेठकी सेठानी मरगई है उनको जरूर विवाह करना है बहुत कुछ खटपट और हजारों रुपये देनेपर बडी मुसकिलसे एक १३ वर्षकी लडकी मिली है। तथा इसीप्रकार हमारे बडे भाईको जब वृद्धावस्थामें विवाह करना करना पडा था तो हमारी जातिमें कहीं भी बडी लडकी नहीं मिली तो लाचार हो कर हमको दस्साकी लडकीसे विवाह करना पडा जिससे बरसों तक हमें जातिवालोंने जातिच्युत कर दिया था तथा और भी एक ताजा उदाहरण सुनिये ! हमने भी दूसरा विवाह करते समय बहुत खटपट किया था दश हजार रुपये देने करकें इधर उधर दलाल दौडाये थे परंतु कहीं भी बडी लडकी नहीं मिली लाचार हमने फिर अपनी सलहेजसे विवाह किया है अर्थात् जिस लडकीसे हमारे सालेकी सगाई हुई थी उस सालेको तो कुंवारा ही रखना पडा और उसकी स्त्रीसे हमको विवाह करना पडा। सालेके साथ इस अन्यायके करनेका कारण यह है कि इसमें हमको बहुत थोडा रुपया देना पडा दूसरे वह

पहिली—वाह मैने तो गिरनारजीसे बंबईतक इसप्रकार खुले मुह किसी-भी विधवाको नहीं देखा। हां बहन बेटी वा कुंवारी छोरीकी बात न्यारी है।

दुसरी—तो यह भी यहां किसीकी बहू नहीं है, इसके भी यहां पर जितने हैं सब पिता भ्राता भतीजेकी समान हैं।

जिनवाणीमाताके समाचार।

अष्टसहस्री—बृहत् टिप्पणी सहित छपानेके लिये मोरेनामें प्रेसकापी तैयार हो रही है आधा ग्रंथ तैयार होते ही छपना प्रारंभ होजायगा।

बडा रत्नकरंड श्रावकाचार—दो तिहाई छप गया है एक तिहाई बाकी है सो जेठ सुदी १५ तक तैयार हो जाना संभव है।

अमितगतिश्रावकाचार—इसकी सरल व विस्तृत वचनिका बन रही है शीघ्र ही जैनग्रंथरत्नाकरकार्यलयकी तरफसे छपनेवाला है।

सागरधर्मामृत—(श्रावकाचार) यह ग्रन्थ मराठी भाषानुवाद सहित कोल्हापुरमें छप गया था अब यह हिन्दी भाषानुवाद सहित तैयार होगया है। यह भी शीघ्र ही छपकर तैयार होनेवावाला है।

नाटकसमयसार—पं. जयचंद्रजीकृत वचनिका सहित कोल्हापुरमें कारंजेके एक भाईने छपाया है परंतु मूल्य वगैरह अभीतक नियत नहीं हुआ है।

प्रद्युम्नपुराण—इस ग्रन्थका नवीन सुंदर भाषानुवाद हो रहा है यह भी जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालयकी तरफसे शीघ्र ही छपैगा।

लोकलसमाचार।

धर्मशास्त्रकी पढाई—मुंबईके दानवीर सेठजीकी जैन बोर्डिंग स्कूलमें वर्ष भरमें २॥ दिन अर्थात् ६० घंटे धर्मशास्त्रकी शिक्षा अंगरजी पढनेवाले विद्यार्थियोंको दी जानेका नियम है परन्तु जो पहिला टर्म जनवरीसे सुरू होता है उसमें प्रत्येक विद्यार्थीको कमसे कम ३० घंटे धर्मशास्त्र पढना चाहिये। इस टर्मकी हाजिरीका तकता देखनेसे मालूम हुवा कि विद्यार्थियोंकी औसद दर्जे १७ तथा १८ घंटे हाजिरी हुई है। अगला टर्म इससे भी छोटा अर्थात् सवा दो

या ढाई महिनेका ही होता है उसमें भी बहुतसे बहुत औसद दर्जे हाजरी १२ घंटेकी रहैगी ऐसा अध्यापक महाशयसे मालूम हुआ तव तो समझना चाहिये कि साल भरके ३६५ दिनोंमेंसे धर्मशास्त्रकी पढाई कुल १। दिन या ३० घंटे ही होती है। कहिये इतनी पढाईके लिये जैनबोर्डिंग हाउस खोलनेका उद्देश जो अंगेरजी पढोंको धर्मशास्त्रकी क्षिशा देने और उनके घृणित आचरण सुधारनेका है वह किसप्रकार सिद्ध हो सक्ता है? क्या जैन बोर्डिंगोंके स्थापक वा प्रबंध कर्त्ता महाशय इसका कुछ उत्तर देकर हमारा समाधान करैंगे?

सम्मेदशिखरजीके लिये लोकलसभा—ता. ९ अपरेल रात्रिको आठ बजे दानवीर सेठ माणिकचंद हीराचंदजी **जे. पी.** के हीराबागमें इसका अधिवेसन हुआ था अनेक विद्वानोंके व्याख्यानोंके पश्चात् दो प्रस्ताव पास हुये एक तो यह कि बंबईसे १०० आदमी सम्मेदशिखरजीकी रक्षार्थ जान देने तकको तैयार हो ऐसे भेजने चाहिये उनका खर्च बंबईके जैनी पंच देगें परंतु खेद है कि तीर्थक्षेत्रकमेटीके मंत्री दानवीर सेठजीने तीर्थक्षेत्र कमेटीके पौनेतीन लाखके चंदेमेंसे एक भाईका खर्च भी देना स्वीकार नहीं किया जबाब दिया गया कि तीर्थक्षेत्र कमेटीमेंसे खर्च करनेका मुझ अकेलेको अधिकार नहीं है परंतु एक भाईने इसका विरोध किया कि सम्मेदसिखरजीके लिये एक अर्जी लिखाने मात्रके लिये एक हजार रुपये किसी बारिष्टरको दे दिये गये उनके लिये किस २ से सम्मति लीगई। परंतु कुछ भी संतोषदायक उत्तर नहीं मिला। दूसरा प्रस्ताव यह हुआ कि लाट साहबको तार दिया जाय कि–यह सभा आपके इस अन्यायस्वरूप हुकुमको कदापि नहीं मान सकती इसका उचित उपाय किया जायगा परंतु खाली प्रस्ताव २ मात्र ही हुये वा इन प्रस्ताओंके अनुसार कार्रवाई भी होगी इसमें सन्देह है।

बंबईका संस्कृत विद्यालय—फाल्गुन सुदी १ बंद से है कारण इसके अध्यापकजी खूब बीमार होकर छुट्टी पर देशको चले गये संभव है कि वैशाख सुदी २ को अध्यापकजीके आने पर प्रारंभ होगा। विवाह प्लेगके कारण दो विद्यार्थी बाहर चले गये। खेद है कि ४ विद्यार्थियोंके लिये १२५) व्यर्थ ही खर्च किये जाते हैं। महाविद्यालयकी तरह इसको भी काशी पाठशालामें मिला दिया जाय तो १२५) रुपयोंमें २० विद्यार्थी बंबई सभासे स्कालरसिप पाकर पढ़ सकते हैं।

विविधसमाचार।

श्वेतांबरकानफरेंस अबकी बार भावनगरमें बडी धूमधामके साथ होगई प्रास्तव भी जातिसुधार और धर्मोन्नतिके लिये उत्तमोत्तम पास होगये समझदार उदार भाइयोंने करीब १॥ लाख रुपयोंके पाठशाला लाईब्रेरी ग्रंथो द्धार वगेरह विद्योन्नतिके कार्योंमें चंदा दिया। न मालूम हामारे दिगम्बरी भाई कब विद्योन्नतिकी ओर झुकेंगे। खेद है कि तीर्थराज सम्मेदशिखरजीकी रक्षार्थ स्वेताम्बरी भाइयोंने भी कोई समीचीन उपाययोजना नहिं कियी।

मध्यप्रदेश छिंदवाडाके पंडित रिखबदासजी जैनशास्त्रीके पुलिसके डिपुटी इन्सपेक्टर मिष्टर ह्लेफेयर पर ४४०) रुपयेकी मानहानिकी दीवानी नालिस कियी है नालिस इसलिये की है। गत १ जनवरीको उक्त पंडितजी सेठ सुखलालजीकी दुकानपर बैठे थे ह्लेफेयरसाहब उधरसे होकर जाते थे। प० रिखबदासजीने उठकर उनको सलाम नहीं किया। इसपर साहबने कहा " बद्जाट + + + बद् मास है साहबलोग निकल्टा है उनको सलाम नहीं करटा " और एक बेत पंडितजीके मारदी। साहबने इस नालिसके उत्तरमें कहा है कि मैंने सिर्फ "अरे बदजात तुम साहब लोकको देककर खडा नहिं होता " कहा सो भी गालीके ख्यालसे नहीं कहा और धीरेसे भद्रतापूर्वक एक बेत मुद्दईके बांये हाथपर छुला दिया। मैंने सलाहके तौरपर ऐसा किया था कुछ मुद्दईकी मानहानि नहीं की। मुकद्दमा अभी फेसल नहीं हुआ है किंतु देखते हैं कि साहब बहादुर घटना स्वीकार करके भी निर्दोष बनना चाहते हैं। आपकी समझमें ' बदजात ' गाली नहीं हुई और धीरेसे बेत छुलाना कुछ अनुचित नहीं हुआ। इसका कारण साहब बहादुर एक यह भी बताते हैं कि उस समय मुद्दई कुछ न बोला बल्कि मुसकराने लगा। ठीक है अगर मुद्दई उसी समय जोड़का तोड़ देता तब सायद साहबको मालूम हो जाता कि गाली क्या कहलाती है परंतु जैनियोंमें यदि अपने मान धर्म, जातिका जोश होता तो धर्मस्थान तीर्थराज क्यों छीना जाता ?

देशमें आजकल बडा भारी दुर्भिक्ष है-जैनियोंका प्रधान धर्म दुःखित बुभुक्षितको दान देकर भोजन करानेका है अतएव जैनिभाइयोंको प्रतिदिन अन्नदान करकें दुर्भिक्ष पीडितोंकी रक्षा करके भोजन करना उचित है। जैनजाति सदांसे बडी उदार दानी कहलाती है इसलिये इसदानशीलताके यशको नहिं खोना चाहिये।

ॐ

जैनहितैषी.

अथवा

(जैनसमालोचक)

मासिक पत्र.

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा संपादित व प्रकाशित ।

चतुर्थ भाग	वैशाख ज्येष्ठ वीर नि. संवत् २४३४।	अंक ४३-४४

नियमावली

१. इस पत्रका वार्षिक मूल्य डांकखर्चसहित अग्रिम १) और पीछेसे २) रु. है। उस महीनेतक जिनका मूल्य आजायगा वह अग्रिम समझा जायगा। फुटकर अंकका मूल्य ।) आने।

२. यह पत्र बिना मंगाये भी अनेक महाशयोंके पास भेजा जाता है। प्रथम अंक पहुंचनेपर यदि कोई महाशय कार्डद्वारा सूचना देंगे अथवा दूसरा अंक लौटा देंगे तो उनका नाम काट दिया जायगा। जो महाशय न तो नाम कटानेके लिये कार्ड भेजेंगे और न दूसरा अंक लौटावेंगे वे महाशय पक्के ग्राहक समझे जायेंगे और उनको २ अंक भेजकर तीसरा अंक **वी. पी** द्वारा भेजा जायगा।

३. जो भाई लेख व हिंदीके सिवाय उर्दू, अंगरेजी व मराठी वगैरहसे लिखे भेजेंगे उनकी तामील नहीं होगी वे रद्दीमें फेंक दी जायगी।

पत्र व मूल्य भेजनेका पता:—**पन्नालाल जैन,**

जौलिकरकी चाल पो. **कालबादेवी** (मुंबई.)

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

ॐ

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

चतुर्थ— भाग. | वैशाख ज्येष्ठ-वीरनिर्वाण सं २४३५ । | अंक— ४३-४४

जैनहितैषीका उपहार भेज दिया गया ।

जिन महाशयोंने ग्राहक बनकर एक रुपया पांच आना मनी ऑर्डरसे भेजा था उन सब ग्राहकोंको ता. ७ मईकी डांकसे वृंदावनविलास, अर्हत्पासाकेवली और मनोरमा उपन्यास ये तीनों ग्रंथ भेज दिये गये हैं । जिनकी डांक खानेमें रसीद ली गई है यदि किसीके पास न पहुंचा हो तो हम उसके जुम्मेवार नहीं है ।

जिनके पास ३७ वें अंकसे जैनहितैषी जाता है उन ग्राहकोंके पास **मनोरमा उपन्यास** ३३ **पृष्ठसे** पूरा भेजा गया है क्योंकि ३७ और ३८ वें अंकमें ३२ पृष्ठ मनोरमा उपन्यास सबके पास भेज दिया गया था और जिनके पास ! ३९-४० वें अंकसे जैनहितैषी जाता है उनको मनोरमा पूरा भेजा गया है। परंतु अनेक भाई पत्रद्वारा (जिनके पास मनोरमा ३३ पृष्ठसे गया है) सिकायत करते हैं कि "**हमारे पास ३३ पृष्ठसे मनोरमा उपन्यास आया है सो ३२ पृष्ठ और भेजो**" उन भाइयोंसे प्रार्थना है कि आप ३७ वें ३८ वें अंकको ढूंढकर उनमेंसे ३२ पृष्ठ निकालकर अपना २ उपन्यास पूरा कर लेवें हमारे पास अब ३२ पृष्ठ नहीं रहे जो आपको भेज दें । यदि प्रमादसे ३७ वें ३८ अंक आपके पास न रहे हों तो उस प्रमादका दंड आपको भुगतना चाहिये अर्थात् आठ आने पैसे खर्च करके दूसरा पूरा उपन्यास मगाना चाहिये

परंतु ग्राहकोंको हम नाराज करना नहिं चाहते—

इसलिये हम १ से ३२ तकके दो फारम फिरसे छपाते हैं जिसमें हमारे ३२) रुपये खर्च हो जांयगे। सो छप जानेपर ४५ वें अंक के साथ सबको भेज देंगे, ४५ वां अंक आषाढ सुदी १५ को निकलैगा। तबतक कोई भाई ३२ पृष्ठके लिये चिट्ठी व सिकायत न लिखे।

नये ग्राहकोंके लिये नियम।

हर्ष है कि हमारे उपहारी ग्रंथ देखकर अनेक महशय नये ग्राहक बनते हैं परन्तु हमारे पास पिछले अंक रहे नहीं हैं इसलिये नये ग्राहकोंको पिछले ३७–३९–४२ ये तीन अंक ही मिलेंगे। ३८–४०–४१ अंकोंसे सर्वथा वंचित रहैंगे श्रतपंचमीसे पीछे ग्राहक बननेवाले इनसे भी वंचित रहैंगे। आगेके ६ अंक बराबर सबको मिलेंगे। कोई महाशय ऐसा न समझलें कि–इस वर्षके अंक जितने कमती रहैंगे अगले वर्षमें पूरे हो जांयगे–सो ऐसा कदापि नहिं होगा क्योंकि हम प्रतिवर्ष दो एक ग्रंथ उपहारमें अवश्य देंगे और मूल्य पहिले ही अंकमें अगले वर्षका मूल्य वसूल किया जावैगा। एक वर्षका हिसाव दूसरे वर्षमें नहीं जोडा जायगा।

जै· हि· के वी· पी· नहिं भेजे जांयगे।

जैनहितैषी अंक ४२ के साथ रंगीन इस्तहारमें सूचना दी गई थी कि, जिन भाइयोंके पास सुरूसे ही जैनहितैषी जाता है उनको पक्के ग्राहक समझकर मय उपहारके जैनहितैषी **वी. पी.** से भेजा जायगा. परंतु विना आज्ञापत्र पाये किसीको भी वी. पी. भेजना सभ्यतासे विरुद्ध है इसलिये जिनको उपहार लेना हो श्रुत पंचमीसे पहिले वी. पी. भेजनेका कार्ड भेजें।

जैनहितैषी भेजना बंद किया गया।

जिन ग्राहकोंके पास छ अंक बराबर भेजे गये उन्होंने न तो अखवार लोटाया न पत्र दिया और न जिनसे मूल्य मिलनेकी आशा है ऐसे ग्राहकोंके नाम-पर इसी अंकसे जैनहितैषी भेजना बंद किया गया।

एकसाथ दो अंक।

पाठकमहाशय ! अबकी बार श्रीमती जिनवाणीमाताकी सेवाके लिये आपको श्रुतस्कंधावतार कथा और श्रुतस्कंधविधानके दर्शन कराना परमइष्ट समझा गया इसकारण ४३ और ४४ वां अंक एकसाथ निकालना पड़ा है सो क्षमा करैं और इन दोनों ग्रंथोंकी आद्योपान्त स्वाध्याय करके अपने २ यहांके मंदिरजीके भंडारोंमेंसे शास्त्रजी निकालकर पूजनविधान करके हमको एक कार्डद्वारा अवश्य ही सूचना देवेंगे ऐसी आशा है।

महासभाके प्रस्तावोंकी समालोचना।

अबके इस अंकमें महासभाके प्रस्तावोंकी समालोचना करनेका अवसर था परंतु श्रुतपंचमीके विधानका एकदम प्रकाश करना उचित समझा इसलिये हमनें महासभाके कार्योंकी समालोचना भले प्रकार नहीं कर सके हमने जो जो प्रस्ताव करनेकी प्रार्थना किया था। उनमेंसे दो ही प्रस्ताव हमारी इच्छानुसार हो गये। एक तो महाविद्यालयका काशी बदल जाना और दूसरा जैनग्रंथोंका प्रचार करनेमें महासभाकी शुभभावेन सम्मति होकर उसका कार्यमें परिणत होना आशा है कि, अब शीघ्र ही मुद्रायंत्रके द्वारा बडी फुरतीके साथ जिनवाणी माताके जीर्णोद्धार प्रचारका कार्य प्रारंभ हो जायगा। शेष–फिर।

श्रुतपंचमीपर्व।

श्रुतपंचमीपर्व ज्येष्ठ सुदी ५ मी रविवारके दिन मनाया जायगा जिसके प्रचारार्थ प्रेरणा करने वा लेख देनेके लिये हमने एक महिने पहिले ही जैन-गजट, जैनपताका, जैनबोधक, जिनविजय आदिपत्रोंको एक एक कार्ड गज-पंथातीर्थसे भेजा था परन्तु खेद है कि जैनपताकाका तो अभीतक (ता. २२ मईतक ? पता ही नहीं है और जैनगजटके उस कार्ड दिये बाद तीन चार अंक निकल आये परंतु अभीतक सरस्वती माताकी जीवनरक्षाके महापर्वके विषयमें एक भी अक्षर देखनेमें नहि आया। क्या जिनवाणी मातापर इतनी भी दया नहिं है कि उसकी उन्नत्यर्थ थोडीसी लेखनी भी न चलावें ?

कलकत्तेमें बंबके गोलोंका कारखाना।

जबसे बंगालके दो टुकडे करके बंगालियोंपर अत्याचार किया गया है तबसे

बंगाली लोग कर्जन आदि सरकारी कर्मचारियोंपर अप्रसन्न होकर स्वदेशी प्रचार विदेशी बहिष्कारका अमोघास्त्र ग्रहण करके अंगरेजी व्यापारियोंका नाकों दम कर दिया है इधर हमारे कर्त्ता हर्ता प्रभुगण भी अंगरेजी व्यापारियोंकी तरफदारी करके बंगाली संवादपत्रोंके एडीटर आदि स्वदेशी आंदोलन करने वालोंपर नाना प्रकारका अत्याचार करके उन्हे जेलखानेकी हवा खिलाकर बंगालियोंको और भी उत्तेजित कर दिया जिससे बंगालियोंने सारे देशमें स्वदेशी ग्रहण विदेशी बहिष्कार रूपी बीज मंत्रका प्रचार करके अब अन्यायी राज कर्मचारियोंको बंबके गोलोंसे उडा देनेका पूरा २ प्रयत्न कर लिया ऐसा मालूम होता है क्योंकि अभी हालहीमें बंगाली एडीटरोंको जेलकी हवा खिलाकर अन्याय करनेवाले किंसफोर्ड साहबको (जो कि हालमें मुजफ्फर पुरमें मजिष्ट्रेट होकर गये हैं) उडा देनेके लिये दो बंगालियोंने मुजफ्फरपुरमें बंबका गोल चलाया था परंतु भूलसे किंसफोर्ड साहब तो बच गये और दो निरपराध अंग्रेज लेडियां भस्म हो गई। इसीप्रकार छोटे लाटकी रेलगाडी उडानेका भी उन्ही बंगालियोंने प्रयत्न किया था परंतु निष्फल गया। अब उन षड्यंत्रकारियोंका बंबके गोले बनाने तथा सिखानेका कारखाना पकडा गया है अरविंद घोष सरीखे बडे २ तीस पैंतीस बंगालियोंको पकड लिया है और ऐसे २ कारखानोंकी और भी संभावना समझ पुलिसवाले अनेक घरोंकी खाना तलाशी ले रहे हैं। हमको भय है कि तीर्थराज धर्मस्थान सम्मेदशिखरजीपर बंगले बनानेका हुकुम होनेसे हमारे जैनीभाईभी बडे भारी उत्तेजित हो गये हैं जगहँ २ तीर्थराजकी रक्षार्थ सभायें करके स्वयंसेवक (वालंटियर्स) बना २ कर सम्मेदशिखरजीपर बंगले बनना अटकानेके लिये नियत कर रहे हैं सो ऐसा न हो कि हमारे जैनीभाई भी इस भयंकर बंबके गोलोंसे काम लेनेका विचार कर लें। क्योंकि बंगालियोंने तो अपने देशकी रक्षार्थ ऐसा किया है परन्तु जैनी लोगोंका धर्मस्थान छीना जाता है। भारतवर्षियोंको धर्ममें आघात होनेसे बडा भारी दुःख होता है। भारत वासियोंका धर्म ही जीवन है जब धर्म और धर्मस्थान छीना लिया जाता है। तो फिर वे धर्मरहित होकर इतने उत्तेजित हो जाते हैं कि–महाहिंसाकरके भी चित्तको शान्त नहिं कर सकते इसलिये हम अपने बडे लाट और छोटे लाट आदिसे प्रार्थना करते हैं कि सम्मेदशिखरजीपर जो अन्याय करके बंगला बंधनेका हुकुम जारी किया है वह शीघ्र ही लोटालेवें और जैनीभाइयोंसे भी

प्रार्थना है कि आप चिवटीको भी मारनेमें पाप समझते हैं तब बंगालियोंका अनुकरण करनेमें कदापि संकल्प न करेंगे।

मनोविनोद

(१७)

पंच और पंचराजका वार्तालाप!

पंचराज—कहिये पंचजी! आज तौ बहुत दिनोंसे आये क्या नाराज होगये? कहो कोई नयी मजेदार बात तौ सुनाओ।

पंच—हां पंचराज महाराजजी आपसे कुछ नाराज हूं इसलिये मैं आना नहीं चाहता था। परंतु आज एक ताजी और शुभ खबर सुनकर आया हूं उसे सुनाना है बिना सुनाये मेरा पेट फूला जाता है परन्तु आप तो आज दीवारके सहारे बैठे हैं-इसलिये सुनानेसे लाचार हूं।

पंचराज—दीवारके सहारे बैठना क्या पाप है?

पंच—पाप तो नहीं है परंतु आजकल दीवारोंके भी कान हो गये हैं मैं-जो बात कहना चाहता हूं वह धर्मात्मा जैनियोंकी नाक ऐसे बडे घरानेकी है यदि दीवार सुनकरके उस घरमें जाकर कह देगी तो मेरे ऊपर इज्जतहतकका दावा हो सकता है यद्यपि यह बात सोलहआना सच है परंतु अदालतमें मुझे ही झूठा होकर सजा भोगनी पडेगी आजकल जीवधारी तो क्या दीवार खाट तकिया बर्तन पत्थर वगैरे जडपदार्थतक ऐसे खुशामदी टट्टू होगये हैं कि-धनाढ्यलोग प्रत्यक्ष दिनदहाडे महाअन्याकरें तौ भी उनकी खुशामदी करके उन्हें मर्धात्मा, धर्मवीर, दानी, दानवीर, सज्जन, व सज्जनोत्तम कहकर कीर्तन किया करते हैं। गरीब चाहे विद्वान् हो चाहे त्यागी व्रती और धर्मात्मा, ब्रह्मचारी क्षुल्लक तक क्यों न हो परंतु वे सब मूर्ख ढोंगी पापी. व्यभिचारी बदमास तक कहलाते हैं इसलिये माफ कीजिये पेट फूलता है तो कोई चूर्ण या पाचक बटी खाकर आराम करलूंगा।

पंचराज—वाह! खूब विचारी, जबतक इन नामधारी धर्मात्माओंका (दुष्टात्माओंका) गली २ में सुनाम न होगा तबतक दूसरे धनाढ्योंका व सर्व साधारणका कल्याण नहिं हो सकता क्योंकि-**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः**'। अर्थात् जो जो कार्य धनाढ्य लोग करते हैं उनकी देखादेखी ही सर्व साधारण करने लग जाता है इसकारण जिसप्रकार बनै इन दुष्टचार्योंकी

दुष्टता प्रसिद्ध करके सर्व साधारणको बचाना चाहिये । तू यदि मुकद्दमा बाजीसे डरता है तो मुझे सब हाल बता दे मैं ऐसे ढंगसे सारे शहरमें क्या बलके सारे जगतमें इनकी दुष्टताका ढंडोरा पीट दूंगा । तुमको कुछ भी आंच नहीं आवेगी यदि दीवार कह देगी तो मैं इसे भी जमीदोस्त कर दूंगा । तू शीघ्र ही कह ।

पंच—यदि ऐसा है तो लो मैं कह देता हूं-परन्तु ऐसा न हो कि-यह दास मारा जावें ।

पंचराज—कहो २ डरो मत ।

पंचः— ता० १९ महिना गपड सपड बार वही, दिनके दशबजे यहांके प्रसिद्ध धनाढ्य धर्मात्मा जो कि मंदिरजीमें बैठकर बडी बडी पंडिताई छोंका करते हैं, सभा सोसाइटियोंमें मंत्री सभापति बनते हैं बडे २ ले कचर झाडते हैं अब भी एक बडी भारी सभाके सेक्रेटरियोंमें हैं तथा रंडीबाजीमें सरताज हैं उनकी कलदिन शुभसमयमें मुशलमान भडुओंने जूते और घुस्सोंसे जैसी चाहिये वैसी पूजा करी एकने तो चाकू निकाल कर ऐसे दुष्टात्माका नाक काट लेना ठीक है ऐसा कह कर नाक काटनेको बढा था परंतु दूसरेने मना कर दिया कि, ऐसी महापूजा करनेका अभी समय नहीं है आज तो जूते और घुस्सोंसे ही पूजा होनी चाहिये और थोडीसी कुत्तेकी विष्टाका प्रसाद मात्र चखाना चाहिये । यदि फिर भी ऐसा अन्याय करेगा तो देखा जायगा । लाचार लालाजीने अपने सईसको भेजकर कोठीसे जमादार वगेरहको बुलाये परन्तु तबतक तो लालाजीकी पूजा अच्छी तरह होगई और गाडीमें डालकर कोठीपर लाये गये । बस इतना ही पता दूंगा और यही खबर है नामधामसे कुछ काम नहीं ।

पंचराज—बस बस २ रहनेदो जिस नालायकका यह चरित्र कह रहा है मैं उसके बापदादे तकका रत्ती २ हाल जानता हूं और यह खबर तो मैं कल ही सुनचुका हूं और सारे शहरमें प्रचार भी करचुका हूं परंतु खेद इस बातका है कि-ऐसे २ दुष्टात्मा सदछेक पापीष्टोंको धर्मकी व धर्मस्थानको बाचानेवाली सभामें सामिल करते हैं सो बडा अन्याय है भला ऐसे पापिष्ट दुष्टात्मा धर्मकार्य व धर्मको बचानेकी परवाह क्यों करेंगे ! यदि धर्मका स्वरूप वा महत्व समझता तो दिन दहाडे ऐसे पापकर्म करता ? अब चाहिये तो ऐसा कि-ऐसे प्रसिद्ध पापियोंको जातिवाले जातिसे खारिज करदें और व्यापारी गण व्यापारसे संबंध छोड दें और मुनीम गुमास्ते दलाल लोक मुनीमी, गुमास्तगिरी, व दलाली करना छोड दें और जिनकी स्त्रियें सुंदर हों उनको तो इन पापीष्टोंसे किसी भी प्रकारका

संबंध नहीं रखना चाहिये। जबतक इनके साथ ऐसा कडा बरताव नहीं किया जायगा तबतक इन दुष्टोंको सजा थोडी ही मिलती है हमारा एक पुराना मित्र इनका बडा ही घरभेदू है वह ४ वर्षसे इनका एक पुराण बना रहा है परंतु अबतक इनके पापोंका कथन पूरा नहीं हुआ उसको तुम सुनोगे तो यह पापन उनके सामने कुछ भी नहीं है।

पंच—क्या यह बात सब जगह फूट गई है? मैं कलसे बाजारमें ही नहीं गया घरमें ही पडा रहा आज यह रोग विना कहे बडा दुःखदायक होगया था इस लिये मैं आया सो आपकी कृपासे अब आराम हो गया।

पंचराज—अच्छा ऐसे २ नामके धर्मात्मा दुष्ट लोगोंकी दुष्टता देखो त्वरित ही हमें कह जाया करो जो हम सर्वत्र प्रचार करते रहें।

पंच—तथास्तु-कहकर चला गया।

एक धनाढ्य रईसकी मरतेसमयकी दानवीरता।

पुत्र—बाबाजी अब आपका अन्तिम समय है आप जो कुछ कहें दान धर्म किया जाय।

पिता—इस समय न मंदिरजीमें जरूरत है और न पाठशालादि कार्योंमें ही जरूरत है। तुम यदि मेरी इच्छानुसार करना चाहते हो और मरतेसमय मेरी आत्माको शान्त रखना चाहते हो तो हमारे लौंडेको २० हजार रुपये अभी उसे बुलाकर दे दो।

पुत्र—बाबाजी! मंदिर पाठशालादिमें दान देना छोडकर उस बदचलन छोकरेको एकदम २० हजार रुपये देनेसे हमारी बिरादरीमें बडी हंसी और निंदा होगी

पिता—निंदा या हंसी होगी तो मेरी होगी सो मैं उसे सुननेको नहीं आऊंगा तुम इसी वक्त उसे बुलाकर मेरे सामने २० हजारके नोट दे दो।

पुत्र—बाबाजी, है तो गैरवाजवी परंतु इस समय आपकी आज्ञाका लोप करना ठीक नहीं इसीलिये अभी दिये देता हूं परन्तु कुछ धर्मकार्यके लिये तो कुछ आज्ञा हो जावे।

पिता—धर्मकार्यके लिये देनेकी मेरी इच्छा नहीं है यदि तुमारी इच्छा हो तो अपने यहांके धर्मादे खातेमें से दे दो। खबरदार हमारे खर्च खाते नाम मांडकर नहिं देना। नहीं तो हमारा पुराना नियम भंग करनेका पाप तुमको लगेगा।

लोकलसमाचार ।

हर्ष है कि हमारे यहांके जगत्प्रसिद्ध दानवीर सेठ माणिकचंदजी **जे. पी.** की पुत्री मगनबाई आज १० वर्षसे अहोरात्र विद्याध्ययनमें लग रही है—कई विद्वानोंसे संस्कृत पढकर अब दो वर्षसे बाबू सीतलप्रसादजी लखनवीसे जैन-शास्त्रोंका अवलोकन कर रही है। जैनगजट अंक १९ से मालूम हुआ कि-आप जो गूढ विषय बाबू शीतलप्रसादजीसे हल नहिं कर सकी और जिस विषयके लिये पूनामें किसी औरतसे ना जबाब होकर एक भाईके समझानेपर भी नहिं समझी वह विषय रिशवडकी ब्रह्मचारिणी गंगनबाईके पत्रव्यवहारसे अब समझमें आगया है आशा है कि इसीप्रकार पत्रव्यवहारादिसे अपनी विद्वत्ता बढाती रहेंगी तो किसी समय जैनजातिकी स्त्रियोंका उपकार भी कर सकेंगी।

जैनियोंके प्रसिद्ध लेकचरार हकीम कल्याणरायजी आजकल बंबईमें पधारे हुये हैं सुना है कि आप ला. देवीदासजीकी तरफसे सम्मेदशिखरजीकी रक्षार्थ बुंदेलखंडमें जाग्रति करने व स्वयंसेवक तैयार करनेके लिये दौरा करनेवाले हैं। आशा है कि आप सफल मनोरथ होंगे।

खेद है कि मुम्बईका संस्कृत विद्यालय फाल्गुण सुदी ९ को बंद हुआ था सो अभीतक नहिं खुला है-सुना है कि अध्यापक महाशय बहुत बीमार हैं जिससे उन्होंने दो महीनेकी छुट्टी मांगली है--जब उनको दो महीने तक आना नहीं है और इधर बंबई प्रान्तिक जैनयूनिवर्सिटीकी परीक्षा श्रावण वदीमें होनेवाली है-तो इसके प्रबंधकर्ता महाशय क्या सो रहे हैं ? जो अध्यापकका प्रबंध नहिं करते ? विद्यार्थी बिना पढे कैसे परीक्षा देंगे ? क्या इंगरेजी सिस्टम इसीको कहते हैं कि-संस्कृत और धार्मिक विद्याकी शिक्षा देनेवाले विद्यालयकी तरफ आंख उठाकर भी नहिं देखना ? यदि आपसे प्रबंध नहिं हो सकता है तो विद्यार्थियों-को स्कालरसिप देकर काशी वगेरह भेज दें विद्यार्थियोंने क्या कसूर किया है जो उनका पढनेका अमूल्य समय व्यर्थ ही खो रहे हो और चंदा देनेवाले भाइयोंने क्या अपराध किया है जो उनका विद्योन्नतिके लिये दिया हुआ रुपया स्कालरसिप वगेरहमें व्यर्थ ही खो रहे हो ?

भूमिका।

" जिस जातिमें अपने पूर्व पुरुषोंके गौरवका अभिमान नहीं है, जो अपने जातीय त्योहारोंका अनादर करती है, वह जाति बहुत शीघ्र नष्ट होजाती है, उसकी गणना जीवित जातियोंमें, नहीं हो सकती।" विचारशील विद्वानोंके उपर्युक्त वाक्योंकी ओर हम अपने जैनसमाजका चित्त आकर्षित करते हैं और प्रेरणा करते हैं कि, वह अपने इस अधःपतनके समयमें एक बार एकान्तमें बैठकर विचार करै कि, हमारे हृदयमें पूर्व पुरुखाओंका कितना गौरव है? हम ऐसे कितने महात्माओंके नाम जानते हैं, जिन्होंने हमारे लिये अनंत परिश्रम किया है, हमारे जातीय त्योंहार कौन २ हैं, और उनमेंसे हम किन २ का आदर करते हैं. तथा अपनी जातीयताकी रक्षा करनेके लिये हमारे पास इस समय क्या २ साधन हैं। आशा है कि इन विषयोंका अनुशीलन करनेसे समाजमें अपने खोये हुए गौरवको प्राप्त करनेके लिये उत्सुकता उत्पन्न हुए बिना नहीं रहैगी।

पाठक महाशय! आज जो यह छोटासा किन्तु अनन्त उपकारी ग्रन्थ आपके समक्ष है. एक जातीय प्राचीन पर्वका स्मरण करानेके लिये, उसका गौरव प्रगट करनेके लिये और उसका लुप्त हुआ प्रचार पुनः प्रचलित करनेके लिये प्रकाशित किया जाता है। इसमें जैनागमका अवतार संसारमें किस प्रकारसे हुआ इस विषयका इतिहास है।

आपको स्मरण होगा कि श्रुतपंचमी पर्वका उत्सव प्रचलित करनेके लिये अनेक वर्षोंसे आन्दोलन किया जा रहा है. परन्तु उसका यथार्थ

इतिहास तथा अभिप्राय सर्व साधारणपर प्रगट नहीं है, इसलिये आन्दोलनकी जैसी चाहिये, वैसी सफलता नहीं हुई। यह देखकर हमने यह ग्रन्थ सरस्वतीसेवक पन्नालालजी बाकलीवालके अनुरोधसे अनुवादित गया किया है। आशा है कि, इसके एक बार पाठ करनेसे प्रत्येक मनुष्य इस पर्वके करनेके लिये उत्सुक होगा।

पाठक देखेंगे कि, हमारे पवित्र धर्ममें पहले कैसे २ ऋषिमहर्षि होगये हैं और उन्होंने कैसे २ महान् ग्रन्थ निर्माण किये थे। हमारे प्रमादसे आज उन ग्रन्थोंकी प्राप्ति तो कहां, उनके नाम जाननेवाले भी संसारमें न रहे। हाय! जिन सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिये संसारत्यागी निर्ममत्व महात्मा धरसेनजीको अतिशय आकुलता हुई थी, उनकी खोज करनेके लिये—शक्ति रहते भी उनका उद्धार करनेके लिये—हमारी प्रवृत्ति नहीं होती. जिनशास्त्रोंके प्रभावसे आजतक संसारमें हमारे धर्मका अस्तित्व है, अन्यान्य धर्मवाले उद्दंड विद्वान, जिनके पाठसे गर्वगलित होजाते थे और मुक्तकंठसे जैनधर्मकी प्रशंसा करके उसके अनुयायी हो जाते थे, उन्हीं ग्रन्थोंकी आज ऐसी दुर्दशा है कि, देखकर रोना आता है। आज ये ही अपूर्व ग्रन्थ किसी दूसरी जीवित जातिके हाथमें होते तो वह संसारमें जैनधर्मकी धूम मचा देती।

अवश्य ही हम लोगोंके हृदयसे जिनवाणी माताका गौरव नष्ट हो गया है। अपने आचार्योंकी कृतिका अभिमान विलुप्त होगया है। नहीं तो उदारशील कहलाकर प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये दानधर्ममें लगाकर भी हमारी जातिका एक पैसा ग्रन्थजीर्णोद्धारके कार्यमें नहीं लगता. यह बात कब संभव होसकती थी? आज एक भी माईका लाल ऐसा नहीं दिखता है, जिसने किसी एक विलुप्त

हुए नामशेष ग्रन्थका किसी प्रकारसे भी जीर्णोद्धार कराया हो। यह कितनी लज्जाकी बात है, कि लाखों प्राचीन ग्रन्थोंके स्वामी होकर भी जैनी लोग एक ऐसा सरस्वतीभंडार स्थापित नहीं कर सकते हैं, जिसमें हजार दोहजार ग्रंथोंका संग्रह हो। श्रुतावतारका पाठ करके—श्रुतपंचमीके भूलेहुए पर्वको पुनः प्रचलित करके—हमको आशा है कि जैनियोंमें शास्त्रोंके जीर्णोद्धारकी चर्चा होने लगेगी. और थोडे ही दिनोंमें हमको एक दो बडे २ भारी सरस्वतीभंडारोंको स्थापित देखनेका सौभाग्य प्राप्त हो जावैगा।

पूर्वकालमें हमारे यहां सर्वत्र इस पर्वका उत्सव मनाया जाता था. और इसीसे उत्तेजित होकर लोग ग्रन्थोंके संग्रह करनेमें—जीर्णोद्धार करानेमें लाखों रुपये खर्च करते थे। ईडर, जैसलमेर, कामा, कारंजा, नागौर, सौनागिरजी, आमेर, जयपुर, कोल्हापुर, आदि स्थानोंके भंडार; जिनमें दो २ तीन २ हजार ग्रन्थ संग्रहीत हैं इस विषयके प्रत्यक्ष जीवित उदाहरण हैं। वे लोग धन्य हैं, जिनकी सच्ची उदारतासे सरस्वती माताकी भक्तिसे आज हमको इस बातके कहनेका साहस होता है कि, लाखों ग्रन्थोंके नष्ट होजानेपर भी जैनियोंमें अभी इतने ग्रन्थ मौजूद हैं कि, दश पांच लाख रुपये लगाने पर भी उनका उद्धार करना कठिन है।

हम अपनी जातिके विद्वानोंसे मुखियोंसे प्रार्थना करते हैं कि, वे इस वर्ष प्रयत्न करके प्रत्येक नगर और ग्राममें इस पर्वको प्रचलित करें। श्रुतपंचमीके दिन प्रत्येक मंदिरमें जिनवाणी माताकी विधिपूर्वक पूजा करें, स्तुति करें, ग्रन्थविस्तार करके जुलूस निकालें, और इस श्रुतावतारकी पवित्र कथाको पढ़कर सुनावें। उस दिन प्रत्येक भाईको प्रत्येक मंदिरके तथा अपने गृहके शास्त्रों-

को खोलकर धूप दिखाना चाहिये. यदि वेष्टन जीर्ण होगये हों तो बदलकर नये बांधना चाहिये । इसके सिवाय उस दिन अपनी शक्तिके अनुसार नवीन ग्रन्थ लिखवाकर अथवा छपे हुए मंगाकर मंदिरजीको, तीर्थोंको, गृहत्यागियोंको विद्यार्थियोंको तथा असमर्थ श्रावक श्राविकाओंको भेंट करना चाहिये क्योंकि शास्त्रदानके समान संसारमें कोई भी दान नहीं है ।

यह ग्रन्थ श्रीइन्द्रनंदि आचार्यकृत मूलग्रन्थका अनुवाद है । हम चाहते थे कि, इसको विस्तृत ऐतिहासिक टिप्पणियोंसे अलंकृत करके प्रकाशित करें. जिससे हमारा सच्चा इतिहासका सर्व साधारणमें प्रचार हो । परन्तु श्रुतपंचमी बहुत समीप आगई है. इसकारण अवकाशके और उपयुक्त साधनोंके अभावसे हमारी उक्त इच्छा पूर्ण नहीं हुई । यदि समाजने हमारे इस छोटेसे परिश्रमका सत्कार किया और श्रुतपंचमीका पर्व प्रचलित होगया तो बहुत शीघ्र हम विस्तृतरूपसे इस ग्रन्थको प्रकाशित करनेका उद्यम करेंगे।

अन्तमें सरस्वतीजनक श्रीजिनेन्द्रदेवसे यह प्रार्थना करके हम इस भूमिकाको समाप्त करते हैं कि इसके द्वारा हमारे समाजमें जिनवाणी माताकी भक्तिका प्रवाह बढ़े और उसमें पड़कर हम लोग भगवान भट्टाकलंक समन्तभद्रादि महात्माओंके स्मारक बनाने तथा उनकी जयन्तियां मनानेके लिये तत्पर हो जावें । समाजमें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हो जावे कि, हमारी उन्नति तब ही होगी. जब कि हम जिनवाणी माताकी सच्ची सेवा करेंगे, और अपने ऋषि महर्षियोंके परिश्रमका सत्कार करना सीखेंगे ।

बम्बई.	सरस्वतीसेवक–
अक्षयतृतीया	चावली (आग्रा) निवासी
श्रीवीर नि० संवत् २४३४	**श्रीलालाराम गुप्त ।**

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

अथ श्रुतावतारकथा लिख्यते।

मंगलाचरण।

सर्वेनाकीन्द्रवन्दितकल्याणपरं परं देवम्।
प्रणिपत्यवर्धमानं श्रुतस्य वक्ष्येऽहंमवतारम्॥ १॥

यद्यपि श्रुत अनादि निधन है। अर्थात् अनादिकालसे है और अनन्तकालतक रहैगा परन्तु यहां पर कालके आश्रयसे जो उसका अनेक बार उत्पाद और विनाश हुआ है, उसका वर्णन करते हैं॥ २॥ इस भरतक्षेत्रमें अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नामके दो काल प्रवर्तते रहते हैं जिनमें कि निरन्तर जीवोंके शरीरकी उंचाई और आयुमें न्यूनाधिकता हुआ करती है॥ ३॥ अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालकी स्थिति पृथक् २ दश कोड़ाकोड़ी सागरकी है। दोनोंकी स्थितिके कालको कल्पकाल कहते हैं॥ ४॥ इस समय अवसर्पिणी काल प्रवर्तमान हो रहा है। कालके भेद जाननेवाले गणधरदेवने इसके छह भेद बतलाये हैं; सुषमसुषमा, सुषमा, सुषमदुःषमा, दुःषमसुषमा, दुःषमा और दुःषमदुःषमा। इनमेंसे पहला चार कोड़ाकोडी सागरका, दूसरा तीन कोड़ाकोडी सागरका, तीसरा दो कोड़ाकोड़ीका, चौथा ब्यालीस हजार वर्ष न्यून एक कोड़ाकोडी सागरका, पांचवां इक्कीस हजार वर्षका और छट्ठा इक्कीस हजार वर्षका॥ ५॥ पहले कालमें मनुष्योंकी उंचाई छह हजार धनुष, दूसरेमें चार हजार धनुष, तीसरेमें दो हजार धनुष, चौथेमें पांचसौ धनुष पांचवेमें सात हाथ और छठेमें

अरत्निप्रमाण[1] होती है और उन मनुष्योंकी आयु पहले कालमें तीन पल्य, दूसरेमें दो पल्य, तीसरेमें एक पल्य, चौथेमें एक करोड़ वर्ष पूर्व पांचवेमें एकसौ वीस वर्ष और छठेमें बीस वर्ष होती है ॥ १० ॥ ११ ॥

पहले दो काल बीत जानेपर और तीसरे कालमें पल्यका आठवाँ भाग शेष रहजानेपर प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन, चक्षुष्मान, यशस्वान, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित और नाभिराय इन चौदह कुलकरोंकी[2] उत्पत्ति हुई। इन्होंने अपने प्रतापसे हा! मा! धिक्! इन शब्दोंसे ही पृथ्वीका शासन किया अर्थात् उन्हें यदि कभी दंड देनेकी आवश्यकता होती थी, तो इन शब्दोंका व्यवहार करते थे। पहले पांच कुलकरोंने 'हा' शब्दसे दूसरे पांचने हा! मा! और अन्तके पांच कुलकरोंने हा! मा! और धिक् शब्दोंसे राज्य शासन किया था ॥ १६ ॥

पहले कुलकरने सूर्यचन्द्रमाके प्रकाशसे जो लोग भयभीत हुए थे उनका भय निवारण किया। दूसरेने तारागणके प्रकाशसे भयभीत लोकोंका भय निवारण किया। तीसरेने सिंह सर्पादिकसे जो लोग भयभीत हुए थे उनका भय निवारण किया। चौथेने अन्धकारके भयको दीपक जलानेकी शिक्षासे दूर किया। पांचवेने कल्पवृक्षोंके स्वत्वकी मर्यादा बांधी। छठेने अपनी नियमित सीमामें शासन कर-

---

१ कनिष्ठिकाविहीन मुठी बंधे हुए हाथके मापको अरत्नि कहते हैं। यह प्रमाण हाथसे कुछेक छोटा होता है।

२ श्रीवृषभदेवको भी पन्द्रहवां कुलकर माना है.

ना सिखलाया। सातवेंने घोडे रथ हाथी आदि सवारियोंपर चढना सिखलाया। आठवें कुलकरने जो लोग अपने पुत्रका मुख देखनेसे भयभीत हुए थे उनका भय निवारण किया। नौवें कुलकरने पुत्रपुत्रियोंके नामकरणकी विधि बतलाई। दशवेंने चन्द्रमाको दिखलाकर बच्चोंको क्रीडा करना सिखलाया। ग्यारहवेंने पितापुत्रके व्यवहारका प्रचार किया अर्थात् लोगोंको सिखलाया कि यह तुम्हारा पुत्र है तुम इसके पिता हो। बारहवेंने नदी समुद्रादिकमें नाव जहाज आदिके द्वारा पारजाना तैरना आदि सिखलाया। तेरहवेंने गर्भ, मलके शुद्ध करनेका अर्थात् स्नानादिकर्मका उपदेश दिया। चौदहवेंने नाल काटनेकी विधि बतलाई।

पश्चात् चौदहवें कुलकर श्रीनाभिरायकी मरुदेवी महाराणीके गर्भसे आदितीर्थंकर श्रीवृषभनाथ भगवान उत्पन्न हुए और भरतक्षेत्रमें उन्होंने अपने तीर्थकी प्रवत्ति की। उनके निर्वाण होनेपर पचासलाख कोटिसागर वर्षतक सम्पूर्ण श्रुतज्ञान अविच्छिन्न रूपसे प्रकाशित रहा। अनन्तर दूसरे तीर्थंकर श्रीअजितनाथ भगवानने अवतार लिया और वे भी अपने शिष्योंको भलीभांति उपदेश करते हुए मोक्ष पधारे। उनके पश्चात् भी श्रुतज्ञान अस्खलित गतिसे चलता रहा।

श्रीअजितनाथके निर्वाण हो जानेके तीसलाखकोटि सागर पीछे शम्भवनाथजी, उनसे दशलाखकोटि सागर पीछे श्रीअभिनन्दन उनसे नौलाख कोटि सागर पीछे श्रीसुमतिनाथ नव्वेहजार कोटिसागर पीछे पद्मनाथ नौ हजार कोटिसागर पीछे श्रीसुपार्श्वनाथ, नौसेकोटिसागर पीछे श्रीचन्द्रप्रभ और चन्द्रप्रभसे नव्वेकोटिसा-

गर पीछे श्रीपुष्पदन्त हुए। यहांतक समस्त श्रुत अव्यवहित प्रकाशित रहा और इसके आगे श्रीपुष्पदन्तके तीर्थके नौ कोटिसागर पूर्ण होनेमें जब चौथाई पल्य शेष रहा था तबतक श्रुतका प्रकाश रहा। इसके पश्चात् चौथाई पल्यतक श्रुतका विच्छेद रहा। अनन्तर श्रीशीतलनाथ अवतरित हुए. इन्होंने फिर श्रुतका प्रकाश किया और वह ६६२६००० वर्ष घाट ९९९९९०० सागरमें आधापल्य शेष रहा था तबतक रहा. इसके पश्चात् आधा पल्यतक विच्छेद रहा। अनन्तर श्रेयान् तीर्थंकरने फिर श्रुतका प्रकाश किया। इनके निर्वाणके पश्चात् ५४ सागरमें पौनपल्य शेष रहा था तब फिर श्रुतका विच्छेद हुआ और वह पौनपल्यतक रहा। तदनन्तर श्रीवासुपूज्य तीर्थंकर हुए। इन्होंने फिर श्रुतका प्रकाश किया। इनके निर्वाणानन्तर ३० सागरमें जब एक पल्य रहगया तब फिर श्रुतविच्छेद हुआ और वह एक पल्यतक रहा। अनन्तर श्रीविमलनाथ हुए। इन्होंने फिर श्रुतका प्रकाश किया। इनके तीर्थके ९ सागरमें जब एक पल्य रहा तब फिर श्रुतका विच्छेद हुआ और वह एकपल्यतक रहा। तत्पश्चात् श्रीअनन्तनाथ भगवानने फिर श्रुतकाप्रकाश किया। इनके निर्वाणके पश्चात् चार सागरमें पौनपल्य शेष रहनेपर पौनपल्यतक फिर श्रुतका विच्छेद रहा। अनन्तर श्रीधर्मनाथने फिर प्रकाश किया। इनके निर्वाणके पश्चात् पौनपल्यकम तीनसागरमें जब आधापल्य शेष रहगया तब फिर श्रुतका विच्छेद हुआ और वह आधा पल्यपर्यन्त रहा। अनन्तर श्रीशान्तिनाथतीर्थंकर हुए। इन्होंने फिर श्रुतका प्रकाश किया। इनके पश्चात् आधा पल्य वीतनेपर श्रीकुन्थुनाथ, हजारकोटि वर्षघाट पाव

पल्य बीतनेपर श्रीअरनाथ, हजारकोटि वर्ष बीतनेपर श्रीमल्लिनाथ, ५४ लाखवर्ष बीतनेपर श्रीमुनिसुव्रत, छहलाख वर्ष बीतनेपर श्रीनमिनाथ, पांच लाख वर्ष बीतने पर श्रीनेमिनाथ, पौने चौरासी हजार वर्ष बीतनेपर श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकर, और २५० वर्ष बीतने पर श्री वर्द्धमान तीर्थंकर हुए। श्रीशान्तिनाथसे वर्द्धमानतीर्थंकर पर्यन्त श्रुतका विच्छेद नहीं हुआ। कुशाग्रबुद्धि यतिवरों द्वारा ज्योंका त्यों प्रकाशित रहा।

श्रीपार्श्वनाथ भगवानके तीर्थके अन्तमें कुन्दनपुरके राजा सिद्धार्थकी प्रियकारिणी (त्रिसला) रानीके गर्भसे अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीरका जन्म हुआ। उन्होंने तीस वर्षकी आयुमें कुमारावस्थामें ही जिनदीक्षा लेली और घोर तपस्या करके बारह वर्षमें केवलज्ञान लक्ष्मी प्राप्त करली। उनके केवलज्ञान सूर्यके उदय होनेपर इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने समवसरण नामक सभाकी रचना की। उस महासभामें देव, मनुष्य, मुनि आदि सबका समूह एकत्रित था, तो भी त्रिजगद्गुरु भगवानकी दिव्यध्वनि ६६ दिनतक निःसृत नहीं हुई। यह देखकर इन्द्रने जब विचार किया, तो उसे विदित हुआ कि, गणधरदेवका अभाव ही दिव्यध्वनि न होनेका कारण है। अतएव गणधरकी शोध करनेके लिये वह इंद्र गौतम ग्रामको गया। वहां एक ब्राह्मणशालामें इन्द्रभूति नामका पंडित अपने पांचसौ शिष्योंके सन्मुख व्याख्यान दे रहा था। इन्द्रभूति अखिल वेदवेदांगशास्त्रोंका विद्वान था और विद्याके मदमें चूर हो रहा था।

१ यह स्थान मगध देशमें पावापुरके समीप अब भी इसी नामसे प्रसिद्ध है। २ इन्द्रभूतिके गोत्रका नाम गौतम था। अनेक इतिहासकारोंने भ्रममें पड़कर गौतम गणधरको गौतम बुद्ध लिख मारा है।

इन्द्र छात्रका वेष धारण करके उस पाठशालामें एक ओर जाकर खड़े होगये और उसके व्याख्यानको सुनने लगे। इन्द्रभूतिने थोड़ी देरमें विराम लेते हुए जब कहा कि, "क्यों तुम्हारी समझमें आया?" और छात्र वृन्द जब कहने लगे कि, "हां आया." तब इन्द्रने नासिकाका अग्रभाग सिकोड़कर इस प्रकारसे अरुचि प्रगट की कि, वह छात्रोंकी दृष्टिमें आगई। उन्होंने तत्काल ही उस भावका गुरु महाराजसे निवेदन करदिया। तब इन्द्रभूति ब्राह्मण इस अपूर्व छात्रसे बोला कि, "समस्त शास्त्रोंको मैं हथेलीपर रक्खे हुए आंवलेके समान देखता हूं और अन्यान्य वादी गणोंका दुष्ट मद मेरे सन्मुख आते ही नष्ट होजाता है। फिर कहो, किस कारणसे मेरा व्याख्यान तुम्हें रुचिकर नहीं हुआ।" इन्द्रने उत्तर दिया, "यदि आप सम्पूर्ण शास्त्रोंका तत्त्व जानते हैं. तो मेरी इस आर्याका अर्थ लगा दीजिये।" और यह आर्या उसी समय पढ़के सुनाई—

[२]षड्द्रव्यनवपदार्थत्रिकालपञ्चास्तिकायषट्कायान्।
विदुषां वरः स एव हि यो जानाति प्रमाणनयैः॥ १॥

इस अश्रुतपूर्व और अत्यन्त विषम अर्थवाली आर्याको सुनकर इन्द्रभूति कुछ भी नहीं समझा। इसलिये वह बोला, तुम किसके विद्यार्थी हो? इन्द्रने उत्तर दिया "मैं जगद्गुरु श्रीवर्धमान भट्टा-

---

१ छह द्रव्य, नव पदार्थ, तीन काल, पंचअस्तिकाय और छह कायोंको प्रमाणनयपूर्वक जानता है. वही पुरुष विद्वानोंमें श्रेष्ठ है।

२ आर्याके शब्दोंका अर्थ कुछ कठिन नहीं है किन्तु उसमें जिन पदार्थोंकी संख्या बतलाई है, वह किसी भी दर्शनमें नहीं मानी गई है। इसीलिये इन्द्रभूति उसका अभिप्राय प्रगट नहीं कर सका था।

रकका छात्र हूं।" तब इन्द्रभूतिने कहा. "ओह! क्या तुम उसी सिद्धार्थनन्दनके छात्र हो, जो महा इन्द्रजालविद्याका जाननेवाला है. और जो लोगोंको आकाशमार्गमें देवोंको आते हुए दिखलाता है[1]? अच्छा तो मैं उसीके साथ शास्त्रार्थ करूंगा। तेरे साथ क्या करूं। तुम्हारे जैसे छात्रोंके साथ विवाद करनेसे गौरवकी हानि होती है। चलो चलें, उससे शास्त्रार्थ करनेके लिये।" ऐसा कहकर इन्द्रभूति इन्द्रको आगे करके अपने भाई अग्निभूति और वायुभूतिके साथ समवसरणकी ओर चला। वहां पहुंचनेपर ज्यों ही मानस्तम्भके दर्शन हुए त्यों ही उन तीनोंका गर्व गलित हो गया। पश्चात् जिनेन्द्र भगवानको देखकर इनके हृदयमें भक्तिका संचार हुआ। इसलिये उन्होंने तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया. स्तुतिपाठ पढ़ा और उसी समय समस्त परिग्रहका त्याग करके जिनदीक्षा ले ली। इन्द्रभूतिको तत्काल ही सप्तऋद्धियां प्राप्त होगईं और आखिरमें वे भगवान्‌के चार ज्ञानके धारी प्रथम गणधर हो गये। समवसरणमें उन इन्द्रभूति गणधरने भगवान्‌से "जीव अस्तिरूप है. अथवा नास्तिरूप है? उसके क्या२ लक्षण हैं; वह कैसा है." इत्यादि साठ हजार प्रश्न किये। उत्तरमें "जीव अस्तिरूप है, अनादिनिधन है. शुभाशुभरूप कर्मोंका कर्ताभोक्ता है. प्राप्त हुए शरीरके आकार है, उपसंहरणविसर्पणधर्मवाला और ज्ञानादि गुणोंकरके युक्त है. उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य लक्षणविशिष्ट है, स्वसंवेदनग्राह्य है. अनादिप्राप्त कर्मोंके सम्बन्धसे नोकर्म–कर्मरूप पुद्गलोंको ग्रहण करता हुआ,

---

१ भगवान्‌के कल्याणकोंमें जब देवोंका आगमन होता था, तब मिथ्याती लोग समझते थे कि-यह कोई इन्द्रजालिया है, जो अपनी विद्यासे यह असंभव दृश्य दिखलाता है।

छोडता हुआ भवभवमें भ्रमण करनेवाला और उक्त कर्मोंके क्षय होनेसे मुक्त होनेवाला है” इस प्रकारसे अनेक भेदोंसे जीवादि वस्तुओंका सद्भाव भगवानने दिव्य ध्वनिके द्वारा प्रस्फुटित किया।

पश्चात् श्रावणमासकी प्रतिपदाको सूर्योदयके समय रौद्रमुहूर्तमें जब कि चन्द्रमा अभिजित नक्षत्र पर था. गुरुके तीर्थकी (दिव्य-ध्वनिकी अथवा दिव्यध्वनिद्वारा संसारसमुद्रसे तिरनेमें कारणभूत यथार्थ मोक्षमार्गके उपदेशकी) उत्पत्ति हुई। श्रीइन्द्रभूति गणधरने भगवानकी वाणीको तत्त्वपूर्वक जानकर उसीदिन सायंकालको अंग और पूर्वोंकी रचना युगपत् की और फिर उसे अपने सह-धर्मी **सुधर्मा** स्वामीको पढ़ाया। इसके अनन्तर सुधर्माचार्यने अपने सधर्मा **जम्बूस्वामीको** और उन्होंने अन्य मुनिवरोंको वह श्रुत पढ़ाया।

पश्चात् जगत्पूज्य श्रीसन्मतिनाथ अनेक निकट भव्यरूपी सस्योंको (धान्यको) धर्मामृतरूपी वर्षाके सिंचनसे परमानन्दित करते हुए तीसवर्षतक अनेक देशोंमें विहार करते हुए कमलोंके वनसे अतिशय शोभायमान **पावापुरके** उद्यानमें पहुँचे। और वहांसे जब तीन वर्ष साढ़ेआठ महीने चतुर्थकालके शेष रह गये, तब कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीको[1] मोक्ष पधारे। भगवानके निर्वाण होनेके साथ ही श्रीइन्द्रभूति गणधरको केवलज्ञान उत्पन्न हुवा और वे बारहवर्ष विहार करके मोक्षको प्राप्त हुए। उनके

---

१ इसी दिन दीपमालिकाका उत्सव मनाया जाता है। निर्वाण कल्याणका रूपान्तर ही दीपमालिकाका उत्सव है. इसी दिनसे वीरनिर्वाणसंवत् चला है जिसका इससमय २४३४ वां वर्ष चलता है. गुजरात वगेरह अनेक प्रांतोंमें वर्तमानमें इसी दिनसे ही नवे वर्षका प्रारंभ होता है।

निर्वाण होते ही **सुधर्माचार्यको** केवलज्ञानका उदय हुआ। सो उन्होंने भी बारहवर्ष विहारकरके अन्तिमगति पाई और तत्काल ही **जम्बूस्वामीको** केवलज्ञान हुआ। उन्होंने ३८ वर्ष विहार करके भव्य जीवोंको धर्मोपदेश दिया और अन्तमें मोक्षमहलको पयान किया। इन तीनों मुनियोंने परम केवल विभूतिको पाई तबतक केवल दिवाकरका उदय निरन्तर बना रहा परन्तु उनके पश्चात् ही उसका अस्त होगया[१]।

जम्बूस्वामिकी मुक्तिके पीछे **श्रीविष्णुमुनि** सम्पूर्ण श्रुतज्ञानके पारगामी श्रुतकेवली (द्वादशांगके धारक) हुए और इसीप्रकारसे **नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन** और **भद्रबाहु[२]** ये चार महामुनि भी अशेषश्रुतसागरके पारगामी हुए। उक्त पांचों श्रुतकेवली १०० वर्षके अन्तरालमें हुए अर्थात् भगवानकी मुक्तिके पश्चात् ६२ वर्षमें ३ केवली हुए और फिर १०० वर्षमें ५ श्रुतकेवली हुए देखते २ श्रुतकेवलि सूर्य भी अस्त होगये. तब ग्यारह अंग और दश पूर्वके धारण करनेवाले ग्यारह महात्मा हुए। **विशाखदत्त[३], प्रौष्ठिल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजयसेन, बुद्धिमान, गंगदेव** और **धर्मसेन[४]**। इतनेमें १८३ वर्षका समय व्यतीत होगया। पश्चात् दो सौ वीस वर्षमें **नक्षत्र, जयपाल, पाण्डु, द्रुमसेन[५]** और **कंसाचार्य** ये पांच

---

१ वीर निर्वाणके पश्चात् ६२ वर्षतक केवलज्ञानका अस्तित्व भरतक्षेत्रमें रहा। २ सुप्रसिद्ध ज्योतिषी और अष्टांग निमित्त ज्ञानके ज्ञाता भद्रबाहु इनसे भिन्न हैं। वे इनसे बहुत पीछें हुए हैं। ३ विशाखदत्तको किसी २ ने विशाखाचार्यभी लिखा है। ४ एक पाठमें धर्मसेनके स्थानमें ' दत्त ' लिखा है। ५ अन्यान्य ग्रन्थोंमें ध्रुवसेन लिखा है।

मुनि ग्यारह अंगके ज्ञाता हुए। पश्चात् एकसौ अठारह वर्षमें सुभद्र, अभयभद्र, जयबाहु[1] और लोहाचार्य ये चार मुनीश्वर आचारांग शास्त्रके परम विद्वान् हुए। यहांतक अर्थात् श्रीवीरनिर्वाणके ६८३ वर्ष पीछेतक अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही, अनन्तर कालदोषसे वह भी लुप्त होगयी।

लोहाचार्यके पश्चात् विनयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त, और अर्हद्दत्त ये चार आरातीय मुनि अंगपूर्वदेशके अर्थात् अंगपूर्व ज्ञानके कुछ भागके ज्ञाता हुए। और फिर पूर्वदेशके पुण्ड्रवर्द्धनपुरमें श्रीअर्हद्बलि मुनि अवतीर्ण हुए। जो अंगपूर्वदेशके भी एकदेश (भाग) के जाननेवाले थे, प्रसारणा धारणा विशुद्धि आदि उत्तम क्रियाओंमें निरन्तर तत्पर थे, अष्टांगनिमित्त ज्ञानके ज्ञाता थे, और मुनिसंघका निग्रहअनुग्रहपूर्वक शासन करनेमें समर्थ थे। इसके सिवाय वे प्रत्येक पांच वर्षके अन्तमें सौ योजन क्षेत्रमें निवास करनेवाले मुनियोंके समूहको एकत्र करके युग–प्रतिक्रमण कराते थे। एकवार उक्त भगवान् अर्हद्बलि आचार्यने युगप्रतिक्रमणके समय मुनिजनोंके समूहसे पूछा कि, "सब यति आगये?" उत्तरमें उन मुनियोंने कहा कि, "भगवन्! हम सब अपने २ संघसहित आगये।" इस वाक्यमें अपने २ संघके प्रति मुनियोंकी निजत्व बुद्धि (पक्षबुद्धि) प्रगट होती थी. इसलिये तत्काल ही आचार्य भगवान्ने निश्चय करलिया कि, इस कलिकालमें अब आगे यह जैनधर्म भिन्न २ गणोंके पक्षपातसे ठहर सकैगा, उदासीन भावसे नहीं।

---

१ पंचास्तिकायकी टीकामें अभयभद्रके स्थानमें यशोधर जयबाहुके स्थानमें महायश लिखा है। जान पड़ता है ये उक्त आचार्योंके नामान्तर होंगे।

अर्थात् आगेके मुनि अपने २ संघका—गणका गच्छका पक्ष धारण करेंगे, सबको एकरूप समझकर मार्गकी प्रवृत्ति नहीं कर सकेंगे। इस प्रकार विचार करके उन्होंने जो मुनिगण गुफामेंसे आये थे, उनमेंसे किसी २ की नंदि और किसी २ की वीर संज्ञा रक्खी। जो अशोकवाटसे आये थे उनमेंसे किसीकी अपराजित और किसीकी देव संज्ञा रक्खी। जो पंचस्तूपोंका निवास छोड़कर आये थे, उनमेंसे किसीको सेन और किसीको भद्र बना दिया। जो महाशाल्मली (सेंवर) वृक्षोंके नीचेसे आये थे, उनमेंसे किसीकी गुणधर और किसीकी गुप्त संज्ञा रक्खी और जो खंडकेसर (बकुल) वृक्षोंकेनीचेसे आये थे उनमेंसे किसीकी सिंह और किसीकी चन्द्र संज्ञा रक्खी। *

अनेक आचार्योंका ऐसा मत है कि, गुहासे निकलनेवाले नन्दि, अशोक वनसे निकलनेवाले देव, पंचस्तूपोंसे आनेवाले सेन बने भारी शाल्मलिवृक्षके नीचे निवास करनेवाले वीर और खंडकेसर वृक्षके नीचे रहनेवाले भद्र संज्ञासे प्रसिद्ध किये गये थे। *

इस प्रकारसे मुनिजनोंके संघ प्रवर्तन करनेवाले उक्त श्रीअर्हद्बलि आचार्यके वे सब मुनीन्द्र शिष्य कहलाये। उनके पश्चात्

*उक्तं च—आयातौ नन्दिवीरौ प्रकटगिरिगुहावासतोऽशोकवाटा-
द्देवाश्चान्योऽपरादर्जित इति यतिपौ सेनभद्राह्वयौ च।
पञ्चस्तूप्यात्सगुप्तौ गुणधरवृषभः शाल्मलीवृक्षमूला-
न्निर्यातौ सिंहचन्द्रौ प्रथितगुणगणौ केसरात्खण्डपूर्वात् ॥ १ ॥

तथा—गुहायां वासितो ज्येष्ठो द्वितीयोऽशोकवाटिकात्।
निर्यातो नन्दिदेवाभिधानावाद्यानुक्रमात् ॥ १ ॥
पंचस्तूप्यास्तु सेनानां वीराणां शाल्मलिद्रुमः।
खण्डकेसरनामा च भद्रः सं(घ)स्य सम्मतः ॥ २ ॥

एक **श्रीमाघनन्दि** नामक मुनिपुंगव हुए और वे भी अंगपूर्व-देशका भलीभांति प्रकाश करके स्वर्गलोकको पधारे। तदनन्तर सुराष्ट्र (सोरठ) देशके **गिरिनगरके** समीप **ऊर्ज्जयन्तगिरि** (गिरनार) की **चन्द्रगुफामें** निवास करनेवाले महातपस्वी **श्रीधरसेन** आचार्य हुए। इन्हें अग्रायणीपूर्वके अन्तर्गत पंचमवस्तुके चतुर्थ महा**कर्मप्राभृत**का ज्ञान था।अपने निर्मल ज्ञानमें जब उन्हें यह भासमान हुआ कि, अब मेरी आयु थोडी शेष रह गई है और अब मुझे जो शास्त्रका ज्ञान है. वही संसारमें अलम् होगा। अर्थात् इससे अधिक शास्त्रज्ञ आगे कोई नहीं होगा। और यदि कोई प्रयत्न नहीं किया जावेगा तो श्रुतका विच्छेद होजावेगा। ऐसा विचारकर निपुणमति श्रीधरसेन महर्षिने देशेन्द्रदेशके बेणातटाकपुरमें निवास करनेवाले महामहिमाशाली मुनियोंके निकट एक ब्रह्मचारीके द्वारा पत्र भेजा। ब्रह्मचारीने पत्र ले जाकर उक्त मुनियोंके हाथमें दिया। उन्होंने बंधन खोलकर वांचा। उसमें लिखा हुआ था कि, "स्वस्तिश्री बेणाकतटवासी यतिवरोंको उर्ज्जयन्ततटनिकटस्थ चन्द्रगुहानिवासी **धरसेनगणि** अभिवन्दना करके यह कार्य सूचित करते हैं कि, मेरी आयु अत्यन्त स्वल्प रहगई है। जिससे मेरे हृदयस्थ शास्त्रकी व्युच्छित्ति होजानेकी संभावना है, अतएव उसकी रक्षा करनेके लिये आप लोग दो ऐसे यतीश्वरोंको भेज दीजिये जो शास्त्रज्ञानके ग्रहण-धारण करनेमें समर्थ और तीक्ष्ण बुद्धि हों।" इन समाचारोंका आशय भलीभांति समझकर उन मुनियोंने भी दो बुद्धिशाली मुनियोंको अन्वेषण करके तत्काल ही भेज दिये।

जिस दिन वे मुनि ऊर्ज्जयन्तगिरिपर पहुंचे उसकी पहली रात्रिको श्रीधरसेन मुनिने स्वप्नमें दो श्वेत बैलोंको अपने चरणोंमें पड़ते हुए देखा। स्वप्नके पश्चात् ज्यों ही वे "**जयतु श्रीदेवता**" ऐसा कहते हुए जागके खड़े हुए त्यों ही उन्होंने देखा कि, **वेणातटाकपुरसे**[1] आये हुए दो मुनि सन्मुख खड़े हैं। और अपने आगमनका कारण निवेदन कर रहे हैं।

श्रीधरसेनाचार्यने आदरपूर्वक उनका अतिथि-सत्कार (प्रावूर्णिक विधान) किया और फिर मार्गपरिश्रम शमन करनेके लिये तीन दिनतक विश्राम करने दिया। तत्पश्चात् यह सोचकर कि "सुपरीक्षा चित्तको शान्ति देनेवाली होती है" अर्थात् जिस विषयकी भलीभांति परीक्षा कर ली जाती है, उसमें फिर किसी प्रकारकी शंका नहीं रहती है, उन्होंने उन दोनोंको दो विद्यायें साधन करनेके लिये दीं, जिनमेंसे एक विद्यामें अक्षर कम थे और दूसरीमें अधिक थे।

उक्त मुनियोंने श्रीनेमिनाथतीर्थंकरकी सिद्धशिलापर (निर्वाण भूमिपर) जाकर विधिपूर्वक विद्याओंका साधन किया। परन्तु जो अक्षरहीन विद्या साध रहा था, उसके आगे एकआंखवाली देवी और अधिक अक्षर साधनेवालेके सम्मुख बड़ेदांतवाली देवी आकर खड़ी हो गई। यह देखकर मुनियोंने सोचा कि, देवताओंका यह स्वभाव नहीं है—यह असली स्वरूप नहीं है। अवश्य ही हमारी साधनामें कोई भूल हुई है। तब उन्होंने मंत्र व्याकरणकी विधिसे न्यूनाधिक वर्णोंके क्षेपने और अपचय करनेके विधानसे मंत्रोंको

---

1 वेणातटकपुर भी कहते हैं।

शुद्ध करके फिर चिन्तवन किया। जिससे कि उन देवियोंने केयूर (भुजापर पहरनेका आभरण) हार, नूपुर (बिछुए), कटक (कंकण) और कटिसूत्र (करधनी) से सुसज्जित दिव्यरूप धारण करके दर्शन दिया और समक्ष उपस्थित होकर कहा कि, "कहिये-किस कार्यके लिये हमको आज्ञा होती है?" यह सुनकर मुनियोंने कहा कि हमारा ऐहिक पारलौकिक ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जिसे तुम सिद्ध कर सको। हमने तो केवल गुरुदेवकी आज्ञासे मंत्रोंकी सिद्धि की है। मुनियोंका अभीष्ट सुनकर वे देवियां उसी समय अपने स्थानको चली गई।

इसप्रकारसे विद्यासाधन करके संतुष्ट होकर उन दोनों मुनियोंने गुरुदेवके समीप जाकर अपना सारा वृत्तान्त निवेदन किया उसे सुनकर श्रीधरसेनाचार्यने उन्हें अतिशय योग्य समझकर शुभ तिथि, शुभनक्षत्र और शुभ समयमें ग्रन्थका व्याख्यान करना प्रारंभ कर दिया और वे मुनि भी आलस्य छोड़कर गुरुविनय तथा ज्ञानविनयकी पालना करते हुए अध्ययन करने लगे।

कुछ दिनके पश्चात् आषाढ शुक्ला ११ को विधिपूर्वक ग्रन्थ समाप्त हुआ। उसदिन देवोंने प्रसन्न होकर प्रथम मुनिकी दंतपंक्तिको-जो कि विषमरूप थी, कुन्दके पुष्पोंसरीखी कर दी। और उनका **पुष्पदन्त** ऐसा सार्थक नाम रखदिया। इसी प्रकारसे भूत जातिके देवोंने द्वितीय मुनिकी तूर्यनाद-जयघोष तथा गन्धमाल्य धूपादिकसे पूजा करके उनका भी सार्थक नाम **भूतपति** रख दिया।

दूसरे दिन गुरुने यह सोचकर कि, मेरी मृत्यु सन्निकट है, यदि ये समीप रहेंगे, तो दुःखी होंगे, उन दोनोंको **कुरीश्वर** भेज

दिया। तब वे ९ दिन चलकर उस नगरमें पहुंच गये। वहां आषाढ कृष्ण[1] ५ को योग ग्रहण करके उन्होंने वर्षाकाल समाप्त किया। और पश्चात् दक्षिणकी ओरको विहार किया। कुछ दिनके पश्चात् वे दोनों महात्मा करहाट नगरमें पहुंचे। वहां श्री-पुष्पदन्त मुनिने अपने जिनपालित नामक भानजेको देखा और उसे जिनदीक्षा देकर वे अपने साथ ले वनवास देशमें जा पहुंचे। इधर भूतबलि द्रविडदेशके मथुरा नगरमें पहुंचकर ठहर गये। करहाट नगरसे उक्त दोनों मुनियोंका साथ छूट गया।

श्रीपुष्पदन्त मुनिने जिनपालितको पढानेके लिये विचार किया कि, कर्मप्रकृति प्राभृतको छहखंडोंमें उपसंहार करके ग्रन्थरूप रचना करनी चाहिये और इसलिये उन्होंने प्रथम ही जीवस्थानाधिकारकी जिसमें कि गुणस्थान, जीवसमासादि बीस प्ररूपणाओंका वर्णन है, बहुत उत्तमताके साथ रचना की। फिर उस शिष्यको सौ सूत्र पढाकर श्रीभूतबलिमुनिके पास उनका अभिप्राय ज्ञान करनेके लिये अर्थात् यह जाननेके लिये कि वे इस कार्यके करनेमें सहमत हैं, अथवा नहीं हैं, और हैं तो जिसरूपमें रचना हुई है. उसके विषयमें क्या सम्मति देते हैं, भेज दिया। उसने भूतबलि महर्षिके समीप जाकर वे प्ररूपणासूत्र सुना दिये। जिन्हें सुनकर उन्होंने श्रीपुष्पदन्त मुनिका षट्खंडरूप आगमरचनाका अभिप्राय जानलिया और अब लोग दिनपर दिन अल्पायु और अल्पमति होते जाते हैं, ऐसा विचार करके उन्होंने स्वयं पांच खंडोंमें पूर्व सूत्रोंके सहित छह हजार श्लोकविशिष्ट द्रव्यप्ररूपणाद्यधिकारकी

---

१ दक्षिण देशमें पहिले शुक्ल पक्ष पीछे कृष्ण पक्ष आता है।

रचना की और उसके पश्चात् **महाबन्ध** नामक छठेखंडको तीस हजार सूत्रोंमें समाप्त किया। पहले पांच खंडोंके नाम ये हैं, **जीवस्थान, क्षुल्लकबन्ध, बन्धस्वामित्व, भाववेदना** और **वर्गणा**।

श्रीभूतबलि मुनिने इसप्रकार षट्खंडागमकी रचना करके उसे असद्भाव स्थापनाके द्वारा पुस्तकोंमें आरोपण किया अर्थात् लिपि बद्ध किया[1] और उसकी **ज्येष्ट शुक्ला पंचमीको** चतुर्विधि संघके सहित वेष्टनादि उपकरणोंके द्वारा क्रियापूर्वक पूजा की। उसी दिनसे यह ज्येष्ट शुक्ला पंचमी संसारमें श्रुतपंचमीके नामसे प्रख्यात हो गई। इस दिन श्रुतका अवतार हुआ है. इसलिये आजपर्यंत समस्त जैनी उक्त तिथिको श्रुतपूजा करते हैं।

कुछ दिनके पश्चात् भूतबलि आचार्यने षटखंड आगमका अध्ययन करके **जिनपालित** शिष्यको उक्त पुस्तक देकर श्रीपुष्पदन्त गुरुके समीप भेजदिया। जिनपालितके हाथमें षट्खंड आगम देखकर और अपना चिन्तवन किया हुआ कार्य पूर्ण होगया जानकर श्रीपुष्पदन्ताचार्यका समस्त शरीर प्रगाढ़ श्रुतानुरागमें तन्मय होगया और तब अतिशय आनन्दित होकर उन्होंने भी चतुर्विधि संघके साथ श्रुतपंचमीको[2] गन्ध, अक्षत, माल्य, वस्त्र, वितान, घंटा, ध्वजादि द्रव्योंसे पूर्ववत् सिद्धान्तग्रंथकी महापूजा की।

१ ऐसा जानपड़ता है कि. तब तक आगमज्ञान गुरुपरंपरासे कंठस्थ ही चला आया था, लिपिबद्ध नहीं हुआ था। परन्तु इससे ऐसा नहीं समझ लेना चाहिये कि, इसके पहले लिखनेकी प्रणाली ही नहीं थी।

२ यह दूसरे वर्षकी श्रुतपंचमी होगी।

इस प्रकार **षट्खंड आगम**की उत्पत्तिका वर्णन करके अब **कषायप्राभृत** सूत्रोंकी उत्पत्तिका कथन करते हैं।

(बहुत करके श्रीधरसेनाचार्यके समयमें) एक **श्रीगुणधर** नामके आचार्य हुए। उन्हें पांचवें ज्ञानप्रवाद पूर्वके दशमवस्तुके तृतीय कषायप्राभृतका ज्ञान था। श्रीगुणधर और श्रीधरसेनाचार्यकी पूर्वापर गुरु परंपराका क्रम हमको ज्ञात नहीं है. क्योंकि उनकी परिपाठीके बतलानेवाले ग्रन्थों और मुनिजनोंका अभाव[1] है। इसलिये इस विषयमें कुछ नहीं कहा जासकता। अस्तु श्रीगुणधर मुनिने भी वर्तमान पुरुषोंकी शक्तिका विचार करके **कषायप्राभृत** आगमको जिसे कि **दोषप्राभृत** भी कहते हैं. एकसौ तिरासी १८३ मूल गाथा और ५३ तिरेपन विवरणरूप गाथाओंमें बनाया। फिर १५ महा-अधिकारोंमें विभाजित करके **श्रीनागहस्ति** और **आर्यमंक्षु** मुनियोंके लिये उसका व्याख्यान किया। पश्चात् उक्त दोनों मुनियोंके समीप शास्त्रनिपुण **श्रीयतिवृषभ** नामक मुनिने दोषप्राभृतके उक्त सूत्रोंका अध्ययन करके पीछे उनकी सूत्ररूप चूर्णिवृत्ति छह हजार श्लोक प्रमाण बनाई। अनन्तर उन सूत्रोंका भलीभांति अध्ययन करके **श्रीउच्चारणाचार्यने** १२००० श्लोक प्रमाण उच्चारणवृत्ति नामकी टीका बनाई। इसप्रकारसे गुणधर, यतिवृषभ और उच्चारणाचार्यने कषायप्राभृतका गाथा–चूर्णि और उच्चारणवृत्तिमें उपसंहार किया।

इसप्रकारसे उक्त दोनों कर्मप्राभृत और कषायप्राभृत सिद्धा-

---

१ यथा मूल पुस्तके–गुणधरधरसेनान्वयगुर्वोः पूर्वापरक्रमोऽस्माभिः।
न ज्ञायते तदन्वयकथकागममुनिजनाभावात्॥ १५०॥

न्तोंका ज्ञान द्रव्यभावरूप[1] पुस्तकोंसे और गुरुपरंपरासे **कुण्डकुन्द-**पुरमें ग्रन्थपारिकर्म (चूलिका–सूत्र) के कर्त्ता श्रीपद्ममुनिको प्राप्त हुआ सो उन्होंने भी छह खंडोंमेंसे पहले तीन खंडोंकी बारह हजार श्लोकप्रमाण टीका रची।

कुछ काल बीतनेपर श्री**श्यामकुण्ड** आचार्यने सम्पूर्ण दोनों आगमोंको पढ़कर केवल एक छठे महाबन्ध खंडको छोड़कर शेष दोनों ही प्राभृतोंकी बारह हजार श्लोक प्रमाण टीका बनाई। इन्हीं आचार्यने प्राकृत संस्कृत और कर्णाटक भाषाकी उत्कृष्ट **पद्धति**[2] (ग्रन्थपरिशिष्ट) की रचना की।

इसके कुछ समय पश्चात् **तुम्बुलूर** ग्राममें एक **तुम्बुलूर** नामके आचार्य हुए और उन्होंने भी छटे महाबन्ध खंडको छोड़कर शेषदोनों आगमोंकी कर्णाटकीय भाषामें ८४ हजार श्लोक प्रमित **चूड़ामणि** नामकी व्याख्या रची। पश्चात् उन्होंने छठे खंडपर भी सात हजार श्लोक प्रमाण पंजिका टीका की रचना की।

कालान्तरमें[3] तार्किकसूर्य **श्रीसमन्तभद्र** स्वामीका उदय हुआ।

---

१ लिखित ताडपत्र अथवा कागज आदिकी पुस्तकोंका द्रव्य पुस्तक और उसके कथनको भाव पुस्तक कहते हैं.

२ हेमकोषमें पद्धतिका अर्थ **ग्रन्थपरिशिष्ट** लिखा है। जान पड़ता है उक्त आचार्यने उक्तभाषाओंके व्याकरण विषयक परिशिष्ट ग्रन्थ बनाये हैं. और यह पद्धति शब्द उन्हीं ग्रन्थोंसे सम्बन्ध रखता है इतिहासकारोंका भी ऐसा मत है कि कर्णाटक भाषाका व्याकरण जैनऋषियोंने ही बनाया है।

३ मूल पुस्तकमें **अासन्ध्यापलारि** इसप्रकारका पद पड़ा हुआ है परन्तु ठीक २ नहीं पढा जाता है वह किसी नगर वा ग्रामका नाम है जहां समन्तभद्र स्वामी हुए थे।

तब उन्होंने भी दोनों प्राभृतोंका अध्ययन करके प्रथम पांच खंडोंकी अड़तालीस हजार श्लोक परिमित टीका अतिशय सुन्दर सुकोमल संस्कृत भाषामें बनाई। पीछेसे उन्होंने द्वितीय सिद्धान्तकी व्याख्या लिखना भी प्रारंभ की थी, परन्तु द्रव्यादि शुद्धिकरण-प्रयत्नोंके अभावसे उनके एक सधर्मा (मुनि) ने निषेध कर दिया। * जिससे वह नहीं लिखी गई।

इसप्रकार व्याख्यानक्रम (टीकादि) से तथा गुरु परंपरासे उक्त दोनों सिद्धान्तोंका बोध अतिशय तीक्ष्णबुद्धिशाली श्री **शुभनन्दि** और **रविनन्दि** मुनिको प्राप्त हुआ। ये दोनों महामुनि **भीमरथि** और **कृष्णमेणा** नदियोंके मध्यमें बसे हुए **रमणीय–उत्कलिका** ग्रामके समीप सुप्रसिद्ध **अगणवल्ली** ग्राममें स्थित थे। उनके समीप रहकर **श्रीवप्पदेवगुरुने** दोनों सिद्धान्तोंका श्रवण किया और फिर तज्जन्यज्ञानसे उन्होंने महाबन्ध खंडको छोड़कर शेष पांच खंडोंपर **व्याख्याप्रज्ञप्ति** नामकी व्याख्या बनाई। उसमें महाबन्धका संक्षेप भी सम्मिलित कर दिया। पश्चात् कषाय प्राभृतपर प्राकृतभाषामें साठ हजार और केवल महाबन्ध खण्डपर आठ हजार पांच श्लोक प्रमाण, दो व्याख्यायें रचीं।

कुछ समय पीछे **चित्रकूटपुरनिवासी** श्रीमान् **एलाचार्य**[१]

---

* यथा मूल पुस्तके–विलिखन् द्वितीयसिद्धान्तस्य व्याख्यां सधर्मणा स्वेन।
द्रव्यादिशुद्धिकरणप्रयत्नविरहात्प्रतिनिषिद्धम् ॥ १६९ ॥

१ श्रीकुन्दकुन्दाचार्यका भी अपर नाम एलाचार्य प्रसिद्ध है। क्या ये ८४ प्राभृतग्रन्थोंके कर्त्ता कुन्दाकुन्दाचार्यसे भिन्न हैं?

सिद्धान्त तत्त्वोंके ज्ञाता हुए। उनके समीप **वीरसेनाचार्यने** समस्त सिद्धान्तका अध्ययन किया और उपरितम (प्रथमके) निबंधनादि आठ अधिकारोंको लिखा। पश्चात् गुरु भगवानकी आज्ञासे चित्रकूट छोड़कर वे **वाट** ग्राममें पहुंचे। वहां आनतेन्द्रके बनाये हुए जिनमन्दिरमें बैठकर उन्होंने व्याख्याप्रज्ञप्ति देखकर पूर्वके छह खंडोंमेंसे उपरिम बन्धनादिक अठारह अधिकारोंमें **सत्कर्म** नामका ग्रन्थ बनाया और फिर छहों खंडोंपर ७२००० श्लोकोंमें संस्कृत प्राकृत भाषा मिश्र **धवल** नामकी टीका बनाई। और फिर कषाय प्राभृतकी चारों विभक्तियों (भेदों)? पर **जय-धवल** नामकी २० हजार श्लोक प्रमाण टीका लिखकर स्वर्गलो-कको पधारे। उनके पश्चात् उनके प्रिय शिष्य **श्रीजयसेन** गुरुने चालीस हजार श्लोक और बनाकर जयधवल टीकाको पूर्ण की. जयधवल टीका सब मिलकर ६० हजार श्लोकोंमें पूर्ण हुई।

इस प्रकारसे **श्रीइन्द्रनन्दियतिपतिने** भव्यजनोंके लिये श्रुतपंचमीके दिन ऋषियोंद्वारा व्याख्यान करने योग्य इस श्रुतावतारका निरूपण किया। इसमें यदि मुझ अल्पबुद्धिने आग-मके विरुद्ध कुछ लिखा हो, तो उसे आगम तत्त्व जाननेवाले पुरुषोंको संशोधन कर लेना चाहिये। इस प्रकार दो अनुष्टुप् एक शार्दूलवृत्त और १८१ आर्यावृत्तोंके द्वारा २०७ श्लोक संख्यामें यह ग्रन्थ पूर्ण किया है॥

इति श्रुतावतार कथा समाप्ता।

ॐ

अथ श्रुतस्कन्धविधानं लिख्यते ।

शार्दूलविक्रीडितम् ।

अर्हत्सिद्धगुरुप्रपाठकमहासाधून्समाराध्य स-
द्भारत्युत्तमपादपद्मयुगलं मूर्ध्ना प्रणम्य त्रिधा ।
विद्यानन्द्यकलङ्कपूज्यचरणत्रैविद्यविद्यास्पद-
श्रीमत्स्वामिसमन्तभद्रमवतार्यार्चे श्रुतस्कन्धकम् १

इति श्रुतस्कन्धपूजाप्रतिज्ञानाय श्रुतस्कन्धोपरि पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

आर्या.

मतिमूलं लब्ध्यक्षरमुखप्रकाण्डं सदङ्गशाखाद्यम् ।
शब्ददलं चार्थफलं प्रशमच्छायं श्रये श्रुतस्कन्धम् ॥

ओं ह्रीं श्रुतस्कन्धस्वामिन्नत्र एहि एहि । संवौषट् ।
ओं ह्रीं श्रुतस्कन्धस्वामिन्नत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रुतस्कन्धस्वामिन्मम सन्निहितो भव भव वषट् ॥

(इति आह्वाननस्थापनसन्निधापनम् ।)

अथ साधुचरणकथकं सहस्रमष्टादशाहतं सुदयम् ।
सुपदामाचाराङ्गं सदङ्गमर्चाम्युदकमुख्यैः ॥ २ ॥

ओं ह्रीं आचाराङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आचाराङ्गाय गन्धं निर्वपामीति स्वाहा ।

ओं ह्रीं आचाराङ्गाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आचाराङ्गाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आचाराङ्गाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आचाराङ्गाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आचाराङ्गाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आचाराङ्गाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
ओं ह्रीं आचाराङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यग्ज्ञानसुविनयच्छेदोपस्थापनाक्रियावरदम् ।
सूत्रकृतं षट्त्रिंशत्सहस्रपदमर्चयामि गन्धाद्यैः ॥४॥

ओं ह्रीं सूत्रकृताङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
(इसीप्रकार चंदनादि सात द्रव्य भी चढाना)

षड्द्रव्यैकाद्युत्तरस्थानव्याख्यानकारकं स्थानम् ।
द्वाचत्वारिंशत्पदसहस्रमर्चामि वारिमुखैः ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं स्थानाङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
(इसीप्रकार चंदनादि सात द्रव्यभी चढाना)

धर्माधर्मजगत्खं जीवं चैकं विनान्त्यमाद्यमिमम् ।
द्वीपं सर्वार्थकरं विमानमपि वापिकां सुविस्ताराम्
नान्दीश्वरीं च कालं भवं च भावं निरूपयद्विशदम्
समवायाङ्गं चार्चे लक्षचतुःषष्ठिमित्सहस्रपदम् ॥७॥

ओं ह्रीं समवायाङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
(इसीप्रकार चंदनादि ७ द्रव्यभी चढाना)

जीवोऽस्ति वेति सूरिप्रश्नसहस्रं प्रवक्ति षष्ठिगुणम् ।
लक्षद्वयाष्टविंशति सहस्रपदपद्धतिर्यत्र ॥ ८ ॥
व्याख्या प्रज्ञप्तिरिमां यजामि जलचन्दनाक्षतप्रसवैः
चरुदीपधूपसुफलैर्विमुक्तिफलहेतवे सततम् ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं व्याख्याप्रज्ञप्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि ७ द्रव्य भी चढाना)

जिनपतिगणपतिसुकथज्ञातृकथापञ्चलक्षपदसहिता
षट्पञ्चाशत्सत्पदसहस्रसंमिता च पूज्यते सुबुधैः ॥

ओं ह्रीं ज्ञातृकथाङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि भी चढाना)

लक्षैकादशसप्ततिसहस्रपदसंयुतं यजामि सदा ।
आह्निकसद्व्रतकथकं विनयेनोपासकाध्ययनम् ।११।

ओं ह्रीं उपासकाध्ययनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

शून्यत्रयाष्टनेत्रत्रिनेत्रमर्चामि चान्तकृद्दशकम् ।
उपसर्गादाप्तशिवं प्रतितीर्थं चान्तकृद्दचकम् ।।१२।।

ओं ह्रीं अन्तकृद्दशाङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

द्विनवतिलक्षचतुर्युतचत्वारिंशत्सहस्रपदसहितम् ।
तद्वदनुत्तरपदद यजाम्यनुत्तरजनुर्दशकम् ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं अनुत्तरोपपादकदशाङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

लक्षात्रिनवतिषोडशसहस्रपदसत्पदं जलप्रमुखैः ।
नष्टमुष्ट्यादिकथकं प्रश्नव्याकरणमिदमर्चे ॥ १४ ॥

ओं ह्रीं प्रश्नव्याकरणाङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

उदयोदीरणसत्ताविचारकं कर्मणां यजामि मुदा ।
नित्यं विपाकसूत्रं कोटिपदं चतुरशीतिलक्षपदम् ॥

ओं ह्रीं विपाकसूत्राङ्गाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

इत्येकादशसर्वावित्प्रकथितान्यङ्गानि यः पूजये-
द्भव्यो भूरिसुगन्धपुष्पनिचयैर्भक्तया जिनोक्तौ रतः
स स्यात्कर्मकलङ्कपङ्करहितो भव्याब्जसम्बोधने
हंसः शंसित एव कर्मकुरिपुध्वंसैकशूरोजिनः ॥१६॥

ओं ह्रीं एकादशाङ्गेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

अथ दृष्टिवादनामधेयं द्वादशमङ्गं पञ्चप्रकारं पूज्यते ।
तत्र प्रथमप्रकारे पञ्चप्रकाराः पूज्यन्ते ।

चन्द्रायुर्गतिविभवप्ररूपिका पञ्चपदसहस्रयुता ॥

षट्त्रिंशल्लक्षपदा चन्द्रप्रज्ञप्तिरिज्येत ॥ १७ ॥

ओं ह्रीं चन्द्रप्रज्ञप्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

त्रिसहस्रलक्षपञ्चकपदकलितालितशब्दसुविचित्रा

सूर्यायुरादिकथिका सूर्यप्रज्ञप्तिरच्र्येत ॥ १८ ॥

ओं ह्रीं सूर्यप्रज्ञप्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

लक्षत्रयं सपादं सुपदानां यत्र जिनवरोद्दिष्टम् ।

तद्वर्णना च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिरर्ह्येत ॥ १९ ॥

ओं ह्रीं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

द्वापञ्चाशल्लक्षा षट्त्रिंशत्पदसहस्रयुक्तियुता ।

सर्वद्वीपाब्धिगता प्रज्ञप्तिर्द्वीपसागरीज्या मे ॥ २० ॥

ओं ह्रीं द्वीपसागरप्रज्ञप्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

पदचतुरशीतिलक्षा षट्त्रिंशत्पदसहस्रसम्मिलिता ।

षड्द्रव्यरूपिताद्या व्याख्याप्रज्ञप्तिरिह पूज्या ॥२१॥

ओं ह्रीं व्याख्याप्रज्ञप्तये जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

इत्येवं परिकर्म शर्मकरणं भव्यात्मनां पञ्चधा
व्याख्यातं च समर्चितं च विनयाद्विज्ञानरत्नास्पदम्।
अस्मै योऽर्घ्यमनर्घमर्पयति ना पूर्णं जलाद्यष्टभि-
र्द्रव्यैर्नव्यवधूमिवाश्रयति संश्शूरः स मुक्तिश्रियम् ॥
ओं ह्रीं पञ्चप्रकाराय परिकर्मणे महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कर्तृत्वादि विधानं भूतोद्भवनादिनिन्दनं सूत्रम्।
लक्षाष्टाशीतिपदं जीवस्यार्चामि गन्धाद्यैः ॥२३॥
ओं ह्रीं सूत्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

श्रीमन्महापुराणं त्रिषष्ठिसत्पुरुषचारुचरितकथम्।
बोधिसमाधिनिधानं पदपञ्चसहस्रमर्चेऽहम् ॥
ओं ह्रीं प्रथमानुयोगाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

अथ पूर्वगते भेदे प्रथमं पूर्वं भवेच्च कोटिपदम् ।
वस्तूत्पादादिकथं नाम्नोत्पादं समर्हामि ॥ २५ ॥
ओं ह्रीं उत्पादपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

षण्णवतिलक्षसुपदं मुनिमानसरत्नकाञ्चनाभर
णम् । अङ्गाग्रार्थनिरूपकमर्च्ये चाग्रायणीयमिदम्॥

ओं ह्रीं अग्रायणीयपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

पदसप्ततिलक्षपदं श्रीमत्तीर्थंकरान्तबलकथकम् ।
महयामि मलयजाद्यैः पुरुवीर्यानुप्रवादमिदम् ॥

ओं ह्रीं वीर्यानुप्रवादपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

वस्त्वस्तिनास्तिचेति प्ररूपकं षष्ठिलक्षपदविशदम् ।
अर्चामि वाञ्छितापत्तदस्तिनास्तिप्रवादमिदम् ॥

ओं ह्रीं अस्तिनास्तिप्रवादपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

अष्टज्ञानतदुद्गमहेत्वाधारप्ररूपकं प्रयजे ।
ज्ञानप्रवादपूर्वं कोटिपदं हीनमेकेन ॥ २९ ॥

ओं ह्रीं ज्ञानप्रवादपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

वर्णस्थानद्विखमुखजन्तुवचोगुप्तिसंस्कृतिप्रकटम् ।
सत्यप्रवादमर्चे षट्पदयुतकोटिपदसुमितम् ॥३०॥

ओं ह्रीं सत्यप्रवादपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

ज्ञानाद्यात्मककर्तृत्वादियुतात्मस्वरूपकथकमिमम् ।
आत्मप्रवादमर्चे षड्विंशतिकोटिपदसुपदम् ॥३१॥

ओं ह्रीं आत्मप्रवादपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

बन्धोदयोपशमनोदीरणानिर्जरणमपि च कर्मततेः।
कर्मप्रवादमर्चे अशीतिलक्षाग्रकोटिपदम्॥ ३२॥

ओं ह्रीं कर्मप्रवादपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

प्रत्याख्यानं द्रव्ये पर्याये चापि यत्र निश्चलनम्।
प्रत्याख्यानमिहार्चे तत्सततं चतुरशीतिलक्षपदम्॥

ओं ह्रीं प्रत्याख्यानपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

पञ्च च सप्त च गुरवः क्षुद्रा विद्याश्च यत्र शतसंख्याः
दशलक्षपदं कोट्या महाविद्यानुप्रवादमिदम्॥

ओं ह्रीं विद्यानुप्रवादपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

अर्हच्चक्र्यादिशुभव्यावर्णनमत्र यत्र पूज्यमिदम्।
षड्विंशतिकोटिपदं कल्याणं नाम तत्सुधियाम्॥

ओं ह्रीं कल्याणपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

अष्टाङ्गवैद्यविद्या गारुडविद्या च मन्त्रतन्त्रगता।
प्राणावायं च यजे दशकोटिपदं त्रिकोटिपदम्॥

ओं ह्रीं प्राणावायपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

छन्दोऽलङ्कारकलामहास्पदंसकलविन्मुखादुदितम् ।
क्रियाविशालं चालं नवकोटिपदं सदैव यजे ॥३७॥

ओं ह्रीं क्रियाविशालपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

सार्द्धद्वादशकोटीपदप्रमाणं गणन्ति यतिवृषभाः ।
तल्लोकविन्दुसारं लोकाग्रसुखप्रदं प्रयजे ॥ ३८ ॥

ओं ह्रीं लोकविन्दुसारपूर्वाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

शार्दूलविक्रीडितम् ।

पूर्वाण्यत्र चतुर्दशेति गदितान्यर्हद्भिरागश्च्युतै-
रिष्ट्वा यो विधिपूर्वकं बुधजनश्चार्घेण संयोजयेत् ।
स श्रीपालउदारसारसुकृतस्त्रैलोक्यपूज्यं पदं
लब्ध्वा सिद्धिपदं लभेत दुरघं दूरं च शूरो यजेत् ॥

ओं ह्रीं चतुर्दशपूर्वेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३९ ॥

खखनेत्ररन्ध्रवसुनवखनेत्रपदसंयुता मता महताम् ।
स्याच्चूलिकाजलगता जलादिभिः पूज्यतेसततम् ॥

ओं ह्रीं जलगतायै चूलिकायै जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४० ॥

(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

तदिवपदमानसहितासुचूलिकास्थलगतासुमन्त्राद्यैः
स्थलगमनकार्यसारा समर्च्यते गन्धतोयाद्यैः ॥
ओं ऱ्हीं स्थलगतायै चूलकायै जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥४१॥
(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)
इन्द्रजालादिमन्त्रा मायाश्रितचूलिका चमत्कृतिका
पूर्वोक्तपदसमाना जलदलतान्तादिभिः पूज्या ॥
ओं ऱ्हीं मायागतायै चूलिकायै जलं निर्वपामीति स्वाहा॥४२॥
(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)
गगनगमनादिमन्त्राकाशगताचूलिकापितावतिका
भुवनवरचन्दनाद्यैःसमर्च्यतेचतुरनरनिकरैः॥४३॥
ओं ऱ्हीं आकाशगतायै चूलिकायै जलं निर्वपामीति स्वाहा ।
(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)
द्वीपिद्विपनरसुरवररूपविधात्री सुमन्त्रतन्त्राद्यैः ।
उपरिपरिकथितमाना रूपगताचूलिका चर्च्या ॥
ओं ऱ्हीं रूपगतायै चूलिकायै जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥४४॥
(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)
शार्दूलविक्रीडितम् ।
इत्येवं घनपुष्पचन्दनलसच्छालीयसत्तण्डुलैः
सौरभ्याधिकपुष्पचारुचरुसद्दीपौघधूपैः फलैः ।
दूर्वास्वस्तिकपूर्वकैश्च रचितं रक्षोग्रभूषं ददे

चूलाभ्योऽर्घ्यमनर्घसम्पदिशुभश्रीपालजैनालये ॥

ओं ह्रीं जलस्थलमायाकाशरूपगताभ्यश्चूलिकाभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४५ ॥

सत्सामायिकसंस्तवौ जिनवरे स्याद्वन्दना च प्रति-
क्रान्तिर्वैनयिकं यथार्थमुदितं दीक्षादिसत्कर्मणः ।
वक्तुस्यात्कृतिकर्म च द्रुमसुमादीनां दशानां भिदां
स्याद्वैकालिकमेतदादियतिनामाचारशेषाश्रयम् ॥
भिक्षूणामुपसर्गतत्फलकथं शास्त्रं प्रकीर्णाष्टमं । ना-
म्नाभाणि तदुत्तराध्ययनकं योग्यान्यथा शोधनम् ।
तत्कल्पव्यवहारमार्हतयतिव्रातस्य पुण्यास्पदं
कल्पाकल्पमयोग्ययोग्यकथकं कालाद्विधा लिङ्गिनां ।
दीक्षाशिक्षणभावनात्मविलसत्संस्कारवर्याथवत्
साधूनां गणपोषणादि च महाकल्पं बभाति ध्रुवम् ।
देवत्वाप्ति च पुण्डरीकममरैतत्कामिनीकृन्महा
शब्दाग्रं किल पुण्डरीकमुदिता चाशीतिकाशोधनं॥
तद्ग्रन्थः खलु पञ्चविंशतिगुणं लक्षं सहस्रत्रयं
त्रीण्येवात्रशतान्यशीतिसहितानित्रिश्च पञ्चाक्षरैः ।
शास्त्रं चैतदिहप्रकीर्णकमिति द्विःसप्ततत्त्वं ददे

तस्मै चार्घ्यमनर्घमुक्तिपदवीदीपायसिद्धिश्रिये ॥
ओं ह्रीं चतुर्दशप्रकीर्णकेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥४९॥
(इसीप्रकार चंदनादि चढाना)

अथ जयमाला ।

गुणरत्ननिधानं कृतिसन्मानं सकलविमलकेवल सदृशम् । श्रुतममलमुदारं त्रिभुवनसारं संस्तवीमि विनयादनिशम् ॥

जिनेन्द्रस्य वार्जातसंजातमर्थं
समुद्योतयन्तं समुद्घं समर्थम् ।
समेयाक्षरं चाप्यमेयार्थभारं
श्रुतस्कन्धमीडे त्रिलोकैकसारम् ॥ २ ॥
फलं सद्व्रतानां तपःसन्ततीनां
सुनिर्दूषणं भूषणं हृद्यतीनाम् ।
महातीर्थभूतं प्रपूतावतारं
श्रुतस्कन्धमीडे त्रिलोकैकसारम् ॥ ३ ॥
महाश्वभ्रपाते करालम्बदानं
सतां केवलज्ञानसम्पन्निदानम् ।
विमुक्त्यङ्गनाकण्ठभृङ्गारहारं
श्रुतस्कन्धमीडे त्रिलोकैकसारम् ॥ ४ ॥

सुविद्वज्जनानां सुराधीशमानं
समस्तं शुभं वस्तु नैतत्समानम्।
चिदानन्दशुद्धात्मसद्ध्यानतारं
श्रुतस्कन्धमीडे त्रिलोकैकसारम् ॥ ५ ॥

अमुष्यार्चया शत्रवो यान्ति नाशं
समाप्नोति चानन्तमत्रापि ना शम्।
किमन्येन वाग्जालवादेन वारं
श्रुतस्कन्धमीडे त्रिलोकैकसारम् ॥ ६ ॥

प्रचण्डापि किं डाकिनी शाकिनीयं
विधत्ते भयं क्रूरकर्माविनेयम्।
ग्रहः पीडयत्यत्र भक्तिप्रकारं
श्रुतस्कन्धमीडे त्रिलोकैकसारम् ॥ ७ ॥

सुवन्ध्यापि नारी लभेतात्मजातं
न दुर्भिक्षमारीतिकोपात्मघातम्।
निरीक्षेत जन्तुः स्मृतेरस्य चारं
श्रुतस्कन्धमीडे त्रिलोकैकसारम् ॥ ८ ॥

निमज्जोज्ज्वले स्वर्धुनीनां जले त्वं
किमेषि त्रिनेत्रादिकेष्ट्या महत्त्वम्।

विनैतं न चाप्नोषि संसारपारं
श्रुतस्कन्धमीडे त्रिलोकैकसारम् ॥ ९ ॥
अघार्कप्रतापेन चेत्पीडितात्मा
फलार्थी च पीयूषपानेच्छुकात्मा ।
अरे दुर्मते मुञ्च मिथ्याविचारं
श्रुतस्कन्धमीडे त्रिलोकैकसारम् ॥ १० ॥
सुदेवेन्द्रकीर्त्तिश्च विद्यादिनन्दी
गरीयान् गुरुर्मेऽर्हदादिप्रवन्दी ।
तयोर्विद्धि मां मूलसङ्घे कुमारं
श्रुतस्कन्धमीडे त्रिलोकैकसारम् ॥ ११ ॥

घत्ता ।

सम्यक्त्वसुरत्नंसद्व्रतयत्नंसकलजन्तुकरुणाकरणम्
श्रुतसागरमेतं भजत समेतं निखिलजगत्परितः
शरणम् ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं श्रीश्रुतस्कन्धाय प्रक्षीणकर्मबन्धाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ओं ह्रीं श्रीं वद वद वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नमः ।

(अयं जाप्यमन्त्रः अष्टोत्तरशतं एकविंशतिर्वा नव वा जपेत् ।)

पूजितोऽयं श्रुतस्कन्धो ददातु तव वाञ्छितम्।
शान्तिरस्तु नृपादीनां चतुर्विधगणस्य च॥

(इत्याशीर्वादः।)

इतिश्रीश्रुतस्कन्धपूजाविधिः समाप्तः।

ॐ

अथ सरस्वतीपूजा भाषा लिख्यते।

दोहा।

जनम जरा मृति छय करै, हरै कुनय जडरीति।
भवसागरसों ले तिरै, पूजें जिनवचप्रीति ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवभव। वषट्।

त्रिभंगी।

छीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुखसंगा। भरि कंचनझारी, धार निकारी, तृषा निवारी, हित चंगा ॥ तीर्थंकरकी धुनि, गनधरने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई। सो जिनवरबानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मंगाया, चन्दन आया, केशर लाया, रंग भरी। शारदपद वंदौं मन अभिनंदौं, पापनिकंदौं, दाह हरी ॥ तीर्थ० सो० ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥

सुखदासकमोदं, धारप्रमोदं, अतिअनुमोदं, चंदसमं। बहुभक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई, मात ममं॥ तीर्थं० सो० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षतान् निर्वपामि ॥

बहुफूलसुवासं, विमलप्रकाशं, आनँदरासं, लाय धरे । मम काम मिटायो, शीलबढ़ायो, सुखउपजायो, दोष हरे ॥ तीर्थं० सो० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै पुष्पं निर्वपामि ॥

पकवान बनाया, बहुघृत लाया, सबविधि भाया, मिष्ट महा । पूजूं थुति गाऊं, प्रीति बढ़ाऊं, क्षुधा नशाऊं, हर्ष लहा ॥ तीर्थं० सो० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै नैवेद्यं निर्वपामि ॥

करि दीपक ज्योतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं, तुमहिं चढ़ै । तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घटभासक,ज्ञान बढ़ै॥तीर्थं०सो०॥६॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दीपं निर्वपामि ॥

शुभगंध दशोंकर, पावकमें धर, धूप मनोहर,

खेवत हैं। सब पाप जलावे, पुण्य कमावै, दास कहावैं, सेवत हैं॥ तीर्थ० सो० ॥ ७॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै धूपं निर्वपामि ॥

बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफलभारी, ल्यावत हैं। मनवांछित दाता, मेंट असाता, तुम गुन माता, गावत हैं॥ तीर्थ० सो० ॥ ८॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै फलं निर्वपामि ॥

नयननसुखकारी, मृदुगुनधारी, उज्ज्वलभारी, मोल धरै। शुभगंधसम्हारा, वसननिहारा, तुमतर-धारा, ज्ञानकरै॥ तीर्थ० सो० ॥ ९॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै वस्त्रं निर्वपामि ॥

जलचंदन अच्छत, फूल चरोंचत, दीपधूप अति, फल लावैं। पूजाको ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत, सुख पावै॥ तीर्थ० सो० ॥ १०॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामि ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

ओंकार धुनिसार, द्वादशांग वाणी विमल।
नमौं भक्ति उरधार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥ १॥

बेसरी ।

पहला आचारांग बखानो । पद अष्टादश सहस प्रमानो ॥ दूजा सूत्रकृतं अभिलाषं । पद छत्तीस सहस गुरु भाषं ॥ १ ॥ तीजा ठाना अंग सुजानं । सहस बियालिस पदसरधानं ॥ चौथो समवायांग निहारं । चौसठ सहस लाख इकधारं ॥ २ ॥ पंचम व्याख्या प्रगपति दरशं । दोय लाख अट्ठाइस सहसं ॥ छट्ठा ज्ञातृकथा विसतारं । पांचलाख छप्पन्न हजारं ॥ ३ ॥ सप्तम उपासकाध्ययनंगं । सत्तर सहस ग्यारलख भंगं ॥ अष्टम अंतकृतं दस ईसं । सहस अठाइस लाख तेईसं ॥ ४ ॥ नवम अनुत्तर अंग विशालं । लाख बानवें सहस चवालं ॥ दशम प्रश्नव्याकरण विचारं । लाख तिरानवें सोल हजारं ॥ ५ ॥ ग्यारम सूत्रविपाक सो भाखं । एक कोड चौरासी लाखं ॥ चार कोडि अरु पन्द्रह लाखं । दो हजार सब पद गुरुशाखं ॥ ६ ॥ द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं । इकसौ आठ कोडि पद वेदं ॥ अठसठलाख सहस छप्पन हैं । सहित पंचपद मिथ्याहन हैं ॥७॥ इक सौ बारह कोड़ि ब-

खाने। लाख तिरापी ऊपर जाने ॥ अठावन सहस पंच अधिकाने। द्वादश अंग मात्र पद माने॥८॥ इक्यावन कोड़ि आठ ही लाखं। सहस चुरासी छहसौ भाखं ॥ साढे इकीस शिलोक बताये। एक एक पदके ये गाये ॥ ९ ॥

घत्ता।

जा बानीके ज्ञानसों, सूझै लोक अलोक।
'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हूं धोक॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भतसरस्वत्यै देव्यै पूर्णार्घ्यं निर्वपामि।

इति सरस्वतीपूजा समाप्ता ॥

स्वर्गीय कविवर पं० बनारसीदास कृत

शारदाष्टक

वस्तुछंद।

नमो केवल नमो केवलरूप भगवान।
मुख ओंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै।
रचि आगम उपदिशै भविक जीव संशय निवारै॥
सो सत्यारथ शारदा, तासु भक्ति उर आन।
छंद भुजंगप्रयातमें अष्टक कहौं बखान ॥ १ ॥

भुजंगप्रयात।

जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता। विशुद्ध

प्रबुद्धा नमो लोकमाता ॥ दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी । नमो देवि वागेश्वरी जैनबानी ॥ २॥ सुधा धर्म संसाधनी धर्मशाला । सुधा तापनिर्नाशनी मेघमाला ॥ महामोहविध्वंसनी मोक्षदानी । नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ३ ॥ अखै वृक्ष शाखा व्यतीताभिलाखा । कथा संस्कृता प्राकृता देश भाखा ॥ चिदानंद भूपालकी राजधानी । नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥४॥ समाधान रूपा अनूपा अछुद्रा । अनेकान्तधा स्यादवादांकमुद्रा ॥ त्रिधा सप्तधा द्वादशांगी बखानी । नमोदेविवागेश्वरी जैनवानी ॥ ५ ॥ अकोपा अमाना अदंभा अलोभा । श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञान शोभा ॥ महापावनी भावना भव्य मानी । नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ६ ॥ अतीता अजीता सदा निर्विकारा । विषै वाटिका खंडिनी खड्गधारा ॥ पुरापाप विक्षेपकर्तृ कृपानी । नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ७ ॥ अगाधा अबाधा निरंध्रा निराशा । अनंता अनादीश्वरी कर्मनाशा ॥ निशंका निरंका चिदंका भवानी । नमो देवि वागेश्वरी

जैनवानी ॥ ८ ॥ अशोका मुदेका विवेका वि-
धानी । जगज्जंतुमित्रा विचित्रावसानी ॥ समस्ता-
वलोका निरस्ता निदानी । नमो देवि वागेश्वरी
जैनवानी ॥ ९ ॥ वस्तुछंद ।

जैनवाणी जैनवाणी सुनहि जे जीव ।
जे आगमरुचि धरें जे प्रतीति मनमाहि आनहि ।
अवधारहिं जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहि ॥
जे हित हेतु बनारसी, देहिं धर्म उपदेश ।
ते सब पावहिं परम सुख, तज संसार कलेश॥१०॥

इति शारदाष्टक ।

देवरी निवासी कवि—नाथूरामप्रेमीकृत.

सरस्वतीस्तवन ।

शिखारिणी ।

जगन्माता ख्याता जिनवरमुखांभोजउदिता।
भवानी कल्याणी मुनिमनुजमानी प्रमुदिता ॥
महादेवी दुर्गा[1] दरनि दुखदाई दुरगती ।
अनेका एकाकी द्वयंयुतदशांगी[2] जिनमती ॥१॥
कहैं मातः! तो कों यदपि सब ही नादिनिधना[3]।
कथंचित् तो भी तू उपजि विनशै यों विवरना ॥

---

१ दुःखद ई दुर्गतिको नष्ट करनेवाली । २ द्वादशांगी । ३ अनादिनिधन ।

धरे नाना जन्मं[1] प्रथमजिनके बाद अबलौं।
भयो त्यों विच्छेदं[2] प्रचुर तुव लाखों बरषलौं ॥२॥
महावीरं[3]स्वामी जब सकल[4]ज्ञानी मुनि भये।
बिडौजा[5]के लाये समवसृतमें गौतम गये ॥
तबै नौकारूपा भवजलधि माहीं अवतरी।
अरूपा निर्वर्णा विगतभ्रम सांची सुखकरी ॥३॥
करै जैसें मेघध्वनि मधुर त्यों ही निरक्षरी[6]।
खिरी प्यारी प्रानी ग्रहण निजभाषामहँ करी ॥
गणेशों[7]ने झेली बहुत दिन पाली मुनिवरैं[8]।
रही थीं पै तौलों तिन हृदयमें ही घर करैं[9] ॥ ४॥
अवस्था कायाकी दिनदिन घटी दीखन लगी।
तथा धीरे धीरे सुबुधि विनशी अंगश्रुतकी ॥
तबै दो शिष्योंको सुगुरु धरसेनार्य मुनिने।
पढ़ाया कर्म—प्राभृत सुखद जाना जगतने ॥५॥
उन्होंने हे मातः लिखि लिपि करी अक्षरवती।
सँवारी ग्रन्थोंमें श्रुततिथि[10] मनाई सुखवती ॥
सहारा देते जो नहिं तुमहिं वे यों तिहि समैं।

१–२–३ इन अक्षरोंको संस्कृतके नियमानुसार दीर्घ पढ़ना चाहिये। ४ केवल ज्ञानी। ५ इन्द्रके बुलाये हुए। ६ निरक्षरी—अक्षररहित। ७ गणधरोंने। ८–९ संस्कृतमें पादान्त्य दीर्घ होता है। १० श्रुतपंचमीका पर्व।

सदाको सो जातीं जग-जलधि-गंभीर-तलमैं॥६॥
भये पीछें नामी मुनि तिन बचाई विघनतें।
हजारों ग्रन्थोंमें रचि रचि रची चारु रुचितें॥
प्रसारी देशोंमें वर विविध भाषामय करी।
लुभाये मिथ्याती लखि विशद[2] युक्तीयुत खरी[3]॥७॥
नहीं ऐसा कोई विषय जगमें बुद्धिगत है।
तिहारो जो प्यारो नहिं विमल आभूषण अहै॥
लजें अन्या वाणी रुचिर तुव ये रूप लखिकें।
धुनें माथा हा! हा! करहिं चुप होवें विलखिकें॥८॥
धरें हैं जो प्रानी नित जननि तोको हृदयमें।
करें हैं पूजा वा मन वचन काया करि नमें॥
पढ़ावें देवें जो लिखि लिखि तथा ग्रन्थ लिखवा।
लहैं ते निश्श्रेसों अमरपदवी मोक्ष अथवा॥९॥
थके देवेन्द्रादी स्तवन नहिं तेरो कर सके।
करें तो मा! कैसें हम नित अविद्याकर छके॥
तथापि त्वद्भक्ती करत अति उत्साहित हमें।
किये तातें 'प्रेमी' पदवरन एकत्र तुकमें॥ १० ॥

इति सरस्वतीस्तवनम्।

१ धरी। २ निर्मल अकाट्य युक्तियोंवाली। ३ यथार्थ।

सूचना—सबको याद रखना चाहिये कि हमारे यहां किसीको भी कमीसन नहीं दिया जाता किन्तु फूलके ✳ ऐसे चिन्हवाली पुस्तकें ५ के मूल्यमें ६ भेजी जाती हैं।

ॐ

श्रीजैनहितैषीकार्यालय बम्बईमें मिलनेवाले

शुद्ध छपे हुये जैनग्रंथोंका

सूचीपत्र.

सबसे पहिले ध्यान देने योग्य

सूचना.

जिनको हमारे यहांसे सुरमा, दवाइयें, केशर, घड़ियें और स्वदेशी कपड़े वगैरह मगाना हो, वे नीचे लिखे पतेसे पत्र भेजा करें

मैनेजर-**स्वदेशीकार्यालय**

हीराबाग, पो० **गिरगांव** (बम्बई.)

और

जिनको सब जगहके छपे हुये सर्व प्रकारके जैनग्रन्थ मंगाने हों, वे

मालिक-**जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय,**

हीराबाग, पो० गिरगांव (बम्बई) के पतेसे पत्र भेजें।

और

जिन भाइयोंको इस सूचीपत्रमेंकी छपी हुई पुस्तकें और **जैनहितैषी** मंगाना हो अथवा जैनहितैषीसंबंधी पत्रव्यवहार करना हो और मनीऑर्डर भेजना हो तो नीचे लिखे पतेसे भेजा करें—

पन्नालाल जैन-मालिक-जैनहितैषीकार्यालय,

जौंतेकरकी चाल-पोष्ट-कालबादेवी (बम्बई).

पत्र स्पष्ट हिंदी अक्षरोंमें आना चाहिये। उर्दू अंगरेजी मुड़ियाके पत्र रद्दीमें डाल दिये जाते हैं।

ॐ

* जैनबालबोधक प्रथमभाग।

यह पुस्तक सबसे पहिले जैनीबालकोंको पढानेके लिये बनाई गई है। इसमें वर्णशिक्षा और नीतिशिक्षाके पाठ बडी उत्तम रीतिसे दिये हैं। समस्त जैनपाठशालाओंमें अब यही पढाया जाता है। यह तीसरीवार छप गया है। इसके पढनेसे बालकोंको धाराप्रवाह संस्कृत पढना आ जाता है जो कि गवर्नमेंटकी चार पुस्तकोंके पढनेसे भी नहिं आता। मूल्य।) आने। इसका पूर्वार्द्ध -)॥ का जुदा भी छपा है।

* जैनबालबोधक द्वितीयभाग।

जिसकी लोगोंको वर्षोंसे चाह थी। जैनपाठशालाओंके अध्यापकोंने जिसके विषयमें लिख लिखकर हमको तंग कर डाला, वह जैनबालबोधकका दूसरा भाग तैयार हो गया। इसमें श्रीभट्टाकलंक, समन्तभद्र, गौतमगणधर, राजा श्रेणिक आदि बडे २ पुरुषोंके चरित्र, सम्यग्दर्शनादि तत्त्वविषयक, दिवाली होलीकी तथा नीतिकी कथा आदिके उत्तम २ पाठ दिये गये हैं। प्रत्येक जैनी बालकको तो यह पुस्तक पढना ही चाहिये, किन्तु प्रौढ पुरुषोंको भी इसके पढनेसे लाभ होगा। निर्णयसागरकी सुंदर छपाई देखने योग्य है। मूल्य आठ आने।

* नित्यनियमपूजा।

इसमें अभिषेकपाठ, देवगुरुशास्त्र पूजा, सिद्धोंकी द्रव्यपूजा, भावपूजा, शान्तिपाठ, विसर्जन, कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयका बडा अर्घ आदि तो संस्कृत पाठ हैं, और भाषामें पं० द्यानतरायजीकी देवगुरु शास्त्र पूजा, तथा विहरमानपूजा व विनती आदि पाठ हैं। प्राय: लोग इनके उलटे सीधे पाठ व द्रव्य चढानेके मंत्र अशुद्ध पढते थे, इसकारण हमने बहुत शुद्धतासे अनेक प्राचीन प्रतियोंसे शुधवाकर दूसरी बार इसे छपवाया है। मूल्य ५ आने मात्र।

* रत्नकरंडश्रावकाचार सान्वयार्थ।

इस ग्रन्थके पढे विना कोई जैनी जैनी ही नहीं कहला सकता। क्योंकि इसमें प्रत्येक जैनीके जानने योग्य और आचरण करने योग्य सब प्रकारके व्रतादि-

कोंका वर्णन है। प्रत्येक जैनी विद्यार्थीको सबसे पहले यही धर्मशास्त्र पढ़ाया जाता है। इस ग्रन्थके सिर्फ १५० मूल श्लोक हैं। परन्तु इतने विस्तृत आशय-वाले हैं कि, पंडित सदासुखजीने इसपर तेरह हजार श्लोकोंमें एक बड़ी भारी बचनिका रची है। इस ग्रन्थको हम तीन बार छपा चुके। सबसे पहले इसका मूल्य ।=) था, फिर ।-) हुआ, अबकी बार सबके सुभीतेकेलिये ।) आने कर दिया है। पहले मूल श्लोक, पीछे अन्वयपूर्वक संस्कृत पदोंको कोष्टकमें रखकर भाषामें अर्थ किया है, कहीं २ कठिन श्लोकोंका भावार्थ भी दिया गया है, जिससे पढ़नेवालोंको ग्रन्थका आशय बहुत सरलतासे समझमें आ जाता है। संस्कृत न जाननेवाले भी इसकेद्वारा मूल श्लोकोंका अर्थ समझकर स्मरण रख सकते हैं। अबकी बार निर्णयसागरप्रेसमें बहुत ही सुंदर छपाया गया है।

* द्रव्यसंग्रह।

मूलगाथा, संस्कृत छाया, हिन्दी मराठी अन्वयार्थ और पास होनेकी कुंजी सहित दूसरी बार निर्णयसागरमें बहुत शुद्धतासे मोटे कागजपर छपाया गया है। पहली बार प्रत्येक गाथाकी संस्कृत छाया नहीं थी, वह अबकी बार लगा दी-गई है। चतुर विद्यार्थी इसे बिना गुरुके भी पढ सकता है, और परीक्षा देकर पास हो सकता है। इस ग्रन्थमें जैनधर्मके मूलभूत छह द्रव्य नवपदार्थोंका बडी उत्तमतासे वर्णन किया है। रत्नकरंडके बाद यही धर्मशास्त्र पढ़ाया जाता है। मूल्य पहिले आठ आना था, अब छह आना कर दिया गया है।

* भक्तामरस्तोत्र।

अन्वय, हिन्दी अर्थ, भावार्थ और कविवर भाई नाथूराम प्रेमीकृत नवीन भाषापद्यानुवाद सहित मूल्य ।)

तत्त्वार्थसूत्रकी बालबोधिनी भाषाटीका।

तत्त्वार्थसूत्र हम लोगोंका परम पूज्य और मान्य ग्रन्थ है। इसे प्रत्येक जैनी पढना पढाना अपना परम धर्म समझते हैं। इसके एकबारके पाठ मात्रसे एक उपवासका फल होता है। यह ग्रन्थ जैसा उपयोगी है और जैनधर्मके पदा-र्थोंका अटूट समुद्र जिस प्रकार इसमें भरकर गागरमें सागरकी कहावत सिद्ध की गई है, उसके कहने की जरूरत नहीं है। इसकी प्रशंसा प्रगट करनेके लिये

इस ग्रन्थपर जो अनेक टीकायें बनाई गई हैं, वेही बस हैं। परन्तु खेद है कि, अभी तक इसकी कोई ऐसी टीका छपकर प्रकाशित नहीं हुई, जो पढनेवाले विद्यार्थियोंकी समझमें सहजमें ही आ सके। अभीतक, जो टीकायें छपी हैं, वे विशेष ज्ञानियोंके समझने योग्य हैं, बालकोंके लिये जिस क्रमसे होनी चाहिये उस क्रमसे नहीं है। इस अभावकी पूर्तिके लिये हमने यह भाषाटीका तैयार की है। यह टीका भादोंमें वाचनेके लिये भी बडे कामकी है। साधारण भाई भी इससे सूत्रोंका अर्थ बांचकर समझ सकते हैं। रत्नकरंडके समान इसमें भी पद पदका अर्थ किया गया है। और भावार्थ व विशेष बातें तथा टीकायें लिखी गई हैं। इसको एक बार पढ लेनेसे फिर सर्वार्थसिद्धि आदि बड़ी टीकाओंके पढ़नेमें गति हो जावेगी। यह टीका विद्यार्थियोंके बडे ही कामकी है। इसे विना गुरुके पढकर भी विद्यार्थी बडी सुगमतासे परीक्षा दे सकता है। जहांतक बना है, प्रत्येक पदार्थके लक्षण व स्वरूप इसमें संक्षेपतासे लिखे गये हैं। मूल्य मात्र १२ आने रक्खा गया है। पाठशालाओंके प्रबंधकर्त्ताओंको नमूनेके लिये इसकी एक एक प्रति जरूर मंगानी चाहिये थोड़ीसी प्रतियें रह गई हैं।

* शाकटायन प्रक्रियासंग्रह।

संसारमें जितने व्याकरण अबतक मिले हैं, उनमें **श्रीश्रुतकेवलिदेशीयाचार्यशाकटायन**का शब्दानुशासन व्याकरण सबसे प्राचीन है। पाणिनीय व्याकरण इसके पीछे बना है। क्योंकि पाणिनीयमें जगह २ शाकटायनका मत लिया गया है। शाकटायनव्याकरण केवल प्राचीन ही नहीं है, किन्तु समस्त व्याकरणोंसे उत्तम, अल्पपरिश्रमसाध्य, बहुफल, सुगम, स्वल्प, और सर्वांग परिपूर्ण है। इसके मूल कर्ता महर्षि **शाकटायन** और प्रक्रियाके कर्ता **श्रीअभयचन्द्रसूरि** परम दिगम्बर जैनी थे। इसलिये प्रत्येक जैनीको अपने प्राचीन गौरवके स्मारकरूप इस ग्रन्थको अवश्य देखना चाहिये। जो लोग स्वयं नहीं पढ़ सकते हैं, उन्हें चाहिये कि खरीद कर विद्वानोंको बांटें, पाठशालाओं, तथा लायब्रेरियोंमें अर्पण करें। सबसे पहले मद्रासके एक अंग्रेज विद्वान् आपर्ट साहबने इस ग्रन्थको मुद्रित कराया था। तब उसका मूल्य १०) रुपये था, तौ भी हाथोंहाथ विककर मिलना कठिन हो गया, दर्शन करनेवाले लोग हतोत्साह होने लगे। इसकारण इसके सर्वत्र प्रचार करनेकी इच्छासे हमने शक्ति न रहते भी ज्यों त्यों करके छपाया है। हमारे धर्मात्मा भाइयोंको चाहिये कि, इस ग्रन्थके प्रचारमें वे हमें

सहायता देवें, जिसमें हम आगे इसकी दूसरी बडी २ टीकाओंके छापनेमें समर्थ होवें। मूल्य जिल्द सहित ग्रन्थका ३।) मात्र रक्खा है डांक खर्च ।≈)।

* जैनपदसंग्रह प्रथमभाग।

कविवर दौलतरामजीके पदोंकी प्रशंसा करनेकी जरूरत नहीं है। सबही बाल गोपाल उनके भजनोंके प्यासे रहते हैं। उनके एकही पदके पाठसे चित्त सब दुःख भूलकर आनन्दसागरमें गोते लगाने लगता है। प्रत्येक जैनीके घरमें यह पुस्तक रहना चाहिये। पहलीवार **दौलतविलास**के नामसे हमने यह संग्रह छपवाया था, जो कि हाथोंहाथ उठ गया। अबकी बार छहढाला निकालकर जैनपदसंग्रहके नामसे निर्णयसागरके जगतप्रसिद्ध सुंदर टाईपमें छपवाया है। मूल्य भी पहलेकी अपेक्षा कम अर्थात् सिर्फ छह आने रक्खा है। अबकी बार प्रत्येक कठिन शब्दपर टिप्पणी दी गई है और बहुतसे नवीनपद भी संग्रह किये हैं।

* जैनपदसंग्रह दूसराभाग।

इस दूसरे भागमें स्वर्गीय कविवर भागचंदजी कृत जितने पद हमको मिले वे सब इसमें छपे हैं। जिसप्रकार हमारे भाई कविवर दौलतरामजीके पदोंको बडी भक्ति और श्रद्धासे पढते हैं उसीप्रकार भागचंदजीके पदोंको भी बडी भक्तिसे पढते हैं। वास्तवमें इनके पद भी बडे उपदेशी व हृदयग्राही हैं इसी कारण हमने शुद्धता पूर्वक इन पदोंको छपाये हैं। मूल्य ।) आने।

बनारसीविलास।

बहुत थोडे लोग ऐसे होंगे, जिन्होने आगरा निवासी स्वर्गीय कविवर बनारसीदासजीका नाम न सुना हो। आपकी कविता ऐसी मनोरम और चित्ताकर्षक है कि, एकबार पढकर फिर छोडनेको जी नहीं चाहता निरंतर पढते रहना ही सुहाता है। भाषाके साहित्यमें आपसरीखी सुंदर रसालंकारादि काव्यके अंगोंसे परिपूर्ण कविता बहुत थोडी है। जिन्होंने **नाटकसमयसारग्रंथ**की अध्यात्मरससे सराबोर कविताका पाठ किया है, वे जानते हैं कि आप कैसे प्रतिभाशाली कवि थे। आपके बनाये हुए कई ग्रन्थ हैं, उनमेंसे अभीतक नाटकसमयसारके सिवाय और कोई भी ग्रंथ मुद्रित नहीं हुआ था। इसलिये हमने बडे परिश्रम और अर्थव्ययसे आपका यह दूसरा ग्रंथ **बनारसीविलास** छापके तैयार किया है। यह बनारसीदासजीकृत **ज्ञानबावनी**, अध्यात्मफाग, आदि **ग्रंथ-**

रत्नोंका संग्रह है। इस संग्रहसमूहको ही **बनारसीविलास** कहते हैं। बनारसीदासजी प्रसिद्ध कविवरकी कविताकी प्रशंसा करना एक प्रकारसे व्यर्थ ही है, परन्तु हम अपने ग्राहकोंसे इस विषयमें इतना कहे विना नहीं रह सकते कि, यदि आपको अध्यात्म, भक्ति और विविधप्रकार उपदेशयुक्त वैराग्यादि रसोंका अपूर्व आनंदका अनुभव करना है, तो एक बार इस ग्रन्थको जरूर पढ़िये।

इस ग्रन्थके प्रारंभमें ११३ पृष्ठोंमें ग्रन्थकर्ता कविवर बनारसीदासजीका सविस्तर जीवनचरित्र भी दिया गया है। हिन्दीमें इतना विश्वस्त जीवनचरित्र आजतक किसी भी कविका प्रकाशित नहीं हुआ है। इसे पढकर पाठक अवश्य ही प्रसन्न होंगे मूल्य १॥) डांक खर्च ≈) आने।

* भूधरजैनशतक।

बहुत दिन हुए दिल्लीके मुंशी अमनसिंहजीने इस ग्रन्थको सटीक छपवाया था, परन्तु मूल्य अधिक होनेसे और छपाई सफाई अच्छी न होनेसे सर्व साधारणमें इसका जैसा चाहिये, वैसा प्रचार न हो सका। कविवर भूदरदासजीके यों तो सबही ग्रन्थ उत्तम हैं, परन्तु इस जैन शतकमें तो उन्होंनें कमाल कर दिया है। बडी ही प्यारी, सरल असरकारक और प्रसादगुणयुक्त कविता है। एक एक कवित्त सवैया अमूल्य और प्रत्येक पुरुषके कंठ करने योग्य है। मूल्य भी हमने इतना थोड़ा रक्खा है कि, अमीर गरीब सब ही मंगाके पढ सकें। टीकाके स्थानमें कठिन २ शब्दोंकी टिप्पणी दी है। मूल्य मात्र अढाई आने।

* भाषापूजासंग्रह।

गतवर्ष हमने नित्यनियमपूजाकी पुस्तक छपाई थी, उसे देखकर अनेक लोगोंने आग्रह किया था कि, एक भाषापूजासंग्रह भी इसीप्रकारका छपना चाहिये। क्योंकि अन्यत्र जो पुस्तकें छपी हैं, वे अशुद्ध और भद्दी हैं। हमने खूब मोटे और कीमती कागज पर जितना बन सका, शुद्धता पूर्वक इस ग्रन्थ को तयार कराया है। इसमें प्रतिदिन करने योग्य सम्पूर्ण भाषा पूजायें तथा भादों आदि विशेष पर्वोंमें करने योग्य सम्पूर्ण पूजायें अनेक प्राचीन प्रतियोंसे शुद्ध करके छपवाई हैं। कविश्रेष्ठ रामचन्दजीके चौवीसीपाठकी भी ४।५ पूजा इसमें संगृहीत हैं। विशेष खूबी यह है कि, प्रत्येक स्थानमें पूरी २ आंचली और स्थापना आव्हाननादिके मंत्र शुद्धता पूर्वक लिख दिये गये हैं। क्योंकि पूजाका सच्चा फल तब ही मिलता है, जब कि वह शुद्ध मंत्रोच्चारण पूर्वक की

जावे। लोगोंका ध्यान अशुद्ध प्रतियोंके कारण इस ओर बहुत कम जाता है। इस ग्रन्थके छपनेसे अब यह कष्ट दूर हो जावेगा। इस पुस्तकको हमने सम्पूर्ण और सदाके लिये उपयोगी बनानेके अभिप्रायसे नित्यपूजा भी इसमें शामिल कर दी है, जिसमें संस्कृतकी देव गुरु, शास्त्र पूजा, सिद्ध पूजा आदि हैं। अन्तमें भाषाके अभूतपूर्व प्रतिभाशाली कवि हरिश्चंद्रविरचित पंचकल्याण महामहोत्सव लगा दिया है। पंचमंगलके विषयको इस ग्रन्थमें कलाधर, त्रिभंगी, करिखा, सवैया, अमृतध्वनि, आदि नानाछन्दोंमें बेहद जमक और अनुप्रयास मिलाकर वर्णन किया है। यमक मिलानेमें इन्होंने वृन्दावनजीका भी नम्बर ले लिया है। सारांश यह कि भाषापूजासंग्रह सर्व प्रकारसे उत्तम और ग्रहण करने योग्य है। मूल्य मात्र एक रुपाया है।

* कविवरवृन्दावनकृतचौवीसीपाठ।

यह ग्रन्थ कई बार छपके बिक गया, परन्तु एक बार भी शुद्ध नहीं छपा। छपानेवालोंने इसकी कविताकी खूबही दुर्दशा की है। यह देख अबकी बार इसे हमने इच्छा न रहते भी भाइयोंके उपकारके लिये तैयार कराया है। शुद्धताके विषयमें इतनेसे ही समझ लीजिये कि, खास कविवर वृन्दावनजीके हाथकी लिखी हुई प्रथम पुस्तकपरसे जो हमें काशीमें उन्हींके भंडारसे प्राप्त हुई थी, इसे छपवाया है। कागज पुष्ट और छपाई निर्णयसागरकी है। इसमें भी प्रत्येक अष्टकमें जगह २ आंचली और प्रत्येक पदमें ॐह्रीं आदि शुद्ध मंत्र लगाये गये हैं, जिससे पूजा करनेवालोंको यथेष्ट फलकी प्राप्ति हो। ऐसा करनेसे यह ग्रन्थ पहलेके आकारसे बडा हो गया है। इसकी उत्तमताके साम्हने १) मूल्य कुछ चीज नहीं है। पोथी साइजमें यह भी बडी सुंदरतासे छपा है।

* संस्कृत दशलक्षणपूजाप्राकृतजयमाला सार्थ·

दशलक्षण पर्वके समयसूत्रजीके पहले यह बांची जाती है, और एक २ धर्मका वर्णन प्रतिदिन सुनाया जाता है। दशलक्षणव्रत करनेवाले इसकी एक एक जयमाला रोज बांचते है। लोग प्राकृत नहीं जानते हैं और प्रतियां भी सब जगह शुद्ध नहीं मिल सकती हैं। इसलिये उन्हें इसके पढनेमें बडी कठिनाई होती थी सो इसके छप जानेसे वह कष्ट अब नहीं होगा। पंडित लालारामजीने इसकी टीका की है। और सब छोटे बडे इसे बांचकर अर्थ समझ सकेंगे। प्रत्येक मंदिरजीमें इसकी एक एक प्रति अवश्य रहनी चाहिये। मूल्य मात्र ।)

संस्कृतग्रन्थोंका ब्योरा।

सनातनजैनग्रंथमाला प्रथम गुच्छक	१)
सुभाषित रत्नसंदोह	।॥)
जैननित्यपाठसंग्रह १६ पाठोंका रेशमी गुटका	।=)
मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थ सूत्र) मूल शुद्धपाठ	=)
सर्वार्थसिद्धि मूल संस्कृत ...	२॥)
अलंकारचिंतामणि	।॥)
नेमिनिर्वाण काव्य	॥=)
चंद्रप्रभचरित (महा काव्य)...	।॥)
द्विसंधान महाकाव्य सटीक ...	१॥)
यशस्तिलकचंपू सटीक प्रथम खंढ	३।॥)
यशस्तिलकचंपू द्वितीय खंड ...	२।॥)
काव्यमाला सप्तमगुच्छक तेईस स्तोत्रोंका संग्रह ...	१)
वाग्भट्टालंकार सटीक	।)
काव्यानुशासन वाग्भट्टकृत ...	।≡)
अमरकोश मूल	।=)
,, भाषाटीकासहित ...	१॥)
परीक्षामुख प्रमेयरत्नमाला टीकास.	॥)
पंचाध्यायी मूल	॥)

भाषाके ग्रंथ।

* छहढाला दौलतरामकृत	-)
* दर्शनपाठ दौलत बुधजनकी स्तुतिसहित	-)
* इष्टछत्तीसी भाषाटीकासहित	)॥
* निर्वाणकांड प्राकृत भाषा दोनों	)।॥
* पंचमंगल शुद्ध असली पाठ	-)॥
* भक्तामर संस्कृत भाषा दोनों	-)॥
* आलोचनापाठ शुद्ध ...	)॥
* सामायिकपाठ ,, ...	)॥
* एकीभावस्तोत्र और कल्याण मंदिर दोनों एकसाथ ...	)।॥
धनंजयनाम माला (जैनकोष) भाषाटीकासहित ...	।)
आरतीसंग्रह द्यानतरायजीकृत	)।॥
कातंत्रपंचसंधि भाषाटीकासहित	=)
हितोपदेश भाषाटीकासहित	१)
हितोपदेश मूल	॥)
जैनस्त्रीशिक्षा प्रथम भाग	=)
जैनस्त्रीशिक्षा द्वितीयभाग छपता है	।)
नारीधर्मप्रकाश	≡)
सुकुमाल उपन्यास	।=)
अंजना सुंदरी नाटक	॥)
सुशीला उपन्यास पूर्ण... ...	१।)

मिलनेका पता—**पन्नालाल जैन,**
मालिक—**जैनहितैषी कार्यालय,**
जीतेकरकी चाल पो. कालबादेवी.

नयी विक्रयार्थ आई हुई पुस्तकें।

संशयतिमिरप्रदीप।

यह पुस्तक [illegible] इसमें [illegible] पंचामृताभिषेक, केसर लेपन, पुष्पपूजन, आदि विषयोंका [illegible] आधारसे निर्णय किया गया है। तेरहपंथी और [illegible] भाइयोंको यह पुस्तक मंगाकर पढ़ना चाहिये। मूल्य [illegible]

[illegible]विद्या।

बाबू [illegible] चन्दजी [illegible] यह अपूर्व पुस्तक लिखी है। इसकी मोडरेन [illegible] जैन गजट, नागरीप्रचारिणी सभा, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, सरस्वती, हिंदीप्रदीप, [illegible], [illegible]चन्द्र, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], जैनमित्र, आर्यमित्र [illegible] इसकी तारीफ की है। धर्म[illegible] अवश्य पढ़ना चाहिये और अपने अन्यधर्मी मित्रोंको भेट करना चाहिये। [illegible]) मात्र।

जैनधर्मामृतसार द्वितीयभाग।

यह पुस्तक बहुत समयसे छपाया था परन्तु हमारे पास मिलता था बीचमें हमारे पास नहीं रहा इसकारण सूचीपत्रमेंसे इसका विज्ञापन भी उठा दिया था परन्तु भाइयोंका फरमायश आते रहनेसे फिर भी हमने इसकी कई प्रतियें मंगाई हैं। इसमें प्रश्नोत्तररूपमें श्रावकाचार, तत्त्वविचार, और नित्यक्रिया सरल हिन्दी भाषामें तथा मराठी भाषामें मूल श्लोक व प्रमाण सहित लिखी है। मराठी भाषा और हिंदी भाषावाले बालक युवा वृद्ध तथा स्त्रियोंके लिये बड़ा उपयोगी ग्रंथ है। मूल्य १) रुपया डाक खर्च जुदा।

मिलनेका पता—

मालिक—**जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय**

हीराबाग पो० **गिरगांव (मुम्बई)**

Reg. No. B. 719.

ॐ

जैनहितैषी.

अथवा

(जैनसमालोचक)

मासिक पत्र।

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा संपादित व प्रकाशित।

चतुर्थ भाग	आषाढ़ वीर नि. संवत् २४३४।	अंक ४५

नियमावली

१। इस पत्रका वार्षिक मूल्य डांकखर्चसहित अग्रिम १।) और पीछेसे २) रु० है। छह महीनेतक जिनका मूल्य आजायगा वह अग्रिम समझा जायगा। फुटकर अंकका मूल्य ।) आने।

२। यह पत्र विना मगाये भी अनेक महाशयोंके पास भेजा जाता है। प्रथम अंक पहुंचनेपर यदि कोई महाशय कार्डद्वारा सूचना देंगे अथवा दूसरा अंक लौटा देंगे तो उनका नाम काट दिया जायगा। जो महाशय न तो नाम काटनेके लिये कार्ड भेजेंगे और न दूसरा अंक लौटावैंगे वे महाशय पक्के ग्राहक समझे जायगे और उनको ५ अंक तक भेजकर छट्ठा अंक **वी. पी.** द्वारा भेजा जायगा।

३। जो भाई साफ २ हिंदीके सिवाय उर्दू, अंगरेजी व मूडी वगैरहमें चिट्ठी भेजेंगे उनकी तामील नहि होगी वे रद्दीमें फेंक दी जांयगी।

पत्र व मूल्य भेजनेका पता—पन्नालाल जैन,
जीतेकरकी चाल पो. **कालबादेवी** (मुंबई.)

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

ॐ

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

चतुर्थ— भाग. } आषाढ़ श्रीवीरनिर्वाण सं० २४३५ { अंक ४९ वां.

फिर भी लूट जारी रहैगी।

जिनके पास जैनहितैषी अंक ३७ से जाता है, और आठ आठ छह छह अंक पहुंच चुके हैं, वे यदि अब भी भादोंसुदी ५ तक १) मूल्य और ।) उपहारी खर्च इस प्रकार १।) का वी. पी. भेजनेकी आज्ञा देंगे, तो उन्हें **वृंदावन-विलास, मनोरमा उपन्यास**, **अर्हत्पासाकेवली** और **श्रुतस्कंधविधान** ये चार ग्रन्थ तत्काल ही भेज दिये जावेंगे। ऐसे उत्तम मूल्यवान ग्रन्थोंके न लेनेवाले पीछे हाथ मल मलके पछतावेंगे।

जो लोग **नया ग्राहक** बनकर उपहारके ग्रन्थ लेना चाहें, उन्हें भी १।) के वी. पी. से ग्रन्थ भेज देवेंगे, परन्तु उन्हें पिछले जैनहितैषीके अंक नहीं भेज सकेंगे। यह स्मरण रखना चाहिये कि, उनका मूल्य इसी दीवाली तक समझा जावेगा।

मनोरमाके ३२ पृष्ठ

पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार हम अबकी बार मनोरमाके पहले ३२ पृष्ठ छपाकर नहीं भेज सके, पाठकगण क्षमा करें! आगामी अंकके साथ अवश्य ही भेज देंगे।

मैनेजर।

श्रीलालजीका पाण्डित्य।

युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि।
अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना॥

किसी नीतिकारका कथन है कि, "युक्तिपूर्ण वचन यदि बालक भी कहै, तो उससे ग्रहण कर लेना चाहिये परन्तु जिसमें कोई युक्ति न दी हो, केवल वाक्याडम्बर हो, उसे चाहे ब्रह्माजी भी कहैं, तौ भी नहीं मानना चाहिये, उसे तिनकेके समान छोड देना चाहिये।"

सुनते थे कि, पंडित श्रीलालजी कोई अच्छे विद्वान् हुए हैं। इधर जैनपताकाने भी कुछ दिनोंसे उनका कीर्तन करना शुरू किया है, परन्तु "**ऊंची दुकानका फीका पकवान**" वाली बात हुई। "ढोलके भीतर पोल" ही निकली। पांडित्यकी जांच करनेके लिये लेख एक कसौटी है। पताकाके ८-९ वें अंकके "**बाहरे समय**" शीर्षक लेखसे आपकी जांच हो गई। समझ लिया कि, सोनेकी कलई किया हुआ खालिस पीतल है। समझदार लोग उनकी बाहिरी चमकदमकमें फँस न जावें, और उस बाह्यसुवर्णका अथवा अन्तःसार शून्य लेखका यथार्थस्वरूप समझ जावें, इसी अभिप्रायसे यह लेख लिखा जाता है।

पाठकोंको शीर्षस्थानीय नीतिके अनुसार अपने हृदयसे यह बात निकाल देनी चाहिये कि, अमुक पंडित है, और अमुक पंडित नहीं है। केवल युक्तियोंकी ओर ध्यान देना चाहिये। जो लेख युक्तिपूर्ण होता है, वही ग्राह्य होता है। युक्तिशून्य नहीं।

---

१ **पाठक महाशय!** आपको हमारे ४२ वें अंकके लेखसे ज्ञात हुआ होगा कि, हम छापे संबंधी लेखोंका खंडन मंडन करके विरोध बढाना नहिं चाहते हैं परन्तु एक तो इस लेखके लिखनेवाले महाशयका अत्याग्रह हुआ कि, श्रीलालादिके लेखोंका खंडन अवश्य ही होना चाहिये। दूसरे-जैनपताकाने भी अबके १० वें अंकमें अपनी विमलबुद्धिका पूरा २ परिचय दिया है। लाचार हमको अब छापेके विरोधियोंके विकृत मस्तिकको ठीक करनेके लिये तथा इनकी धोखेबाजीमें भोले भाई न फँस जावें इसलिये ऐसे लेख छापने पडते हैं। **संपादक,**

पंडित श्रीलालजीके लेखकी रचना ऐसी बाहियात, असम्बद्ध, गालियोंसे भरी हुई, क्लिष्ट, और आडम्बरपूर्ण है कि उसकी सम्पूर्ण आलोचना करनेसे एक बडी भारी पोथी बन सकती है। परंतु हम उन सब बातोंका विचार पाठकोंकी बुद्धिपर छोडकर केवल उनकी पांच युक्तियोंकी निःसारता दिखला देना ही उचित समझते हैं। आशा है कि पाठक हमारे लेखपर पक्षपातरहित होकर विचार करेंगे।

पंडित श्रीलालजीका कथन है कि "जैसा शब्दबोध पढकर लिखनेसे होता है, वैसा केवल मात्र अध्ययनसे नहीं होता. क्योंकि पढनेमें साधारण शब्दोंका अक्षर ज्ञान नहीं होता है। विशेष कर व्याकरणमें तो यह अत्यन्त विचारणीय बात है, सकल (सर्व) और शकल (खंड) शब्द पढनेमें तो एकसा जान पडता है, इसलिये कोई विशेष तर्क नहीं करता परन्तु लिखनेके समय सकलके स्थानमें शकल लिख मारते हैं, इत्यादि" यह लिखनेसे पंडितजीका यह अभिप्राय जान पडता है कि, शास्त्र स्वयं लिखकर पढना चाहिये। छपे ग्रन्थोंके प्रचारसे लोग लिखना छोड बैठते हैं, और शब्दज्ञानसे कोरे रह जाते हैं परन्तु "अइउण ऋलृक" के रात दिन रटनेवाले पंडितजीने यह नहीं सोचा कि, ग्रन्थ न छपाये जावें, तो भी लोग उन्हें स्वयं लिखकर नहीं पढते हैं। आज जो छापेके शत्रु हैं, उन्हें भी तो "**मक्षिकास्थाने माक्षिका**" लिखनेवाले लेखकोंके मुहकी ओर ताकना पडता है और जब छापा नहीं था, तब भी हम समझते हैं कि, थोडे बहुत लेखनप्रिय और अभ्यासवाले लोगोंके सिवाय सब लोग लेखकोंसे ही ग्रन्थ लिखाकर पढते थे। इसके सिवाय सकल और शकलका ज्ञान व्याकरण पढनेसे होता है, लिखनेसे अथवा बांचनेसे नहीं। उदाहरणके लिये आपही उपस्थित हैं। आपको सकल-शकलका ज्ञान छपी हुई सिद्धान्त कौमुदीके पढनेसे हुआ है, न कि हस्तलिखित जैनेन्द्रव्याकरणसे। आपके पिताजी ग्रन्थ लिखकर अथवा लिखित ग्रन्थ पढकर पंडित हुए होंगे, परंतु इतनेपर भी उन्हें सकल-शकलका बोध शायद ही होगा। क्योंकि वे व्याकरण नहीं पढे हैं। इसमें ग्रन्थोंका छपना न छपना कोई कारण नहीं है।

यदि लिखने मात्रसे शब्दशुद्धि होती, तो आज मारवाडी मुनीम जो प्रति दिन सैकडों चिट्ठीयां रंगते हैं, '**हग मर जर**' के स्थानमें शुद्ध '**हींग मिर्च जीरा**' लिखने लगे होते अथवा ग्रन्थ लिखनेवाले खासे शाब्दज्ञ हो गये होते। अनेक

वैयाकरण लोग जिन्हें लिखनेका अभ्यास ही नहीं होता है, जब काम पडता है, तब शुद्ध ही लिखते हैं चाहें सुन्दर न लिख सकें। इससे स्पष्ट है कि, शब्दकी शुद्धाशुद्धिमें लिखनेका अभ्यास अनभ्यास कोई कारण नहीं है। अफसोस है कि, न्यायकी फक्किका फांकनेवाले पंडितजीको यह जरासी बात नहीं सूझी।

व्याकरणके पाठी होकर भी श्रीलालजीको यह कहनेमें लज्जा नहीं आती कि, " **सकल** और **शकलके** उच्चारणमें विशेष अन्तर प्रतीति नहीं होता " आज स्कूलोंमें साधारण हिन्दी पढे हुए लडके भी जब उनके अध्यापक पाठ (इमला) लिखवाते हैं, तब उच्चारणसे दन्त्य और तालव्यका भेद समझ कर शुद्ध लिखते हैं। यह कुछ अंग्रेजी नहीं है, जिसका उच्चारण कुछ होता है, और लिखा कुछ जाता है। अतएव कृपा करके आप इस निर्भ्रान्त भाषाको इस तरहके कलंकसे बचने दीजिये। यदि आपका अभिप्राय साधारण बुद्धिवालोंकी अपेक्षासे हो, तो उसमें यही कहना बस होगा कि, उन्हें लिखनेसे भी **सकल शकल**का भेद प्रतीति नहीं होगा और भाषामें ऐसे शब्दोंका प्रयोग ही नहीं होता है केवल संस्कृतमें होता है, सो उसके पढनेवाले व्याकरणका इतना ज्ञान भी रखते हैं कि उसके अन्तरको समझ जावें।

आगे चलकर पंडितजी बहुत ही गहरा शोच करके फरमाते हैं कि, " जब लेखाभ्यास ही नहीं, तब अक्षरोंका सुन्दर होना तो हो ही नहीं सकता। क्यों कि जब लिखें, और अक्षर हों बुरे तब तो उनके सुन्दर करनेकी हो इच्छा परन्तु जब लिखें ही नहीं तो अच्छे हों वा बुरे, तद्विषयिणी वांछा ही नहीं होती है। " परंतु हमारी समझमें छापेके ग्रन्थोंसे अक्षरोंके सौन्दर्यकी हानि मानना बडी भारी भूल है। लेखनकला अनुकरणसे और आयाससे प्राप्त होती है। हमारे सम्मुख जो रूप होता है उसीका अनुकरण करनेकी ओर हमारी प्रवृत्ति होती है। और यह सब कोई स्वीकार करते हैं कि हस्तलिखित अक्षरोंसे छापेके अक्षर बहुत सुन्दर होते हैं। तब यह कहनेमें क्या हानि है कि, छापेके अनुकरणसे अक्षर-सौन्दर्यकी न्यूनता नहीं, किन्तु वृद्धि ही होती है। जान पडता है, कि पंडितजी यों ही किसीसे वर्णमाला आदि सीखकर संस्कृतकी रटंत करके पंडितमन्य हो गये हैं किसी व्यवस्थित स्कूल अथवा पाठशालामें शिक्षित नहीं हुए हैं। इसीसे इतनी दूरकी कौडी लाये हैं। उन्हें नहीं मालूम है कि, स्कूलोंके पढे हुए लडके जिन्हें रातदिन छपी पुस्तकों परसे अभ्यास करना पडता है मोतीसरीखे अक्षर

लिखते हैं। क्यों कि उन्हें छपी हुई लिपिपुस्तकोंपरसे लिखनेका अभ्यास कराया जाता है। लेखनकला अभ्यासकारिणी है। छापा उसका निषेध नहीं करता है। हस्तलिखित ग्रन्थोंपरसे पढनेवालेको भी लिखनेका अभ्यास करना पडता है और छपे ग्रन्थोंपरसे पढनेवालेको भी करना पडता है, इसके विना सुन्दर लिखना नहीं आ सकता है। पाठशालाओंमें पढनेके सिवाय लिखनेका अभ्यास पृथक् कराया जाता है, जिसका छापेसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इतना अवश्य है कि छापेका आदर्श सम्मुख रहनेसे लेखनकलामें विशेष उत्कर्ष होता है। और यह भी नहीं कहा जा सकता कि, जब छपे ग्रन्थोंका प्रचार नहीं था, तब सब ही लोग सुलेखक होते थे। क्यों कि यथार्थमें इसका सम्बन्ध अभ्याससे है। हां! यह अवश्य है कि, इस समय लोगोंकी आवश्यकतायें और जीविकाके प्रपंच बहुत बढ गये हैं। उन्हें अवकाश बहुत थोडा मिलता है, इसलिये प्रायः पठनावस्थाके सिवाय वे कभी सुन्दर लिखनेमें परिश्रम नहीं करते हैं! परन्तु समयने जैसा कुछ करवट लिया है, उसे देखते हुए अब इस अवस्थाका बदलना शीघ्र संभव नहीं है।

ऐसा जान पडता है कि, पंडितजी अभी किसी भो॰ भाले वन्य प्रदेशसे यहां एकाएक आ धमके हैं, इससे आप बडे आश्चर्यके साथ कहते हैं कि, "आजकल थोडे लिखनेका कार्य भी यंत्रादिद्वारा ही लिया जाता है- जैसे कि, पोष्टकार्ड लिफाफा आदिके सरनामा भी छपे हुए प्रतीत होते हैं। पत्रादि भी प्रायः छापकर ही प्रसिद्ध किये जाते हैं।" इसके कारणका भी आपने पता लगा लिया है, सुनिये:—"ज्ञानकी मन्दताका पूर्वोक्त आलस्य मात्र कारण है।" लालबुझक्कडने एक वार हाथीके पैरोंके चिन्ह देखकर इसी प्रकारकी अटकल लगाई थी। उन्होंने अपने सहवासियोंसे कहा था;—"**पांयनि चक्की बांधकर, हरिण न कूदा होय**" बेचारे पंडितजीको इस विचित्र संसारका कुछ ज्ञान हो, तो समझें कि कार्ड लिफाफे क्यों छपाये जाते हैं! कभी महीने दो महीनेमें चार छह चिट्ठियोंके लिखनेका काम पडता होगा सो लिख लेते होंगे। बस इसीसे अनुमान कर लिया कि, यह ज्ञानकी मन्दता है, और आलस्यके कारणसे होती है। यदि कभी किसी प्रसिद्ध पत्रके आफिसमें जाकर देखा होता कि, प्रतिदिन कितनी चिट्ठियां रवाना होती हैं, तो मालूम होता कि, यह ज्ञानकी मन्दता है, अथवा समयकी बचत। अपने अमूल्य जीवनको ऐसे युक्तिशून्य गंदे

लेख लिखनेवाले क्या जाने कि, समयकी कितनी कीमत है। लाल बुझक्कडने क्या कभी स्वप्नमें भी सोचा होगा कि, एक ऐसा भी जानवर होता है जिसके चक्की जैसे पैर होते हैं।

आगे चलकर आप कहते हैं कि, "लिपिकार्य करनेवाले लेखकोंको महान परिश्रम होता है, इसलिये उनपर दया धारण करके छापेवाले यदि ग्रन्थ छपाते हों तो ऐसे दयालुओंको अन्न भक्षण न करके अपनी आत्माको आत्मघातसे दीर्घकालके लिये नरक भेजना श्रेयस्कर होगा। क्योंकि अन्नको भी कृषिजन अत्यन्त परिश्रमसे उत्पन्न करते हैं।" खूब कही! आप ही कल्पित लाभ माननेवाले और आप ही उसका खंडन करनेवाले! अजी नैयायिकजी! एक तो छापेवाले लोग लेखकोंपर दया करके यह काम करते नहीं है, और यदि थोडी देरके लिये ऐसा मान भी लिया जावे, तो यह तो कहिये कि यह किसानोंके परिश्रमका दृष्टान्त उसके साथ कैसे घटेगा? क्या आपके न्यायशास्त्रकी यही बानगी है? यदि लेखकोंका परिश्रम बचाकर छापेकी युक्तिसे ज्ञानसाधनरूप कार्य भलीभांति सिद्ध होता है, तो अवश्य ही उन्हें कष्ट देनेकी आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकारसे यदि कोई युक्ति ऐसी निकाली जावे कि, किसानोंके परिश्रम किये विना ही कल्पवृक्षोंके समान अन्न प्राप्त होने लगे, और उससे क्षुधानिवारणरूप कार्यकी सिद्धि होने लगे, तो ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो किसानोंको कष्ट देकर अन्न उत्पन्न करानेकी चेष्टा करेगा? इसमें आत्मघात करनेकी क्या आवश्यकता है? यह कौन नहीं जानता कि, तीसरे कालतक जब विना परिश्रम भोजन मिलता था, तब कहीं भी खेती नहीं होती थी। आपका दृष्टांत तो तब घटित होता, जब लेखकोंके कष्टसे दुखी होकर लोग ग्रन्थ पढना ही छोड देते। कृपानिधान! ऐसे विषम दृष्टान्तोंसे भोले भक्तोंको समझानेके दिन नहीं रहे। अब मुक्तावलीके सहारेसे कुछ समय तक टिकनेवाली दो चार युक्तियां लेकर आइये, नहीं तो चुप हो जाइये! ऐसी पोच टेंटेसे अब कुछ सिद्धि नहीं होगी।

आगे चलकर आप रोते हैं कि, "हा कष्ट! जिस देशका प्रधान व्यापार असिमसि कृषि था, जिससे कि सर्वजन अपना कुटुम्ब निर्विघ्न पालन करते थे, वही देश आज मसि (लिखाई) शून्य भूखों मरने लगा।" लीजिये, इस रोनेमें पंडितजीका प्रकांड पांडित्य टपक पडा! आप प्राचीन इतिहासका और अर्वाचीन स्थितिका भी विलक्षण ज्ञान रखते हैं! तभी तो आप फरमाते हैं कि, इस

देशके असिमसिकृषि प्रधान व्यापार थे और बेचारा वाणिज्य ? यह क्या उन दिनोंमें भी गोरोंके हाथ था ? हां। और यह तो कहिये कि आप मसि कर्मका कुछ अर्थ भी समझते हैं, या यों ही किसीसे सुन लिया है ? आज जो महाजनोंकी दुकानोंमें मुनीम गुमाश्ते हैं, सरकारी आफिसोंमें क्लार्क हैं, विलायती व्यापारियोंके यहां लिखने पढने वाले हैं, और डांकखानोंमें काम करनेवाले हैं, वे क्या मसि कर्म करनेवाले नहीं है ? क्या अकेले ग्रन्थ लिखनेवाले ही मसि कर्मके कन्ट्राक्टर (टेकेदार) हैं ? क्या जैनियोंके २००–४०० ग्रन्थ लिखने वालोंका रोजगार न रहनेसे ही देश भूखों मरने लगा ? बलिहारी है बुद्धिकी ! जिस वाणिज्यके नष्ट हो जानेसे देश रसातलको जा रहा है, उसपर आंसू डालना तो दूर रहा, आपने नाम तक नहीं लिया, और जो मसिकर्म आज अपरिमित बढ़ रहा है, उसके लिये आपको रोते २ हिचकी बंध गई है। आज मसिकर्म इतना बड़ा है, जितना पूर्वमें कभी नहीं बढा था। जरा सरकारी मनुष्यगणनाकी रिपोर्ट निकालकर देखिये कि, वर्तमान राज्यमें लिख पढकर आजीविका करनेवाले कितने मनुष्य हो गये हैं ? क्या इसकी आप और भी उन्नति चाहते हैं ? हम आशा करते हैं कि, पंडितजी अब आगे ऐसे विषयोंमें जिनका कि कुछ परिचय न हो, इस तरह हस्तक्षेप न किया करेंगे।

आगे चलकर आपने फिर अनधिकार प्रवेश किया है और छपाईका हिसाब फैलाकर दिखलाया है। निर्णयसागरकी छपी हुई लघुकौमुदीका उदाहरण देकर आपने सिद्ध किया है कि, ५०० श्लोकोंका छपा हुआ ग्रन्थ एक आनेमें पडता है, और छपानेवाले उसका चार आना मूल्य रखकर एकके चार करते हैं। हमको पंडितजीकी इस विद्वत्तापर दया आती है। यदि छपानेवालोंके नफेकी हद ही दिखलानी थी, तो फिर लघुकौमुदीका उदाहरण क्यों दिया ? तुलसीकृत रामायणपरसे हिसाब फैलाना[1] था। निर्णयसागरका छोटा रामायणका गुटका २५ फार्मका है, जिसके अनुमान तेरह चौदह हजार श्लोक होंगे। कपडेकी सुन्दर सुनहरी जिल्द बँधी है, बढियाँ बढियाँ चित्र हैं। कागज भी बुरा नहीं है। इतनेपर भी केवल सात आनेमें मिलता है। अब कहिये, इस हिसाबसे तो छापेवालोंने सोलह गुणा मुनाफा करके दुनियांको लूट डाला ! अस्तु

---

१ इस रामायणके गुटकेकी जिल्द ऐसी बढ़ियां है कि, यदि आप बाजारमें तयार करावेंगे, तो कमसे कम जिल्दकी बंधाई ही ॥) लगेंगे।

घबड़ाइये नहीं, लीजिये यह निर्णयसागरका ही छपाया हुआ अध्यात्मकल्पद्रुम है। इसमें १५०० के अनुमान श्लोक हैं, पर मूल्य वही आठ आना है!। इस हिसाबसे तो आनाके २०० ही श्लोक हुए। यह तो खूब हुआ "**टकासेर भाजी और टकासेर खाजा**"

पंडितजी! ऐसे विषयोंमें जरा सोच विचार कर कलम चलाया कीजिये, सबको एकही लकडीसे हांकनेकी आदत छोड़ दीजिये। आइये, हम आपको इसका तत्त्व बतलाये देते हैं। निर्णयसागरमें साधारणत: जैनहितैषी जैसे १६ पृष्ठोंकी (एक फार्म क्रौन साइज की) छपाई यदि आप एक हजार प्रतियां छपवावें तो १२) लगती है, परन्तु यदि उसीकी दो हजार प्रतियां छपवावेंगे, तो १५) लगेंगे, और तीनहजार छपवावेंगे तो १७)। इन बारह रुपयोंमें ८) वा १०) फार्म तो कंपोज (अक्षर जोडने) का होता है. और बाकी रुपया प्रत्येक हजारकी छपवाईका। यदि ५०० कापी छपवाई जावेंगी, तो भी कंपोज ८ वा १० लगेगा। इस तरह पुस्तककी जितनी अधिक प्रतियां छपेंगी, उतनी ही उसकी कम कीमत बैठेगी। रामायणकी एक एक बारमें बीस बीस तीस २ हजार प्रतियां निकलती हैं, और एकही वर्षमें बिक जाती है इसलिये वह रामायण ॥) में मिलती है। यदि उसकी एक ही हजार कापी छपती, तो कमसे कम उसकी कीमत १॥) अवश्य ही होती। अध्यात्मकल्पद्रुमकी केवल हजार प्रतियां मुद्रित हुई हैं, इसलिये ॥) में मिलती है, परन्तु यदि उसीकी चार छह हजार कापियां निकलती, तो आठ पैसेसे ज्यादामें नहीं मिलती।

अब छपाईके मुनाफेकी भी बात सुन लीजिये। हिसाब देखनेसे विदित हुआ कि, गतवर्ष जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालयने ५५००) की पुस्तकें बेची थीं, जिसमें खर्च बजा करके कुल ११००) रुपये मुनाफेमें रहे हैं। उसमें तीन ऐसे आदमी बराबर काम करते रहे हैं कि, यदि वे कहीं दूसरा व्यापार अथवा नौकरी करें, तो सहज ही कमसे कम प्रत्येक ५०) मासिक प्राप्त कर सकते हैं। बस, इसे ही आप तिगुना समझ लीजिये, और इसे ही चौगुना। यदि आपको विश्वास न हो, तो बम्बईमें रानीवालेंके ही किसी सेवकको लिख दीजिये, जो उक्त कार्यालयमें जाकर बही खातोंकी जांच करके आपको यथार्थ बात लिख भेजें। आशा है कि, ऐसा करनेसे आपका भ्रम दूर हो जावेगा।

पंडितजीके लेखसे यह बात तो सिद्ध हो चुकी कि, लिखाईकी अपेक्षा

छपाईमें सुभीता बहुत है और खर्च थोड़ा पड़ता है, परन्तु इस कमखर्चीमें आप एक बडा भारी दोष देते हैं। न्यायशास्त्रके महासमुद्रमें गहरी डुबकी लगाकर आपने एक अलभ्यपूर्व सूत्रका शोध किया है कि, "जिस पदार्थमें जितना धन व्यय होता है, उतना ही प्रेम होता है। (अत्र दृष्टान्तः) जब कि तरकारी चार आना सेर बिकती है, उसके भक्षणमें कुछ आनन्द ही और है, और जब वही तरकारी एक पैसाकी सेर बिके, उतना ही उसमें प्रेम या स्वाद हीन हो जाता है।*" इसका अभिप्राय यह है कि, ५०) में पद्मपुराण लिखाकर पढ़नेसे शेठ लोगोंको जो स्वाद आता है, किसी मन्दिर अथवा पुस्तकालयमें रक्खे हुए उसी पद्मपुराणके पढनसे निर्धन पंडितको वैसा स्वाद अथवा आनन्द नहीं आ सकता। क्योंकि विना पैसेके सब मजा फीका है। पंडितजीके उक्त सूत्रसे यह भी सिद्ध होता है कि—जो प्रतिमाजी स्वयं मन्दिरजी वनाकर प्रतिष्ठा कराई जाती हैं, उसके दर्शनमें जो आनन्द आता है वैसा दूसरोंकी प्रतिष्ठा कराई प्रतिमाके दर्शन करनेवालोंको नहिं आता है, अथवा जो आनन्द स्फटिकमणिमय मूल्यवान प्रतिमाके दर्शनमें आता है, वह १) २) रुपये न्योछावरवाली धातुपाषाणकी प्रतिमाजीके दर्शन करनेमें नहिं आता होगा। तथा अपने घरमें खर्च लगाकर गांठका खानेसे जो आनन्द आता है, वह शेठोंके यहां मुफ्ती पूरी कचौड़ियां उड़ानेमें हरगिज नहीं आता है। इस समयमें रुपये सेरके घीमें जो मधुरता और जो सचिक्कणता है, कोई कह सकता है कि, वही मधुरता और चिकनाई अकबरके समयमें होगी, जब कि रुपयेका ६ सेर घी विकता था!

विद्वान पंडितजीने अपने सूत्रकी वृत्तिमें यह नहीं समझाया कि, तरकारीके मिठाससे पैसेका क्या सम्बन्ध है? क्या पैसे अधिक देनेसे उसमें किसी विशेष रसका प्रादुर्भाव हो जाता है? अथवा कम पैसे देनेसे उसमेंसे कोई रस अन्तर्धान हो जाता है? हम आशा करते हैं कि, पाकशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाले

---

* पंडितोंकी वाक्यरचना ऐसी ही होती है। इसमें तर्क करनेका किसीको अधिकार नहीं है। यदि किसीको शुद्ध पढनेका ही शौक हो, तो "जब तब जैसे तैसे" आदि ऊपरसे मिलाकर पढ लिया करै। पंडितजीका सारा लेख व्याकरणकी अशुद्धियोंसे भरा पडा है। परन्तु उसकी आलोचना करनेकी हम आवश्यकता नहीं समझते हैं। **लेखक।**

पंडितजी इस स्वानुभवगोचर विषयको आगामी किसी अंकमें विस्तारित करके समझावेंगे, जिसमें साधारण बुद्धिवाले भी इसे समझ जावें, और आयन्दा कभी कोई खानेकी चीज सस्ते भावसे नहीं लें।

आगे चलकर पंडितजी एक दूसरा सिद्धान्त स्थापित करते हैं कि, "बहु-मूल्य पदार्थ अच्छे प्रकारसे स्थापित होते हैं, अल्प मूल्यवाले नहीं। यथा–बहु मूल्य सुवर्णालंकार या रत्नादि, यह अच्छे प्रकारसे लोहेकी तिजूरीमें रक्खे जाते हैं, और मृदिकादि[१] अल्प मूल्यवाले नहीं। पदार्थत्वेन अथवा उपकारवत्त्वेन दोनों ही सम हैं, परन्तु लौकिक जनोंकी अनादिकालीन प्रवृत्तिको रोकै कौन और किसके रोके रुक सकती है।" परन्तु पहलेके समान पंडितजीका यह सिद्धान्त भी बिलकुल पोच है। हमारी समझमें पदार्थका आदर अथवा अनादर उपकारकी अपेक्षासे होता है, मूल्यकी अपेक्षासे नहीं। यदि मूल्यकी अपेक्षासे आदरभाव स्थापित किया जावेगा, तो वह कुशास्त्र जो सुवर्णरत्न जडित अक्षरोंसे लिखा हुआ होगा, उस जैनग्रन्थकी अपेक्षा जो साधी स्याहीसे लिखा गया होगा, विशेष आदरणीय होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। उसका हम बिलकुल सत्कार नहीं करते हैं। क्योंकि जो उपकार जैनग्रन्थ कर सकते हैं, वह कुशास्त्र नहीं कर सकता। अतएव सिद्ध हुआ कि, आदर अनादर बुद्धि उपकारत्वेन उत्पन्न होती है, मूल्येन नहीं। इसके सिवाय पंडितजीने जो सोने और मिट्टीका दृष्टान्त दिया है, वह अत्यन्त विषम है। क्योंकि मिट्टी और सुवर्णमें जो असमानता है, वह छपे और हस्तलिखित ग्रन्थोंमें नहीं है। कारण जिनवचनत्वेन उभयत्र समानता है, अर्थात् जो जिनवाणी हाथसे अंकित होती है, वही मुद्रायंत्रसे अंकित होती है। केवल पुस्तकोद्धार क्रियामें अथवा अंकित करनेकी क्रियामें अन्तर है। अतएव (मिट्टी और सोनेके समान) उन दोनोंके आदरमें किसी भी प्रकार हीनाधिकता मानना बड़ी भारी भूल है। इस विषयमें आपके अविचारितरम्य दृष्टान्तके स्थानमें यह दृष्टान्त घटित करना चाहिये कि, हमारे पास एक सुवर्णकी थाली ऐसी है, जिसे

---

१ "**मृदिकादि**" सिद्धान्तकौमुदीसे सिद्ध होता है या आपके बनाये किसी नये व्याकरणसे? अथवा "**कैफियताधिक्यके**" समान यह भी किसी नई बिदुरटकसालमें ढालकर तयार किया गया है।

सुनारने हाथसे गढ़ी है। और दूसरी ऐसी है, जो यंत्रके द्वारा बनाई गई है। पहलीकी गढ़ाईमें हमें १) तोला देना पड़ा है, और दूसरीकी बनवाईमें केवल एक आना तोला। (क्योंकि यंत्रसे थोड़े समयमें सैकड़ों थालियां बन जाती हैं) इस तरहसे उन दोनों थालियोंकी बनावाईके मूल्यमें १६ गुणा अन्तर है। परंतु हम दोनोंको एक ही तिजोरीमें रखते हैं। ठीक इसी प्रकारसे छपे हुए और हस्तलिखित शास्त्रोंमें जिनवाणीपन जो कि सुवर्णस्थानीय है, समान है। केवल लेखनक्रिया और मुद्रणक्रियामें अन्तर है; जो कि पंडितजीके हिसाबसे दोनों थालियोंके समान सोलहगुणी ही होती है। ऐसी अवस्थामें जिनवाणीपनके मूल्यको न जानकर जो केवल प्रस्तुत करनेकी क्रियाके अन्तरसे हस्तालिखित और मुद्रित ग्रन्थोंके आदरमें न्यूनाधिकता करते हैं, वे अवश्य ही कुतर्की पक्षपातियोंके बहकाये हुए हैं।

आगे चलकर पंडितजी फरमाते हैं कि, "मूल्य कम लगनेसे हमारी पूज्य माताको लोग अशुद्ध स्थानोंमें जा पटकते हैं।" परंतु यह एक प्रकारका भ्रम है। पांवोंके नीचे अथवा अशुद्ध स्थानोंके पड़नेमें हमारा प्रमाद कारण है। और हम ही उसके दोषभाक् हैं, छपानेवाले नहीं। यदि लिखा हुआ ग्रन्थ भी इस तरह डाल दिया जावे, तो इसमें उसका लेखक दोषी नहीं हो सकता। लोगोंको इस प्रकारका उपदेश मिलना चाहिये कि, जिनवाणीका ऐसा अनादर मत करो। हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थोंमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं है। परन्तु जैनसमाजका ऐसा सौभाग्य कहां है? यहां तो सब असाध्य और अनिवार्य कार्योंमें अपनी सारी विद्वत्ता खर्च करनेवाले हैं। साध्यकार्योंकी ओर किसीका लक्ष्य ही नहीं जाता है। मुद्रित ग्रन्थोंका प्रचार रोकनेके लिये तो (जो कि असाध्य और अनिवार्य है) श्रीलाल जैसे अनेक लाल तयार हो जाते हैं, परन्तु उपदेश देकर अविनयके रोकनेमें जो कि हमारा इष्ट है और सुखसाध्य है कोई भी प्रवृत्त नहीं होता है।

सच पूछा जावे, तो इस अविनयके मूलकारण ऐसे ही महात्मा हैं. जो छपे ग्रन्थोंमेंसे जिनवाणीका सर्वापहार बतलाते हैं, और अपने असदुपदेशोंसे लोगोंकी बुद्धिको जिनवाणीके अनादर करनेमें प्रवृत्त करते हैं। जो लोग इनके वाग्जालमें नहीं फँसे हैं कि, वे छपे ग्रन्थोंको बराबर गद्दीपर बैठकर बांचते विनयसे हैं और हस्तलिखित ग्रन्थोंसे उन्हें किसी प्रकार भी कम नहीं समझते हैं।

हां, मूल्यके विषयमें हम एक बात कहना भूल गये कि, यदि मूल्य कम हो जानेसे अविनयकी वृद्धि होती है, तो शास्त्रदान करनेवालेके अविनयका तो कुछ पार ही नहीं रहैगा। क्योंकि यदि दो चार धनिक दो चार लाख ग्रन्थ लिखवाकर बांट देवेंगे, तो उससे भी तो ग्रन्थोंकी बहुलता हो जावेगी, और मुफ्तमें पानेवाले लोग छापेके समान उन ग्रन्थोंका भी अनादर करने लगेंगे। इसके सिवाय ऐसे सस्ते बल्कि मुफ्ती ग्रन्थोंके पढ़नेमें (बक़ौल आपके) उन्हें ता-दृश आनन्द भी नहीं आवेगा।

आगे चलकर पंडितजी कहते हैं कि, "जिसप्रकार तुम उस परम पुनीतोंके उन अपवित्र कि जिनमें सरेस आदि निद्य पदार्थ पडते हैं ऐसे यंत्रादिकोंमें मुद्रण करा गृह गृहमें अपने लाभके लिये अन्य भोले जीवोंको लाभ दिखा उससे उन्नति दिखाते हो, तब हम तुम्हारे समान यदि कुलाल द्वारा अरहन्तकी प्रतिमा बना गृह गृहमें पधरा दें, तो कहिये कितना ज्ञातिका धन बचै जो लक्षों रुपया बिम्बप्रतिष्ठामें व्यय होता है, वह सर्वांश बचै या नहीं!" पाठकोंको जानना चाहिये कि, छपानेवाले लोग इस बातको स्वीकार करते हैं कि, छपाते समय यह एक अविनय होता है कि, कंपोज (एकत्र किये हुए सीसेके अक्षरों) पर जिस बेलनसे स्याही लगाई जाती है, वह सरेसका बना हुआ होता है। बेलन स्याही लगाकर अलग हो जाता है, पीछे उसपर कागज पड़कर छपता है। इस तरह यद्यपि कागजसे बेलनका साक्षात सम्बध नहीं होता है, तो भी हम यह नहीं कहते कि, वह अविनय नहीं है। अविनय अवश्य है और उससे छापेवाले दुःखित भी होते हैं, परन्तु इससे छापेका निषेध नहीं किया जा सकता है। क्योंकि सरेसके बेलनके स्थानमें रबरके बेलनसे काम हो सकता है। इतना ही क्यों शुद्ध कागज, शुद्ध स्याही, और शुद्ध उच्चकुलके मनुष्य आदि सब बातोंका प्रबन्ध हो सकता है। परंतु यह करै कौन? छपानेवालोंके पास तो धन नहीं है, जो घरका प्रेस खोलकर शुद्धतापूर्वक काम चलावें, और धनिक लोगों-को बुद्धि नहीं है, जिससे विचारकर एक अच्छा प्रेस खोल दें, और इस अवि-नयके विवादका मूल ही नष्ट कर दें। उन्होंने तो 'छपाने' की निंदा करनेसे पुण्य समझ रक्खा है और खुशामदी पंडितोंने 'हां में हां' मिलानेमें ही परम पुरुषार्थ समझ रक्खा है।

कुलालके दृष्टान्तके विषयमें इतना ही कहना बस होगा कि, प्रतिमायें प्रत्येक

जैनीके घरमें होना चाहिये। उनकी जितनी अधिकता होगी, उतनी ही अच्छी होगी। फिर चाहे वे कुंभारसे बनवाई जावें, चाहे शिल्पीसे बनवाई जावें। हमारी समझमें दोनों ही समान हैं। कुंभारकी बनाई हुई प्रतिमाका कहीं भी निषेध नहीं किया गया है। यही क्यों हमें तो अतदाकार मूर्तिके भी पूजनेकी आज्ञा है। इसके सिवाय जिसप्रकार लाखों रुपये लगाकर प्रतिष्ठा करानेसे प्रतिमा पूज्य होती हैं, उसीप्रकार दश बीस रुपयेकी प्रतिष्ठासे भी पूज्य हो जाती है। क्यों कि पूज्यता न रुपयोंसे आती है और न शिल्पी अथवा कुंभारके हाथसे। वह तो केवल मंत्रविधानसे आती है। इसीप्रकारसे जैनग्रन्थ भी रुपयेसे, हाथसे लिखानेसे अथवा छपानेसे पूज्य नहीं होते किन्तु उनकी पूज्यता उनके विषयमें है। उनका प्रचार घर घरमें होना चाहिये। यही छपानेवालोंकी आन्तरिक इच्छा है। वह किसीप्रकारसे हो, लिखाकर हो, अथवा छपाकर हो। बहुत रुपये लगाकर हो, अथवा थोडे रुपये लगाकर हो। **श्री सोमदेव सूरिके "नादेवं देहप्रासादं कुर्यात्"** अर्थात् "अपने रहनेका घर देवरहित नहीं बनाना चाहिये।" इस वाक्यसे जिसप्रकार प्रत्येक गृहमें प्रतिमाओंकी आवश्यकता है, उसी प्रकार बल्कि उससे भी अधिक आवश्यकता घर घरमें जैनग्रंथोंके होनेकी है।

आगे चलकर पंडितजीने छापेवालोंको बहुतसी गालियां दीं हैं, जिनका हम उत्तर देनेमें असमर्थ हैं। हम छापेवालोंकी ओरसे केवल इतना ही कहकर आगें चलते हैं कि,–

"ददतु ददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तो
वयमिह तदभावाद्गालिदानेऽसमर्थाः।
जगति विदितमेतद्दीयते वि मानं।
न हि शशकविषाणं कोऽपि कस्मै ददाति॥"

अर्थात्–आप गालीवालें हैं। इसलिये गाली देते जाइये। हम दे नहीं सकते हैं, क्योंकि हमारे पास गालियोंका अभाव है। यह बात संसारमें सबहीको विदित है कि, जिसके पास जो वस्तु होती है, वह वही देता है। किंतु शशाके सींग कोई किसीको नहीं दे सकता है।

आगे चलकर श्रीलालजीने ग्रन्थोंके छपानेमें अविनय सिद्ध करना चाहा है और उसके साथ सम्मेदशिखरजीका दृष्टान्त दिया है। परन्तु यथार्थमें ग्रन्थमुद्रणमें इस प्रकारसे अविनय सिद्ध करना टेडी खीर है। क्योंकि अविनय परिणामोंसे होता

है और छपानेवालोंके ऐसे परिणाम कभी नहीं रहते हैं कि,–हमारी कृतिसे अविनय हो। उनकी निरन्तर यही सदिच्छा रहती है कि, जैनग्रन्थोंका घर घरमें प्रवेश हो और सब लोग अभ्यास करें। देखिये हम, सम्मेदशिखरको आमूल शिखरान्त पूज्य मानते हैं, और प्रतिदिन अर्घ चढाते हैं। परन्तु जब बन्दनाको जाते हैं, तब उसी पूज्यभूमिपर पैर रखते हुए जाते हैं। यह क्या अविनयकी क्रिया नहीं है? परन्तु इसमें हमारे परिणाम अविनयरूप नहीं होते हैं, इसीसे अविनय नहीं होता है। ग्रन्थोंके छपानेके विषयमें भी इसीप्रकार समझ लेना चाहिये।

दूसरे सम्मेदशिखरजीका जो दृष्टान्त दिया है, वह अतिशय विषम है। अफसोस है कि, आपको एक भी दृष्टान्त ऐसा नहीं मिला, जो किसी अंशमें घटित होता। सम्मेदशिखरजीपर बंगले बननेसे जैसा अवर्णवाद होगा, वैसा जिनवाणीका छपनेसे नहीं होता है। क्योंकि जैसे वहां पर्वतके स्वरूपका घात होनेकी संभावना है, छपानेसे जिनवाणीके स्वरूपका घात होनेकी वैसी संभावना नहीं है। अर्थात् शिखरजीपर बंगले बननेसे उसका वीत-रागभावरूप स्वरूप नष्ट हो जावेगा। परन्तु छपनेसे जिनवाणीके स्वरूपमें अन्तर नहीं पडता है। हस्तलिखित पुस्तकोंमें जो मोक्षकी कारणता है, वही छपी हुईमें भी मौजूद है। क्योंकि कीलके अक्षरोंमें और कलमके अक्षरोंमें कुछ रूपांतर नहीं होता है। परंतु सम्मेदशिखरके किसी स्थानमें बैठनेसे अभी जिस प्रकार ध्यान लगता है, और आत्माको शांतिसुख प्राप्त होता है, बंगले बन जानेपर गोरोंके राक्षसी कृत्योंकी सघनतासे वह सुख स्वप्नवत हो जावेगा। यही उसके स्वरूपका घात है।

गालियां देते देते थककर आगे पंडितजीने "छापेमें अशुद्धियां कम होती हैं" इस बातका खंडन किया है। परंतु विचारदृष्टिसे देखा जावे तो शुद्धियों अशुद्धियोंका कारण न तो छापा है, और न हस्तलेख क्योंकि छपानेमें भी अशुद्धियां हो सकती हैं और लिखानेमें भी हो सकती हैं। छपानेसे शुद्ध छप सकता है, और लिखानेसे भी शुद्ध लिखा जा सकता है, यह सब छपानेवालों तथा लिखनेवालोंकी योग्यतापर निर्भर है। यदि छपानेवाला विद्वान तथा संशोधक होगा तो ग्रंथ शुद्ध छपेगा, मूर्ख होगा तो अशुद्ध छपेगा। हाथके लिखनेमें भी यही बात है। परंतु मुद्रणविषयका जिसे कुछ भी ज्ञान है, वह यह अवश्य स्वीकार

करेगा कि, सामान्य तथा समूहदृष्टिसे देखा जावे, तो छपे ग्रंथोंमें कम अशुद्धियां होतीं हैं। क्योंकि वर्तमान समयमें जो ग्रंथ लिखनेवाले हैं, वे प्रायः बुद्धि-शून्य होते हैं, इसलिये उनके द्वारा ग्रन्थ अशुद्ध लिखे जाते हैं, और परम्परासे उनकी अशुद्धता बढती ही जाती है[1]। परन्तु ग्रन्थ छपानेवाले (दो एकको छोडकर) ऐसे विद्वानोंसे ग्रंथ संशोधन कराते हैं, जो श्री-लालजी जैसे महाशयोंको दो चार वर्ष पढ़ा सकते हैं। उनके द्वारा संशोधित हुए ग्रन्थोंमें लेखकों जैसी "रामको रावण" अथवा "आप्तको आफत" लिखनेकी अशुद्धियां नहीं होती हैं। हम यह नहीं कहते कि, अशुद्धियोंका सर्वथा अभाव हो जाता है, परन्तु यह अवश्य है कि, उन अशुद्धियोंमें अर्थका अनर्थ होनेकी संभावना बहुत कम रहती है। इतने पर भी यदि छपनेमें अशुद्धियां रहती हैं, तो उनके रोकनेका प्रबन्ध हो सकता है और वह हाथकी लिखाईसे कहीं अच्छा हो सकता है। क्योंकि सब लेखक ऐसे नहीं मिल सकते, परन्तु छपनेवाले ग्रन्थोंको शोधनेवाले दो चार विद्वान सहज ही मिल सकते हैं, जिनकी अतिशय शुद्ध की हुई एक प्रतिसे हजार दो हजार प्रतियां तयार कराई जा सकतीं हैं।

आपने जो अशुद्धियोंका हिसाब लगाया है, वह यदि हस्तलिखितमें लगाया जावेगा, तो एक ही ग्रन्थमें हजारों अशुद्धियां हो जावेंगी। जो ग्रन्थ छपाये जाते हैं, वे प्रायः दो २ तीन २ प्रतियोंसे शुद्ध किये जाते हैं; इसलिये एक तो उनकी अशुद्धि दूसरे ग्रन्थमें देखनेका प्रायः काम ही नहीं पडता है। और यदि कभी पडता है, तो उसमें हस्तलिखित ग्रन्थोंकी अशुद्धियां देखनेके लिये दूसरे हस्तलिखित ग्रन्थके खोजनेमें जो कष्ट पडता है, उससे अधिक कष्ट नहीं पड़ता है।

आगे चलकर आप हमारे पक्षको स्वीकार करते हुए कहते हैं कि, "यदि लिखित अपेक्षा छापेमें कम ही अशुद्धि मानी जावें, तब भी कुछ कार्यकारी नहीं है। यदि केवल अज्ञजनोंने शुद्ध पढ ही लिया, तब भी कुछ प्रयोजन नहीं

---

१ जब रुपयेको २० सेर आटा मिलता था, तब भी दो तीन रुपये हजारकी लिखाई दी जाती थी, और अब रुपयेका ८ सेर मिलता है, तब भी उतनी ही दी जाती है। ऐसी अवस्थामें लेखक सम्प्रदाय मूर्ख क्यों नहीं हो? और जो पढे लिखे बुद्धिमान होंगे, वे ऐसी भूखों मरनेकी आजीविका क्यों करेंगे?

और अशुद्ध लिखित ही पढा, तब भी कुछ प्रयोजन नहीं। परन्तु यदि पढा ज्ञानीने तब शुद्धके विषयमें तो कहना ही नहीं, रहा अशुद्ध वह पठनसे वा विचारसे शुद्ध हो ही जायगा. पुन: निरर्थक उसकी किया क्यों करी ? " बेशक पंडितजी ! ग्रन्थोंका शुद्ध लिखाना छपाना आपकी उक्त अभूतपूर्वा युक्तिसे निरर्थक हो गया ! क्योंकि यह सब प्रयत्न पंडितोंके लिये है सो पंडित तो स्वयंबुद्ध होते हैं, और मूर्खोंके लिये जरूरत नहीं है।

आगे चलकर लालबुझक्कडजी एक पौराणिक कथाका दृष्टान्त देकर अपने भक्तोंकी आंखोंमें इसप्रकार धूल डालते हैं कि ' वह सुभूम: नाम चक्रवर्ती एक णमोकार मंत्रको बिगाडकर नरक पहुंचा था जहां सर्व ही टाइप विस्मारकर दिये जाँय, उन्हें* कौनसां नरक भिजवाया जाय ?" पाठकोंको जानना चाहिये कि, सुभूम चक्रवर्तिने परिणामोंकी दुष्टतासे सम्यक्त्वकी हानि करके णमोकार मंत्रको पैरके अंगूठेसे मिटाया था। परन्तु यहां यह बात नहीं है। छपानेमें जिन सीसेके अक्षरोंका संयोजन विशृंखलन होता है, वे अक्षर पहिले बने हुए होते हैं, और पीछे भी बने रहते हैं मिटाये नहीं जाते हैं। जैसे इन्द्र समवसरणको रचकर एकस्थानमें १५ दिनसे अधिक नहीं रखता है। १५ दिनके पश्चात् वह उसे मिटाकर दूसरे स्थानमें रख देता है। उस समवसरणमें जो चैत्य वृक्ष, जिनमंदिर, जिनविम्बादि होते हैं, वे सब विशृंखलित कर दिये जाते हैं। परन्तु हमने कहीं भी नहीं सुना कि, कोई इन्द्र नरकको गया हो। हम लोग मंदिरोंमें मंडल बनाकर उनमें **ओं** आदि शब्द (जो णमोकार स्वरूप हैं) तथा मंदिरोंके आकारादि बनाते हैं, सांथिया बनाते हैं, और फिर मिटा डालते हैं, परन्तु उनसे पुण्यबंध ही करते हैं। इसके सिवाय विद्यारंभके समय पिता अपने पुत्रसे पट्टीपर **ओंनम: सिद्धेभ्य:** अनेकवार लिखवाता है, और साफ करवाता है। परन्तु उसे कोई भी पापी नहीं कहता है। न मालूम ऐसे पोचे जालसाजीके दृष्टांत देकर पंडितजीने क्या लाभ सोचा है।

आगे चलकर छपे हुए ग्रन्थोंके चौथेलाभका खंडन करतेहुए आप कहते हैं कि, " आज सनातनधर्मके शास्त्रोंको छपे बहुत दिन हो गये, कहिये कितने विद्वान हो गये ? प्राचीनकालकेसे विद्वान उनके यहां भी नहीं हैं कारण क्या कि

---

* '**जहां**' के उत्तरमें यह '**उन्हें**' का प्रयोग तो अपूर्व ही हुआ है। बाहरी हिन्दी।

गृह गृहमें शास्त्र हैं, "जब इच्छा होगी, तब देख लेंगे" ऐसा विचार उसको कंठस्थ अथवा धारण करने देता ही नही।" पंडित श्रीलालजी सनातन धर्म शायद वैष्णवधर्मको कहते हैं। क्यों नहीं! उनके ग्रन्थोंका इतना भी असर न होता, तो वह पढना ही क्या कहलाया? अस्तु। पंडितजीकी मर्जी, वे जिसे चाहे कहें, हम तो सनातनधर्म अपने पवित्र जैनधर्मको ही कहेंगे।

जिस समय आपके सनातन धर्मके विद्वान् होते थे, उस समय संस्कृत विद्याको राजाश्रय बडा भारी था। जिसप्रकार आजकल जर्मनी इंग्लेंड आदि देशोंमें नये नये तत्त्वोंकी-विद्याओंकी खोज करनेवाले विद्वानोंको बैठे २ परिपूर्ण आर्थिक सहायता मिलती है, उसीप्रकार इस देशके विद्वानोंको भी राजाओंके यहांसे जागीरें लगी थीं, जिससे वे जीवनपर्यन्त विद्याभ्यास करते रहते थे। इसके सिवाय वह समय भी ऐसा था कि, ब्राह्मणोंको पेटकी चिन्ता ही नहीं रहती थी। दो घर भिक्षा मांगनेसे पेटकी पूर्ति हो जाती थी परन्तु अब वह समय नहीं रहा है। अब अंग्रेजीका जमाना है। संस्कृतके अच्छे २ विद्वान पंद्रह २ बीस २ रुपयेकी जीविकाके लिये मारे मारे फिरते हैं। बेचारे अपने कुटुम्बका भी पालन नहीं कर सकते हैं। भिक्षामें एक मनुष्यका पेट भरना भी आजकल मुश्किल है। श्रद्धालुओंके स्थानमें शून्य है। फिर कहिये विद्वान कहांसे हों? उन्हें छपी हुई पुस्तकें विद्वान बना सकती है, परंतु धनवान नहीं बना सकती हैं हम पंडितजीसे पूछते हैं कि लोग पुस्तकें पढेंगे, तब विद्वान बनेंगे या विना पढे ही! पहले जैसे विद्वान अब नहीं होते हैं, इसका यही कारण है।

यह बात दूसरी है कि, आजकल पहले जैसे विद्वान नहीं होते हैं, परन्तु विविध प्रकारकी पुस्तकोंके प्रचारसे सर्व साधारण लोगोंमें जितनी ज्ञानकी वृद्धि हुई है, उतनी पहले नहीं थी। पहले केवल ब्राह्मण पढते थे, परन्तु आजकल पुस्तकोंकी सुलभतासे सामान्य लोगोंमें जो ज्ञानका प्रचार हुआ है, वह थोडा नहीं है उसे प्रत्येक विद्वान स्वीकार करता है। जिसप्रकार आजकल पुस्तकोंकी सुलभता हुई है, उसीप्रकारसे यदि जीविकाकी और राजाश्रयकी भी सुलभता हो जावे, तो संस्कृतविद्याकी इतनी उन्नति हो सकती है, जितनी हजार दो हजार वर्षसे भी नहीं हुई होगी। यह भी स्मरण रखिये कि,-जिसप्रकार आजकल जीवनरक्षा कठिन हो गई है, उसीप्रकारसे यदि पुस्तकोंकी प्राप्ति भी कठिन हो जाती, तो यह जो कुछ बची खुची विद्या दिखती है, वह भी मृतप्राय हो जाती। अब वह

समय नहीं रहा है, जो कठिनाईसे अपने कुटुम्बका पालन करनेवाला पिता अपने पुत्रके पढनेके लिये सौ दो सौ रुपयेके ग्रन्थ लिखवाकर मंगा देवे। जिस देशमें १२ करोड़ मनुष्य आधा पेट अन्न खाकर सो जाते हैं, उस देशमें हस्तलिखित बहुमूल्य ग्रन्थोंके पढ़नेकी सामर्थ्य नहीं हो सकती है।

पंडितजीकी विद्वत्ताका पार नहीं है। आज जो कहते हैं कि, "घर घरमें ग्रन्थ हो जानेसे उन्हें धारण करनेकी ओर प्रवृत्ति नहीं होती है।" इससे तो जान पडता है कि, आप केवल छापेके ही विरोधी नहीं, किन्तु ग्रन्थोंकी बहुलताके भी विरोधी हैं। क्योंकि हस्तलिखित ग्रन्थ भी यदि घर घरमें हो जावेंगे, तो लोग कंठ करनेसे उपेक्षा करने लगेंगे। इस युक्तिमें तो पंडितजीने हद्द कर दी! छापेका निषेध करनेके लिये इससे अच्छी युक्ति और क्या मिल सकती थी?

आगे चलकर पंडितजी और भी कहते हैं कि, "अथवा जबसे अपने शास्त्र छपे हैं, तबसे ही बताइये कि, कितने विद्वान् हो गये? प्रत्युत यों कहिये कि, जैसे प्राचीन कालमें हस्तलिखित ग्रन्थोंसे धुरन्धर विद्वान होते थे, उनके कहे हुएको जान लें, ऐसे भी आज नहीं है, और जो हैं वह वे ही हैं, जिन्होंने हस्तलिखित शास्त्रोंका अध्ययन किया है। फिर किसप्रकार जान लिया जाय कि, उन्नति छापेसे है?" अजी! आपसे ऐसा कौन बेसमझ कहता है? आप हरगिज न मानिये! बीस और बीस चालीस अपने माननेसे ही होंगे, किसीके कहनेसे नहीं हो सकते! परन्तु (कुसूर माफ हो) यह तो कहिये कि, आप और आपके श्रद्धास्पद मेवारामजी क्या सब हस्तलिखित ग्रन्थ पढकर ही पंडितमन्य हुए हैं? महाशयजी विद्वान होनेके लिये केवल मुद्रित ग्रन्थ ही साधन नहीं है, उनके साथ २ पाठशालादि साधनोंकी भी आवश्यकता है। यदि आपके सज्जनोत्तम पिताजी अलीगढकी आदि पाठशालाको मटियामेट न कर डालते, तो आज उसी पाठशालासे २०-२५ विद्वान और भी तयार हो जाते। परन्तु जैनसमाजका ऐसा सौभाग्य कहां है? इस जातिमें एक तो ऐसे उत्पन्न होते हैं, जो पाठशाला जैसे साधनको नष्ट करते हैं, और दूसरे ऐसे होते हैं, जो छपे ग्रन्थोंके साधनपर अपनी कलम कुठार चलाते हैं! अर्थात् सब साधनोंको एकत्र करके विद्याका प्रचार कोई भी नहीं करना चाहता है।

जैनियोंमें जो पहले विद्वान होते थे, उसका सबसे बडा कारण तो यह था कि, उस समय मुनि, ब्रह्मचारी और अर्जिकाओंका समूह बहुत था, जिसकेद्वारा

बहुत सुगमतासे विद्याका प्रचार होता था परन्तु आज उनका सर्वथा अभाव हो गया है। इसके सिवाय गत सौ वर्षोंमें जो विद्वान हुए हैं, वे संसार-निर्वाहके सुगम साधनोंसे, गुरुपरम्परासे और आत्मकल्याणकी उत्कट इच्छासे हुए हैं। परन्तु अब उक्त साधनोंका भी अभाव हो रहा है। अब सारा दार मदार पुस्तकोंके प्रचारपर है। यदि आप जैसे धर्मात्माओंकी शनिदृष्टि इसपर भी सफल हो गई, तो फिर रहा सहा भी चौपट हुआ समझिये।

जैनियोंमें छापेका प्रचार हुए अभी ६-७ वर्ष ही हुए हैं। फिर उससे विद्वान हुए हैं कि नहीं, इसका निर्णय अभी कैसे हो सकता है? हां, यह कहिये कि, वर्तमानमें जो विद्वानोंका अभाव देखा जाता है, वह छापेके न होनेका ही फल है। अन्य साधनोंके नष्ट होनेपर यदि पुस्तकोंकी सुलभता बनी रहती, तो ऐसा नहीं होता। वर्तमानमें जो कुछ हो रहा है, उसका फल १० वर्ष पीछे प्रगट होगा।

आप जैसे कूपमंडूकोंको जिन्हें संसारकी गतिका कुछ भी अनुभव नहीं है, यह कैसे बतलाया जावे कि, छापेसे उन्नति हो रही है, या नहीं? जो ग्रन्थ विना गुरुकी सहायतासे पढ जा सकते हैं, देखिये कि, आज उन्हें घर घरमें कितने स्त्री पुरुष और बालक पढ रहे हैं! आज हजारों स्थानोंमें जैनग्रन्थोंकी सामान्य चरचा करनेवाले लोग देखे जाते हैं? दक्षिण प्रान्तमें जहां धर्मविद्याकी सर्वथा समाप्ति हुई जाती थी, छापेके प्रतापसे आज वहां सैकडों स्थानोंमें शास्त्रस्वाध्याय होने लगा है। ४-६ विद्वानोंके सिवाय जिस रत्नकरंडका लोग नाम भी नहीं जानते थे, आज जैनियोंमें उसको कंठस्थ रखनेवाले दो सौ चार सौ पुरुषोंसे कम न निकलेंगे। गत ५-६ वर्षोंमें उसकी कमसे कम ५-६ हजार प्रतियोंका प्रचार हो चुका है। क्या यह सब विद्याकी उन्नति नहीं है? एक वर्षमें तत्त्वार्थसूत्र टीकाकी हजार प्रतियां उठ जाना, और भक्तामर टीकाकी ६ महीनेमें हजार प्रतियां समाप्त हो जाना, क्या धर्मविद्याकी उन्नतिके दर्शक चिह्न नहीं हैं?

विद्याकी उन्नतिका सबसे बडा साधन ग्रन्थोंका प्रचार है। आज जो हमारे सौभाग्यसे धर्मचर्चाके जाननेवाले लोग हैं वे, भाषा ग्रन्थोंकी सुलभतासे हुए हैं। यदि जयपुरके विद्वान् हमारे ग्रन्थोंकी भाषा करके प्रचार न करते, तो

आज गुजरात दक्षिण आदि प्रान्तोंकी समान हमारा प्रदेश भी धर्मविद्यासे शून्य हो जाता। क्योंकि गुजराती और दक्षिणी भाषामें ग्रन्थोंका अभाव होनेसे ही आज उक्त प्रदेश धर्मविद्यासे सर्वथा रहित हो रहा है। हमारे यहां त्रिवर्णाचार षोडशसंस्कार ग्रन्थकी एक भी भाषाटीका नहीं है। जिसका फल यह हुआ है कि, हम त्रिवर्णाचारकी सम्पूर्ण विधियां भूल गये हैं। परंतु यदि आज वही ग्रन्थ भाषानुवाद सहित छपा दिया जावे, तो दश ही पांच वर्षमें उसके मर्मज्ञ हो जावें। यदि ग्रन्थोंको आप तथा आपके पिता वगैरह पढते तो कदापि आप अपनी लडकीका विवाह मिथ्यातियोंकी विवाहपद्धतिसे नहिं कराते। इससे सिद्ध है कि, ग्रन्थोंका प्रचार तथा ग्रन्थोंकी बहुलता ही विद्योन्नतिका मुख्य साधन है।

आगे चलकर पंडितजी पूछते हैं कि, "क्या छापेहीसे गौरव होगा, लिखितसे नहीं?" उत्तरमें निवेदन है कि, यह हमारा पक्ष नहीं है कि, लिखितसे गौरव नहीं होगा। परन्तु कृपानिधानजी! जिनकी आप आशा करते हैं, उन धनिकोंमें ऐसा कौन है, जो लाखों ग्रन्थ लिखवा लिखवाकर लोगों की ग्रन्थ पढनेकी बढती हुई तृष्णाको शान्त करेगा? उन वेचारोंमें खुद लिखवाकर पढनेका भी सामर्थ्य नहीं है, तो फिर दूसरोंको लिखवा २ कर कहांसे देंगे? और लोगोंके पास इतना द्रव्य ही कहां है, जो ग्रन्थ लिखा २ कर पढेंगे। यदि आपकी प्रेरणासे कोई धनिक ऐसा कार्यालय खोलें, और लोगोंको सस्ते दामोंमें ग्रन्थ लिखा लिखा कर भेजे, तो बहुत हर्षकी बात है।

आगे चलकर आपने बहुतसा ऊंटपटांग लिखा है, जिसका सारांश यह है कि, "ग्रन्थ छप जानेसे शंभुदत्त जैसे दुष्टोंके हाथमें जा पडते हैं, और उससे जैन मतसमीक्षा जैसी पुस्तकें बनती हैं, जिससे गौरवके स्थानमें धर्म और धनका नाश होता है।" हम पूछते हैं, यदि जैनग्रन्थ छपे न होते, तो क्या आर्यसमाजियोंको हस्तलिखित ग्रन्थ नहीं मिलते? आपसे यदि उनका कोई विद्वान् दिदृच्छासे ग्रन्थ मांगता, तो क्या आप उसे नहीं देते? इससे तो यह सिद्ध हुआ कि, उनके डरसे ग्रन्थ लिखवाना भी नहीं चाहिये। मुसलमानोंनें हमारी हजारों प्रतिमायें तोड फोड डाली, तो क्या उन प्रतिमाओंके बनवानेवाले पापी हो गये? क्यों कि न वे बनवाते, और न मुसलमानोंके हाथमें प्रतिमायें पडतीं।

यह ठीक है कि, जहां लाल कांचका और मांणिकका अन्तर जाननेवाला न हो, वहां रत्नविक्रय नहीं करना चाहिये। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि, रत्नोंका विक्रय करना ही छोड देना चाहिये। शंभुदत्त जैसे अपरीक्षकोंको जैनग्रन्थ–रत्न नहीं दिखलाना चाहिये, यह ठीक है, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता है कि, जैनग्रन्थरत्नोंके दिखानेका व्यवसाय ही छोड देना चाहिये। जो ग्रन्थ छपाये जाते हैं, वे भिन्न धर्मियोंके लिये नहीं, किन्तु जैनियोंके लिये छपाये जाते हैं। इतनेपर भी यदि भिन्नधर्मी उन्हें प्राप्त करके अर्थका अनर्थ करें, तो इसमें छपानेवालोंका कोई दोष सिद्ध नहीं हो सकता है और यह भी तो नहीं कहा जा सकता है कि, अन्य धर्मियोंमें पात्र नहीं होते हैं। आज यदि हमारे ग्रन्थ प्रकाशित न होते, तो जैनधर्मके मस्तकपरसे बौद्ध धर्मका लगा हुआ कलंकका टीका साफ नहीं होता। इस समय भी इस पवित्र धर्मके विषयमें जिन लोगोंकी उलटी समझ हो रही है, वह आप जैसे महात्माओंकी कृपाहीका फल है। यदि उस वर्ष खुर्जेवाले शेठ जैन ग्रन्थोंके छपानेको तयार हो जाते, तो पं. राममिश्रशास्त्रीकी कृपासे काशीके राजकीय संस्कृत विद्यालय किन्स कालेजमें जैनग्रन्थ भरती हो जाते, और तबसे अबतक बीसों विद्वान जैन-धर्मके अकाट्य तत्त्वोंसे परिचित हो जाते।

इसके सिवाय शंकराचार्यने जो स्याद्वादका अर्थ "कुछ सच और कुछ झूठ" लिखा है और जैनियोंके मन्दिरोंमें भी जानेका निषेध किया है, सो क्या उस समय भी ग्रन्थ छपते थे? यदि नहीं छपते थे, और हस्तलिखित ग्रन्थोंपरसे ही उन्होंने मनमाना अर्थ किया था, तो वेचारे छापेके ऊपर ही यह दोष क्यों मढा जाता है?

दूसरे लोगोंके डरसे जो आप अपने ग्रन्थ छुपाना चाहते हैं, इससे तो यह ही प्रगट होता है कि, आप अन्य धर्मके ग्रन्थोंकी नाई अपने ग्रन्थोंको भी पोच समझते हैं। अवश्य ही आपकेहृदयमें मिथ्याग्रन्थोंके पढनेसे जो मिथ्यात्वकी वासना भर रही है, उसीका यह फल है। कृपानिधानजी। कुछ दिनों परिश्रम करके जैनधर्मका रहस्य देखिये, जिससे यह वासना दूर हो जावे। यदि आपका धर्म सच्चा है, तो उसे दूसरोंके डरसे छुपानेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि "**सत्यमेव जयति नानृतम्**" जो सच्चा है, उसे शंभुदत्त जैसे सैकडों दुष्ट भी झूठा सिद्ध नहीं कर सकेंगे, यह विश्वास रखिये।

आगे चलकर पंडितजी कहते हैं कि, " उन्नतिका मार्ग है, श्रेष्ठ विद्वानोंका सार्वजनिक व्याख्यान । उससे कुछ श्रद्धा आपके धर्मपर होनी संभव है शास्त्र छपाकर उनको दे देना, केवल रत्न धूलमें फेकनेके समान है । " हम पूछते हैं कि, शास्त्रोंको बांचनेके समान व्याख्यान सुनकर भी क्या शंभुदत्त जैसे छिद्रान्वेषी वैसे अनुचित आक्षेप नहीं कर सकते हैं ? क्या वह व्याख्यान अक्षरशः लिखा नहीं जा सकता है ? और फिर क्या उसका प्रमाण नहीं दिया जा सकता है कि, अमुक विद्वानने ऐसा कहा था ? महात्मन ! श्रद्धा यदि व्याख्यानसे हो सकती है, तो ग्रन्थोंसे नहीं होगी, यह कैसे कहा जा सकता है ? हमारी समझमें व्याख्यानकी अपेक्षा ग्रन्थके मननसे ही अधिक श्रद्धा होती है । वास्तवमें श्रद्धा परिणामोंकी सरलता और परीक्षक बुद्धिसे सम्बन्ध रखती है उसमें व्याख्यान अथवा पुस्तक एक साधारण कारण है । दुष्ट परिणामवालोंके लिये व्याख्यान और ग्रन्थ दोनों ही बराबर हैं । अतएव उन्हें व्याख्यान सुनाना भी धूलमें रत्न फैंकनेके समान है ।

आगे चलकर पंडितजी महाशय न्यायमूर्ति बनकर फरमाते हैं कि, " समीक्षाके मुकद्दमेमें जो रुपया खर्च हुआ वह ग्रन्थ छपानेवालोंसे क्यों न वसूल किया जावे ? क्योंकि उनके ग्रंथ छपानेसे समीक्षाकी उत्पत्ति हुई थी । " खासा अन्धेर नगरीवाला न्याय हुआ । न बनियेंकी दीवाल गिरती और न बकरी मरती । हम कहते हैं, वह रुपया उन आचार्य तथा विद्वानोंसे ही वसूल करनेकी कोशिश क्यों न की जावे, जिनके ग्रन्थोंसे जैनमतसमीक्षाका अवतार हुआ । न वे ऐसी पुस्तकें रचते और न समीक्षा लिखी जाती ।

आगे पंडितजीने ललकारा है कि, "कोई छापिया महाशय छपनेमें और कोई लाभ बतलावेंग, तो उनका सहेतुक खंडन किया जावेगा ।" परन्तु अब आप व्यर्थ परिश्रम न कीजिये ! आप जानते ही नहीं है कि, हेतु किस चिडियाका नाम है । आपके हेतुओंका नमूना देख लिया । सिवाय गालियां देने और घिनावने शब्द लिखनेके आपको कुछ आता ही नहीं है । यदि आता हो, तो अपने दिये हुए हेतुओंको ही निर्दोष सिद्ध कर दीजिये । बस, इतनेहीसे हम संतुष्ट हो जावेंगे ।

इसके आगे जो घृणित उदाहरण दिया गया है, वह पंडित श्रीलालजी जैसे विद्वानोंको ही शोभित होता है । उसे पढकर हमें आपकी विद्वत्तापर बडा ही

कष्ट हुआ। आपने छपे हुऐ शास्त्रोंको पढना मातासे पुत्रोत्पत्ति करनेके समान बतलाया है! छिः धिक्कार है, ऐसी लेखनीको जिसमें ऐसे पापोत्पादक शब्द प्रसूत होते हैं। हमें इसका उत्तर देते भी लज्जा आती है। हम नहीं कह सकते कि, जब छपे ग्रन्थोंको ये महात्मा जिनवाणी माता मानते ही नहीं है, तब उसमें ऐसी २ निन्द्य कल्पनायें क्यों करते हैं और यदि वह वास्तवमें जिनवाणी माता है, तो फिर सबहीकी पूजनीय है। आप जैसे उन्मत्तोंको छोडकर ऐसा कोई भी पुत्र न होगा, जो उसमें स्त्रीभावकी पापरूप कल्पना करेगा। इसके सिवाय यदि पठनरूप क्रिया पुत्रोत्पति क्रियाके समान है, तो वह हस्तलिखितमें भी क्यों नहीं मानी जावेगी? और जो कहा है कि," मन्दिरादि न होनेसे प्रतिमा नहीं मिलै, तो क्या कुम्हारसे बनावाकर पूजना चाहिये।" सो आचार्योंने कुंभारकी बनी हुई तो क्या अतदाकार मूर्तिकी स्थापनाकी भी आज्ञा दी है। सो क्या यह भी मातृसंगमके समान होगी? अफसोस आपकी मलिन बुद्धिपर! इसके पहले आपने एक जगह और भी इसीसे मिलता जुलता दृष्टान्त दिया है। उसका उल्लेख करनेके लिये हम अपने पाठकोंसे क्षमा चाहते हैं। दूसरोंके लिये बात बातपर जो नरकनिगोदका द्वार खोल देते हैं, वे स्वयं ऐसी निंद्य प्रवृत्ति करते हुए नहीं डरते हैं, यह बडे ही आश्चर्यका विषय है।

अन्तमें पंडितजीने छापेके विरोधका झंडा उठाकर उसके नीचे सबको आकर खडे होनेके लिये प्रार्थना की है और बडे २ शेठोंसे अपील की है कि, आप सरस्वतीभंडार खोलकर 'ग्रन्थ नहीं मिलते' इस कलकलको दूर कर दीजिये। और मेवारामजीको व्याख्यान देकर छापेकी विरोधक मंडली तयार करनेके लिये उत्तेजित किया है परन्तु यह सब मूर्खता है। आज यह किसीमें भी शक्ति नहीं है कि, ग्रन्थ लिखवाकर छपे ग्रन्थोंकी बराबरी कर सकै। क्योंकि इस समय एक वर्षमें जो कमसे कम दशहजारके ग्रन्थ विकते हैं, हाथसे लिखानेमें वे डेड दो लाखमें मुश्किलसे तयार हो सकेंगे। जिनके लिये २०) मासिकके हजार पंद्रह सौ लेखकोंकी आवश्यकता होगी। यदि श्रीलालजीके श्रीमान् इतना साहस करनेको तयार होवें, तो इससे अच्छा और क्या है? शेठ पं० मेवारामजीको इस पुण्यकृत्यके सम्पादन करनेके लिये इतना अवकाश मिल जावे तो जैनसमाज अवश्य ही कृतकृत्य हो जावेगा। ऐसे महाशयोंसे समाजका और कुछ उपकार नहीं हो सकता है, तो यही सही।

स्थानाभावसे इस लेखमें 'पुस्तक छपाकर जीविकानुरूप लाभ उठाना निंद्य है, या नहीं!' इसका निरूपण नहीं किया जा सका। हो सका, तो उसे आगामी अंकमें अवश्य ही प्रकाशित करेंगे।

समाजका सेवक—

लालाराम गुप्त बम्बई।

जैनपताकावाले इन्दौरनिवासीको चेतावनी।

महाशय! आपको और आपके बकव्रतको हम अच्छी तरहसे जानते हैं। चौदह पेटार्थुओंसे आप भी पृथक् नहीं हैं। छपे हुए ग्रन्थोंके आप भक्त हैं, प्रचारक हैं, और छापनेवालोंके साथ सहानुभूति रखनेवाले हैं। अनेक बार लोगोंको उपदेश देकर आप हमारे यहांसे ग्रन्थ मंगवाया करते हैं, और नवीन २ ग्रन्थ छपानेके लिये हमें सम्मति देते हैं। अधिक क्या, आप स्वयं भी ग्रन्थ छपाते हैं। परन्तु धनिकगणोंको खुश करनेके लिये तथा उदरपोषणका द्वार खुला रखनेके लिये–बाह्यमें छापेके निषेधक बनते हैं। इसमें शक नहीं कि आप हैं "फतहके नगाडची" "काशी गये काशीदास, मथुरा गये मथुरादास।" "जहां जस तहां तस" इन सब कहावतोंके आप मूर्तिमान उदाहरण हैं। किन्तु स्मरण राखिये कि, अब यह दुरंगीपन बहुत दिन नहीं चलेगा। कृत्रिम बाघम्बरको फेंककर असली स्वरूप प्रगट कर दीजिये। नहीं तो फिर "**वसन्तकाले सम्प्राप्ते काकः काकः पिकः पिकः**" प्रगट ही हो जावेगा। आप कहां तक छुपेंगे। हमारे फाइलमें आपकी अनेक चिट्ठियां मौजूद हैं, वे बहुत जल्दी प्रकाशित की जावेंगी। होशयार हो जाइये।

पेटार्थू आप ही हैं।

पेटके अर्थ उद्यम करके उससे अपना निर्वाह करनेवालेको पेटार्थू कहते हैं। चाहे वह उद्यम निंद्यप्रकारका हो चाहे अनिंद्यप्रकारका। इस अर्थसे समस्त संसारी मनुष्य पेटार्थुओंमें परिगणित होते हैं। हां, उन क्षुल्लक, ब्रह्मचारी, त्यागी मुनि आदि महात्माओंकी गणना इसमें नहीं हो सकती, जो कि निरन्तर परमार्थके लिये ही उद्यम करते रहते हैं।

उद्यमकी उत्तमता अधमतासे पेटार्थुओंके सामान्यत: तीन भेद हो सकते हैं, उत्तम मध्यम और अधम ।

उत्तम पेटार्थू वे हैं,–जो न्यायपूर्वक परमार्थसाधक आजीविकाओंको करके अपना निर्वाह करते हैं । पाठशालाओंकी अध्यापकी करना, धर्मसभाओंकी उपदेशकी करना, पुस्तकालयोंकी, तीर्थोंकी, मंदिरके भंडारोंकी मैनेजरी करना, ग्रन्थोंका लिखना और इसीके सदृश ग्रन्थोंका अनुवाद करना, नवीन रचना, संशोधन करना, मुद्रण करना, सर्वसाधारणमें प्रचार करना आदि सब कार्य परमार्थसाधक जीविकाओंके अन्तर्गत हैं । भरत चक्रवर्तीने यजनयाजनादि कर्म करनेवाले ब्राह्मणोंकी जो आजीविका बतलाई थी, वह इसी परमार्थसाधक जीविकाके अन्तर्गत है । इस जीविकामें हिंसारम्भ कम होता है, इसलिये भी इसे उत्तम उच्चकुलके योग्य जीविका कह सकते हैं ।

मध्यम पेटार्थू वे हैं, जो हिंसा, चोरी झूठआदि स्थूल पंचपापोंसे बचकर न्याय और संतोषपूर्वक वाणिज्य, नौकरी, दलाली आदि करते हैं ।

अधम पेटार्थू वे हैं. जो **येनकेन प्रकारेण** झूठ कपट फरेब आदि उपायोंसे धर्मको ताकमें रखकर अपना उदरनिर्वाह करते हैं । जैनहितैषी अंक ४२ में बतलाये हुए १४ प्रकारके पेटार्थू इसी अधमश्रेणीमें गर्भित हैं ।

जैनपताकाके सम्पादक बाबू अमोलकचन्दजी लुहाडानें अंक १० में **'पेटार्थू आप ही हैं'** शीर्षक लेखमें अपना लेखनीरूप कुहाडा चलाकर हमपर अनुचित और गर्हणीय आक्षेप किये हैं, इसीलिये हमें पेटार्थुओंकी परिभाषा और उक्त भेद बतलाना पडे । हम नहीं जानते थे कि, आप इसप्रकारके दुरंगे मनुष्य निकलेंगे, जो स्वयं छपी पुस्तकोंके अनुयायी होकर हमको ऐसी मनमानी गालियां देंगे ।

अस्तु हम जो कुछ करते हैं, वह गलित जर्जरित जीर्ण जिनवाणी माताका घर घरमें प्रचार करनेके लिये और संसारमें स्याद्वादमतका स्वरूप प्रगट करनेके लिये सच्चे जीसे, निष्कपट भावसे, पवित्र अभिलाषासे, अपना सर्वस्व लगाकर रातदिन परिश्रम करके करते हैं, और उससे मात्र निर्वाहके योग्य लाभ उठाते हैं । इतने परभी जो लोग पक्षपातसे तथा मूर्खतासे हमको अपने वचनवाणोंका निशाना बनाते हैं, और जिनवाणी माताके बढते हुए पवित्र प्रचारमें बाधा

डालकर जातिधर्म की उन्नतिका घात करते हैं, उनके इस पुण्यकर्मका उन्हें इसलोक अथवा परलोकमें अवश्य ही फल भोगना पडेगा। अलमतिविस्तरेण।

मनोविनोद।

(१९)

एक महात्माकी आत्मकहानी।

(नवीन हितोपदेशसे उद्धृत)

सुनिये मेरी आत्मकहानी। मैं हूं एक विलक्षण ज्ञानी॥
शुद्ध शोधिया मैं कहलाता। जहां रहूं मैं वहीं पढाता॥ १॥
चाहे उत्तर एक न दूं मैं। नहीं विषयको भी समझूं मैं॥
तौ भी कभी न चुप होता हूं। रोना अपना ही रोता हूं॥ २॥
भोले लोगोंको बहकाके। उलटा सीधा अर्थ सुझाके॥
विज्ञोंको भी शिथिलाचारी। कर देता हूं सिद्ध प्रचारी॥ ३॥
चमगीदडसा चारित मेरा। जी चाहे तहां करूं बसेरा॥
इधर उधर दोनोंमें ममता। ठीक नहीं कुछ भी कर सकता॥ ४॥
खुद अनेक पुस्तक छपवाऊं। छपती सुनकर खुशी मनाऊं॥
छापेवालोंको समझाऊं। नव नव ग्रन्थ प्रकाश कराऊं॥ ५॥
किन्तु जहां देखूं बेमौका। वहां तुरंत लगा दूं चौका॥
छापेका बैरी बन जाऊं। बेशक छपना बुरा बताऊं॥ ६॥
जिसमें शेठोंकी इतराजी। रहना उससे कभी न राजी॥
यह सिद्धान्त सदा मैं पालूं। इसहीसे सब काम निकालूं॥ ७॥
देशभक्ति मेरी नसनसमें। भरी हुई है कहता सच मैं॥
किन्तु पडा जब मौका आके। रंग बदला तब पलटा खाके॥ ८॥
देशभक्तके लोटानेको। यहां न आओ! समझानेको॥
मैं ही गया अग्रसर होके। नहीं रुका किसहीके रोके॥ ९॥
जैनगजट औ जैनमित्रका। पहले था शुभचिन्तक पक्का॥
किन्तु करूं अब उनकी निन्दा। होता नहीं जरा शरमिन्दा॥ १०॥

देता हूं उपदेश निरन्तर । बहिष्कार इनका दीजे कर ॥
मातृगमन जो समझाती है । पुण्यपताका वह सांची है ॥ ११ ॥
कूडा कचरा जो पाती है । महिने महिने भर लाती है ॥
उसहीकी सेवा सुखदाई । लिखूं लेख उसहीमें भाई ॥ १२ ॥
यह थोडासा परिचय मेरा । फिर सुनाउंगा कभी घनेरा ॥
पाठकगण जुहारु करता हूं । अच्छा तो अब मैं चलता हूं ॥१३

जीर्णोद्धार कराइये ।

अनेक लोगोंकी प्रेरणासे कि अमुक ग्रन्थमें कितना खर्च पडेगा, अमुकमें कितना पडेगा, हम एक सूची प्रकाशित करते हैं, जिसमें अंदाजसे खर्चके रुपयोंका पारिणाम लिखा है ! इसे देखकर जिन भाइयोंको जिस ग्रन्थके उद्धार करानेकी अभिलाषा हो, वे हमसे लिखा पढी करें । इनमेंसे अनेक ग्रन्थ तयार हैं, अनेक लिखकर तयार हो रहे हैं और अनेक ऐसे हैं, जो आज्ञा मिलनेपर तयार करनेको दिये जावेंगे । खर्चका परिमाण हमने अनुमानसे लिखा है, इसलिये उसमें १००-५० रुपयोंका अन्तर भी पड सकता है । अंक ४२में '**विना टके पैसे सैकडों शास्त्रदान करनेका उपाय**' इस लेखमें प्रगट किये हुए नियम बांचकरके इस विषयमें लिखा पढी करनी चाहिये ।

	प्रतियां।	लागत रु०
सूक्तमुक्तावली (सिंदूरप्रकर) अन्वय अर्थ. तथा बनारसीदासजीकृत कवित्तों सहित	१०००	१२५)
जैनपदसंग्रह तृतीयभाग—द्यानतरायजी कृत पद	१०००	१२५)
सागारधर्मामृत (श्रावकाचार) पं० लालारामजीकृत	१०००	५००)
त्रिवर्णाचार-भाषाटीकासहित ८००) रु. खाली वचनिका	१०००	५००)
अमितगतिश्रावकाचार बडा वचनिका सहित	१०००	५००)
चतुर्विंशतिजिनपूजा—रामचंद्रजीकृत.	१०००	४००)
चतुर्विंशति जिनपूजा—पं० जिनेश्वरदासजी कृत.	१०००	४००)
सुभाषितरत्नसंदोह—भाषानुवादसहित	१०००	५००)
प्रवचनसारजी कवित्तबद्ध—कविवर वृंदावनजी कृत	१०००	६००)

अष्टपाहुडजी—स्वर्गीय पंडित जयचंद्रजी कृत वचनिका.	१०००	६००)
सर्वार्थसिद्धि वचनिका—पं० जयचंद्रजी कृत.	१०००	८००)
गोमट्टसारजी जीवकांड—स्वर्गीय पं० टोडरमलजी कृत वचनिका सहित.	१०००	३०००)
गोमट्टसारजी कर्मकांड ,, ,,	१०००	३०००)
आदिपुराणजीकी वचनिका—पं० दौलतरामजी कृत	१०००	३०००)
पांडवपुराणजी छन्दोबद्ध कविवर बुलाकीदासकृत	१०००	५००)
शांतिनाथ पुराण चौपईबद्ध सेवारामजाटकृत	१०००	६००)
जीवंधरचरित्र—क्षत्रचूडामणिकी वचनिका	१०००	४००)
विक्रान्तकौरवीयनाटक संस्कृत सटिप्पण	१०००	६००)
जीवंधरचरित्र संस्कृत शुभचन्द्राचार्यकृत	१०००	५००)

इन ग्रन्थोंके सिवाय किसी महाशयको किसी अन्य ग्रंथके जीर्णोद्धार करानेकी इच्छा हो तो उस ग्रंथका नाम श्लोक संख्या कितनी है विषय क्या है उसके अनुवाद कराने शोधनेमें क्या खर्च पडेगा वह छपाने योग्य है कि नहीं इत्यादि विचार करनेके लिये वह ग्रंथ रजिष्टरी पार्सलद्वारा हमारे पास देखनेके लिये भेज देंगे तो हम उसका उचित प्रबंध करनेका प्रयत्न करेंगे ।

जैनहितैषी कार्यालय—पोष्ट—कालबादेवी (बंबई)

पंडित श्रीलालजी आदि सज्जनोंसे प्रश्न ।

१ **जैनपताका जैनगजट** आदिमें जो लेख छपते हैं तथा जैनग्रन्थोंके श्लोक तथा प्रतीक देकर जिनधर्मसंबंधी उपदेश छपते हैं सो ये जिनवाणी (जैनशास्त्र) है कि-मिथ्यावाणी ? युक्ति और शास्त्रीय दोनों प्रमाणोंसे इसका उत्तर देना चाहिये ।

२ धर्माश्रित आजीविका किसको कहते हैं—सभा, पाठशाला, उपदेशकी, तीर्थ क्षेत्र-मंदिरजी आदि धर्मकार्योंकी मुनीमी वगैरहकी नोकरी करना धर्माश्रित आजीवि, कामें गर्भित है या नहीं । अगर है तो युक्ति तथा शास्त्रीय प्रमाणसे प्रगट करें ।

३ यदि कोई अपनी आजीविकाके लिये महाभारत रामायणादि जैनशास्त्राति रिक्त ग्रंथोंको छपा छपाकर बेचै वा प्रचार करै तो उसे मिथ्यात्वका दूषण वा पाप लगेगा या नहीं ।

४ जैनाचार्योंके बनाये हुये शाकटायन, जैनेन्द्र कातंत्रादि व्याकरण, कोश, काव्य, छंदशास्त्र, अलंकार ग्रंथ–जैनशास्त्र अर्थात् जिनवाणी हैं या नहीं ?

५ यदि कोई भाई–जैनग्रंथोंके अभिप्रायानुसार जैनग्रंथोंके श्लोक वगेरह कुछ भी दृष्टान्तमें नहिं लिखकर वचनिका मात्र अथवा छंदोंमें कोई ग्रंथ बनावे, तो वह जिनवाणी (जैनशास्त्र) कहलावेगी या नहीं ?

इन पांच प्रश्नोंके उत्तर पंडित श्रीलालजी आदि छापेके विरोधी विद्वानोंसे चाहता हूं। आशा है कि, वे युक्ति तथा शास्त्रीयप्रमाणोंसे उत्तर देकर कृतार्थ करेंगे–उत्तर यदि लिखकर भेज देंगे, तो मैं सबके हितार्थ जैनजातिके प्रसिद्ध पत्रोंमें छपाकर प्रगट करादूंगा। इस समय इन विषयोंके निर्णयकी बहुत ही आवश्यकता समझ कर ये प्रश्न किये हैं। पंडितोका साम्हना करने लिये नहीं।

उत्तराभिलाषी—

बद्रूलाल श्रावक ठि० जीतेकरकी चाल

पोष्ट—कालबादेवी बंबई.

जिनवाणीजीर्णोद्धार समाचार।

श्रीपार्श्वाभ्युदय काव्य—आदिपुराणके कर्त्ता भगवज्जिनसेनाचार्य कृत बम्बईके एक गुप्त धर्मात्मा महाशय छपवा रहे हैं।

धरसेनकोष—प्रसिद्ध धरसेनाचार्यकृत–शोलापुरमें शेठ नाथारंगजी गांधीकी ओरसे छप रहा है। बहुत उत्तम और प्राचीन कोष है।

अष्टपाहुडजी—श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य कृत मूल और श्रुतसागरी संस्कृत टीकाके अनुसार भाषानुवाद सहित बम्बईके दानवीर शेठ माणिकचन्दजी तयार करवा रहे हैं।

प्रवचनसारजी—मूल और संस्कृतकी दो टीका तथा नवीन भाषानुवाद सहित परमश्रुत प्रभावक मंडलके द्वारा छपनेका प्रबन्ध हो रहा है। यह ग्रन्थ बम्बई यूनीवर्सिटीके एम. ए. के शिक्षाक्रममें रक्खा गया है।

त्रिवर्णाचार—मूल और मराठी टीका सहित–सुना है कि, कोल्हापुरके जैनेन्द्रप्रेसमें छपना प्रारंभ हो गया है। हिन्दी अनुवादके लिये भी प्रयत्न हो रहा है।

प्रद्युम्नचरित्र श्रीसोमप्रभाचार्यके मूल ग्रन्थका मनोहर हिन्दी अनुवाद कराया जा रहा है। आगामी वर्षमें यह ग्रन्थ जैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालयके द्वारा प्रकाशित होगा।

प्रमेयकमलमार्तंड के अभीतक ८ फार्म छपे हैं, काम चल रहा है। संशोधन कार्य कठिन होनेके कारण यह कार्य बहुत धीरे २ चलता है।

विविध समाचार।

श्रीसम्मेदशिखरके विषयमें बम्बईके गवर्नरसाहबकी एक चिट्ठी प्रकाशित हुई है, जिसमें कहा गया है कि, जब तक पालगंजकी जागीर कोर्ट आफ वार्डसमें है, तब तक बंगले बनानेकी बात बिलकुल छोड दी जाती है। पीछेके लिये राजासे निबटार लेना चाहिये। उधर सरफ्रेजरसे जो हमारे मुखिया मिले थे, उसमें उन्होंने इस बातका जिकर भी नहीं किया है। वे अकेली बीचकी टेकरीके लिये जैनियोंसे कई लाख रुपये मांगते हैं। एक और फोलियो नामके कोई गोरे साहब लोहेका बंगला खडा कर रहे हैं, और बगीचेमें खात डालनेके लिये गायोंकी हड्डियां आदि अपवित्र पदार्थ फुलीगंजमें इकट्ठी कर रहे हैं हमारे पूज्य पर्वतका क्या होनहार है, यह अब भी निश्चय नहीं होता है।

फेशनकी फजीहत—१७ जुलाईको बम्बईमें जो मिलोंके मजदूरोंका दंगा हुआ था, उसमें एक पारसी महाशयपर जो वेपभूपामें खासे गोरे बने हुए थे, गोरेके धोखेमें उनपर मजदूरलोग टूट पडे। पत्थरोंकी वर्षाके मारे बेचारे घबडा गये। आखिर टोप फेंककर बडी मुश्किलसे जान बचाकर भागे। मोरके पंखेके लगानेवाले कौओंकी ऐसी ही दशा होती है।

लोकमान्य तिलकका मुकद्दमा—पूनाके सुप्रसिद्ध केसरी पत्रके सम्पादक लोकमान्य तिलकपर बम्बईकी सेशनमें ता० १३ जुलाईसे राजद्रोहका मुकद्दमा चल रहा है। इससे सर्वसाधारण प्रजामें बडा भारी असंतोष फैला है। कई मिलों तथा बाजारोंमें हडतालें पड चुकी हैं। मजदूर लोग बहुत उपद्रव कर रहे हैं। उनके कामपर न आनेसे तमाम व्यापारोंमें हानि हो रही है।

ता० २० जुलाईको कई मजदूर पुलिसकी गोलियोंसे घायल हुए हैं। पुलिसके सिपाई तथा गोरे भी पीटे गये हैं।

भगवानकी बेदीमें सींकचे—छत्र चमरोंकी चोरोंसे रक्षा न कर सकनेके कारण बम्बईके तेरापंथी मन्दिरमें यहांकी पंचायतने सींकचेदार किवाड लगवाये हैं, जिससे दर्शन करनेवालोंको भगवानकी छवि ठीक २ न दिखनेसे बडा कष्ट होता है। पहले तो ९ अथवा ९॥ बजे तअ किंवाड खुले रहते थे, परन्तु आज कल ८ बजे ही बन्द हो जाते हैं। अष्टान्हिका पर्वमें भी यही हाल रहा है। मन्दिरजीमें कई नौकर होनेपर भी पंचायती १० बजे तक बेदी खुली रखनेका प्रबंध नहीं कर सकती है! आशा है कि, बम्बईके मुखिया इधर कुछ ध्यान देंगे,

---

ग्रन्थकर्त्री प्राचीन स्त्री—ईस्वीकी सत्रहवीं सदीमें तंजोरके राजा रघुनाथ नायककी सभामें मधुरवाणी नामकी एक स्त्री थी। वह आधी घडीमें १०० श्लोक बना सकती थी। अष्टावधान भी वह कर सकती थी। तैलंगी भाषामें कविता करनेकी उसमें विचित्र शक्ति थी। बंगलोरमें उसका बनाया हुआ, एक संस्कृत का काव्य मिला है, वह बहुत ही उत्तम है। आर्यावर्त्तकी इस पुण्यभूमिमें प्राचीन कालकी स्त्रियोंमें भी विद्याकी न्यूनता नहीं थी।

पादरियोंका प्रयत्न— लाहौरके एक पादरीने अपने व्याख्यानमें कहा है " कि—गत ५० वर्षमें भारतके केवल तैलंग प्रान्तमें २५०००० देशियोंने क्रिश्चियन धर्म स्वीकार किया है। आगामी ५० वर्षोंमें यहांकी पारिया नामकी जाति जि· सकी गणना ५ करोड है, सवकी सव ईसाकी उपासक हो जावेगी। " तैलंग और कर्णाटकमें हजारों जैनी भी क्रिश्चियन बन रहे हैं। अफासोस है कि हम लोग दूसरोंको जैनी बनाना तो दूर रहा जैनियोंको भी जैनी नहीं बनाये रख सकते हैं।

सेठ पंडित मेवारामजी आदिसे प्रार्थना।

पाठक महाशय मथुराजीके मेलेपर आचार्य भट्टाकलंक देवके प्रतिष्ठा पाठमें तोंतेकी बीठ और गोबरसे आरती करने वगेरहका झूठा दोष लगाकर विजय कीर्त्ति प्राप्त करनेवाले सेठ पंडित मेवारामजीके मतानुयायी करहल निवासी पं०

गुलझारीलालजी महाशयने **जैनपताका** अंक ३में **मिथ्यापवाद** नामका लेख देकर भट्टाकलंक देवको नकली सिद्धकरके प्रतिष्ठादि कार्योंमें शासनदेवताओंका आराधना करना मिथ्यात्व बताया था. उस अपवादके उत्तरमें मैंने जैनहितैषी अंक ३९ में पंडितजीके लेखका शास्त्रप्रमाण और युक्तियोंसे खंडन पूर्वक एक लेख इस लिये दियाथा कि इस विषयका खंडन मंडन होकर हमेशहके लिये निर्णय हो जायगा कि अकलंक प्रतिष्ठापाठादि सब आर्ष ग्रन्थ हैं और शासन देवता पूजनका सम्यक्त्वका घातक नहीं है परन्तु खेद है कि आज ६ महीने हो गये अभीतक उक्त पंडितजीने अथवा इस विवादके प्रधान कर्ता सेठ पंडित मेवारामजीने मेरे लेखका उत्तर नहीं दिया। आशा है कि अब उक्त महाशय उस लेखका युक्तिप्रमाण सहित शीघ्र ही उत्तर देकर इस विषयमें निर्णय करके सर्व साधारणका संदेह दूर करेंगे–यदि उक्त महाशय मेरे लेखका उत्तर देनेमें असमर्थ हों तो उनके अनुयायी पं० श्रीलालजी आदि जो कोई तेरहपंथी महाशय इस विषयको समझें युक्ति प्रमाण सहित मेरे लेखका उत्तर देवेंगे तो यह विषय भलेप्रकार निर्णय हो जायगा।

उत्तराभिलाषी—**वंशीधर विद्यार्थी**

जैनसिद्धान्तपाठशाला मोरेना—(ग्वालियर)

ताजी खबर

अत्यन्त खेद है कि ता. २२ जुलाईकी रात्रिको लोकमान्य श्रीयुत बालगंगाधर तिलक महाशयको सेसन कोर्टसे ६ वर्षका कालापानी और १०००) रुपये जुरमानेकी सजा होगई जिससे शहरमें तथा मिलोंके मजूरोंमें बडा भारी शोक व अन्तोष फैला हुआ है। तिलकके दुःखमें सहानुभूत्यर्थ कल जैन पाठशालायें और जैनपरिक्षालय वगेरह कार्य बंध थीं तथा शहर भरमें इस शोकमें समस्त स्वदेशी आफिस दूकानें बंद होगई थीं। आज तारीख २४ को भी कपडेका बाजार और मीलों सब बंध हैं मीलोंके मजूर और पुलिसके गोरे सिपाहियोंमें पत्थर और गोलियोंसे जहां तहां लडाई होती है सुनते हैं कई गोरे और मराठे मजूर मारे गये हैं। और ६ दिन तक यह हरताल रहैगी।

क्षमा प्रार्थना—अबकी बार छापेवाले महाशयकी कृपासे पत्र छपनेमें विलम्ब हो गया है सो क्षमा करें और अगला अंक भी भादवा बदी अमावास्याको निकलैगा।

सम्पादक।

ॐ

जैनहितैषी.

अथवा

(जैनसमालोचक)

मासिक पत्र।

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा संपादित व प्रकाशित।

चतुर्थ भाग	श्रावण और भाद्रपद वीर नि० संवत् २४३४।	अंक ४६-४७

नियमावली

१। इस पत्रका वार्षिक मूल्य डाकखर्चसहित अग्रिम १।) और पीछेंसे २) रु० है। छह महीनेतक जिनका मूल्य आजायगा वह अग्रिम समझा जायगा। फुटकर अंकका मूल्य ।) आने।

२। यह पत्र विना मगाये भी अनेक महाशयोंके पास भेजा जाता है। प्रथम अंक पहुंचनेपर यदि कोई महाशय कार्डद्वारा सूचना देंगे अथवा दूसरा अंक लौटा देंगे तो उनका नाम काट दिया जायगा। जो महाशय न तो नाम काटनेके लिये कार्ड भेजेंगे और न दूसरा अंक लौटावेंगे वे महाशय पक्के ग्राहक समझे जांयगे और उनको ५ अंक तक भेजकर छट्ठा अंक **वी. पी.** द्वारा भेजा जायगा।

३। जो भाई साफ २ हिंदीके सिवाय उर्दू, अंगरेजी व मूडी वगैरहमें चिट्ठी भेजेंगे उनकी तामील नहि होगी वे रद्दीमें फेंक दी जांयगी।

पत्र व मूल्य भेजनेका पता—**पन्नालाल जैन,**
जीतेकरकी चाल पो. **कालबादेवी** (मुंबई.)

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

ॐ

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

चतुर्थ भाग } श्रावण और भाद्रपद श्रीवीरनिर्वाण सं. २४३४ { अंक ४६-४७वां

अगले वर्षका अपूर्व उपहार ।

जैनहितैषीका उपहार विलम्बसे देनेके कारण हमको बहुतसी असुविधायें हुई, और घाटा भी उठाना पडा । इसकारण आगामी वर्षमें हमने पहलेही अंकके साथ उपहार देनेका विचार किया है । उपहारका ग्रन्थ प्रायः आधा तयार हो चुका है, दिवालीके पहले २ पूर्ण हो जावेगा । अबकी बार विलम्ब होनेका कोई कारण नहीं है । इसलिये जिन महाशयोंको इस अपूर्व उपहारके लेनेकी उत्कंठा हो, उन्हें दिवालीसे पहले २ एक चिट्ठी द्वारा ग्राहक होनेकी सूचना दे देनी चाहिये । उपहारके ग्रन्थकी अबकी बार बहुत थोड़ी प्रतियां छपाई हैं, क्योंकि पहले उसे उपहारमें देनेका विचार नहीं था, पृथक् रूपसे प्रकाशित करनेके उद्देश्यसे छपाना प्रारंभ किया था । इसलिये संभव है कि, उपर्युक्त ग्राहकोंके हो जानेपर पीछे विलंब करनेवालोंको ग्रन्थ न मिल सकै । इस वर्ष लोगोंको उपहारके ग्रन्थोंका चसका लग जानेके कारण जान

पड़ता है कि, आगामी वर्षमें ग्राहक भी अधिक होंगे। इसलिये जो लोग ग्राहक बननेमें विलंब करेंगे, उन्हें पीछे पछताना पड़ेगा। इस वर्षका उपहारी ग्रन्थ–

काशीनिवासी कविवर बाबू वृन्दावनजी कृत

प्रवचनसार परमागम

है। कविवरकी अमृतमयी कविताका आस्वाद जैनहितैषीके पाठक इस वर्षके उपहारका पाठ करके कर चुके होंगे। वृन्दावनविलास की भूमिकामें प्रवचनसारकी कविताके थोड़ेसे नमूने दिये हैं। इसके सिवाय विशेष परिचय पानेके लिये इस अंकमें भी एक प्रकरणकी कविता उद्धृत की जाती है। हम आशा करते हैं कि, इसको पढ़कर ग्राहकगण आगामी वर्षके ग्राहक बननेमें देरी नहीं करेंगे। यह उपहार—

सबको दिया जावेगा

जैनहितैषीके सम्पूर्ण ग्राहक इस उपहारके भागी होंगे। इसलिये उपहारके पृथक मूल्य और पोष्टेजके झंझटमें न पड़कर हम जैनहितैषीका **उपहारसहित मूल्य १॥)** नियत कर देते हैं। अब यदि कोई विना उपहार लिये जैनहितैषीका ग्राहक बनना चाहैगा, तो उससे भी १॥) से कमती मूल्य नहीं लिया जावेगा। पहले अंकके साथही प्रत्येक ग्राहकके पास १॥) का वी. पी. भेज दिया जावेगा। पोष्टेज वगैरह सब हम लगावेंगे।

उपहारके ग्रन्थका परिमाण।

गत वर्षके उपहारसे किसी प्रकार अधिक ही होगा, कम नहीं होगा। वृन्दावनविलाससे प्रायः डेवढ़ा होनेकी संभावना है। ग्रन्थ

क्या है, एक अपूर्व रत्न है। इसके मूलकर्त्ता भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य, संस्कृत टीकाके रचयिता श्रीअमृतचन्द्राचार्य तथा भाषाटीकाके कर्त्ता पांडे हेमराजजी हैं। इन्हीं तीनों ग्रन्थोंके अभिप्रायका चित्र वृन्दावनजीने अपनी प्यारी कवितामें खींचा है। जिस ग्रन्थके कर्त्ता ऐसे २ महात्मा हैं, उसकी और क्या प्रशंसा की जावै। बम्बई यूनीवर्सिटीने भी इस ग्रन्थको अपने शिक्षाक्रममें नियत किया है।

भाद्रपदमासमें जैनियोंके कर्तव्य।

हमारे पवित्र पर्वोंका महीना आ गया। इस मासमें सोलहकारण, दशलक्षण, पुष्पांजलि, रत्नत्रय, अनंतव्रतादि अनेक पर्व होते हैं। इन दिनों प्रायः प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, युवा अपनी २ शक्तिके अनुसार व्रत उपवास दान पूजन प्रभावनादि कार्य करके अपने २ मनुष्य जन्मको सफल करते हैं। कैसा ही असदाचारी व्यभिचारी क्यों न हो, वह इन दिनों अपने दुराचारोंको त्याग करके अथवा कम करके कुछ न कुछ धर्मकृत्य चाहे वह शर्मसे करै, लोक दिखाऊ करै, परन्तु करता अवश्य है। जैनियोंकी यह पद्धति अनादिकालसे चली आ रही है। किन्तु समयके फेरसे तथा मुनि, भट्टारक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी आदि साधुपुरुषोंके सदुपदेशोंके अभावसे दिनपर दिन स्वच्छन्द प्रवृत्ति होती जाती है। यद्यपि बाह्यदृष्टिसे देखनेमें हमारी उक्त पद्धतिका लोप नहीं हो गया है, परन्तु विचारपूर्वक देखते हैं, तो वर्तमानमें प्रायः शास्त्रमार्गसे विरुद्ध ही प्रवृत्तियां देखी जाती हैं।

शास्त्रमें जो मार्ग बतलाया गया है, उसमें सम्पूर्ण प्रवृत्तियोंका लक्ष्य सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र तीनोंपर जान पड़ता है, परन्तु

वर्तमानमें इन पर्वोंका मुख्य कर्तव्य केवल उपवास करना और पूजन करना रह गया है। शास्त्रश्रवण करके कषायोंका अभाव करना, तत्त्वज्ञान सम्पादन करना, आहार, औषध, अभय और शास्त्रदान करना, शास्त्रोंका जीर्णोद्धार करके उनका बहुलतासे प्रचार करना, जिससे धर्मकी सच्ची प्रभावना हो, पाठशालायें, सरस्वतीभंडार, औषधालय, अनाथालय, आदि स्थापित करना, उपदेशकोंके द्वारा तथा उत्तमोत्तम समाचार पत्रोंके द्वारा समाजमें धर्मकी जागृति करना आदि बहुतसे उत्तम कार्य हैं, जिनकी इस समय बहुत आवश्यकता है, परन्तु उनकी ओर कोई आंख उठाके भी नहीं देखता है। उपवास और भजन पूजनमें ही सब कुछ समझ रक्खा है।

हमारा यह मन्तव्य नहीं है कि, उपवासादि कर्तव्य विधेय नहीं हैं। अवश्य हैं, परन्तु उनके साथ २ अन्य कर्तव्य भी कम आवश्यकीय नहीं है। इसके सिवाय यदि उपवास पूजनादि भी शास्त्रोक्त पद्धतिसे होते तो कुछ संतोष होता, परन्तु सो भी नहीं है। दूसरोंकी देखादेखी तथा मनोक्त विधिसे ही प्रायः ये कार्य किये जाते हैं।

उपवासका स्वरूप हमारे यहां इसप्रकार कहा है:—

> कषायविषयारम्भत्यागो यत्र विधीयते।
> उपवासः स विज्ञेयः शेषं लङ्घनकं विदुः॥

अर्थात् जिसमें क्रोध मान माया और लोभ इन चार कषायोंका, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंका (स्त्रीगमनस्पर्शादि, पुष्ट स्वादिष्ट प्रमादकारक आहार, इतर पुष्पादिक, सुगंधित द्रव्य सूंघना, मनोहर स्त्रियोंके चित्रादि देखना, रागोत्पादक गीत संगीत नाटकादि श्रवण

करना.) तथा संसारसम्बधी आरंभोंका त्याग किया जाता है, उसे उपवास कहते हैं। और जिसमें उक्त कषाय, विषय, और आरंभोंका त्याग नहीं होता है, उसे लंघन समझना चाहिये।

स्वामी समन्तभद्रने भी ऐसी ही आज्ञा दी है:—

पञ्चानां पापानामलङ्क्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्।
स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्यात्॥

अर्थात्—हिंसा, चोरी, झूठ, कुशील, और परिग्रह इन पांच पापोंका तथा शृंगार, आरंभ, पुष्पोंकी सुगंधि, स्नान, अंजन और नस्यका उपवासमें त्याग करना चाहिये।

पुरुषार्थ सिद्ध्युपायमें कहा है, कि उपवासके दिनके पूर्वके दिन दो प्रहरसे समस्त आरंभका तथा शरीरादिकमें आत्मबुद्धिका त्याग कर उपवास ग्रहण करना चाहिये, और पारनेके दिनके दोपहर तक उसकी पालना करनी चाहिये। इस तरह पहलेका आधा दिन, पूरी रात, उपवासका दिन और रात तथा आगेका आधादिन इस प्रकार १६ पहर समय धर्मध्यान स्वाध्याय सामायिक और जिनेन्द्रपूजनादिमें व्यतीत करना चाहिये। रात्रिको भी निद्रासे नहीं, किन्तु स्वाध्याय तथा तत्त्वमननसे समाप्त करना चाहिये।

आजकल उपवासकी मात्रा पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें अधिक परिमाणमे है और वह भी ऐसी स्त्रियोंमें है जो बालबच्चोंवाली, बहुकुटुंबिनी, रसोई बनाना, झाड़ना बुहारना आदि समस्त आरंभ करनेवाली होती हैं। हमारी समझमें ऐसी स्त्रियोंको उपवास नहीं करना चाहिये। तथा जो स्त्रियां गर्भवती हों दूधपीनेवाले बच्चोंकी मातायें हों, प्रदरादि रोगयुक्त हो, उन्हें भी बेला तेला आदि उपवास नहीं करना चाहिये। उन्हें एकासन, पूजा, दान, शास्त्रश्रवण, उप-

वास करनेवालोंको पारना कराना, आदि धर्मकृत्य करके पुण्योपार्जन करना चाहिये। हां, जो स्त्रियां विधवा हैं, वृद्धा हैं, और गृहके आरंभ छोड़नेमें समर्थ हैं, उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार बेला तेला आदि सब कुछ करना चाहिये परंतु शास्त्रविधिसे।

अनेक स्थानोंमें ऐसी प्रवृत्ति देखी जाती है कि यदि कोई स्त्री पंचमी वा अष्टमीका उपवास करै, और उसी अवस्थामें रजस्वला हो जाय, तो शक्ति न होनेपर भी तीन या चार दिन और भी लंघन करके शुद्ध होनेपर पारना करती है। यह प्रवृत्ति स्त्रियोंके स्वास्थ्यके लिये विशेष कर संतानोत्पत्तिके लिये अतिशय घातक है। इसलिये हमारी समझमें इस प्रवृत्तिको उठा देना चाहिये। उपवासके दूसरे दिन ही पारना कर लेना चाहिये। जहांतक हम जानते हैं, शास्त्रोंमें रजस्वला होनेपर ३–४ उपवास करनेकी विधि नहीं है।

उपवासके समान पूजनकी भी दशा है। जिसके जीमें जो आता है, वही प्रवृत्ति चला देता है। पंचामृताभिषेक, पुष्पपूजन, केशरचर्चन, स्थापना, आदि विषयोंमें मनमानी खेंचतान की जाती है। पूजनके जो अष्टांग है, उनका नाम मात्र रह गया है, पालना कहीं भी नहीं होती है। मंत्रोंके अशुद्ध उच्चारण करनेके तथा शान्ति विसर्जन आदिके विषयमें तो कुछ पूंछिये ही नहीं। शास्त्रोंमें बैठकर पूजन करनेकी विधि है, वह बहुत उत्तम और उचित है परन्तु अब उसका प्रायः लोप ही हो गया है। लोग भगवानकी वेदीके सम्मुख खड़े होकर दूसरे दर्शन करनेवालोंके अंतरायस्वरूप बनकर पूजन करते हैं। सो ठीक नहीं है। किन्तु यदि भगवानकी वेदी पूर्वमुख हो, तो उत्तरमुख बैठकर और उत्तरमुख वेदी हो, तो पूर्वमुख बैठकर पूजन करना चाहिये। यही शास्त्रकी आज्ञा है। बंबई आदिके

मंदिरोंमें भगवानके साम्हने पुजारियोंकी कतार खडी हो जाती है जिससे सिवाय पुजारियोंके किसीको भी दर्शन नहीं मिलते हैं। इस विषयमें कई बार कहा सुना भी गया, परन्तु दुराग्रह और मूर्खताके आगें कुछ नहीं चलता।

अब हम इस विषयको अधिक न कहकर पर्वके दिनोंके कर्तव्य बतलाते हैं। पाठक देखेंगे कि, इनमें शास्त्रदान, स्वाध्यायादिके विषयमें कितना जोर दिया गया है। और आजकल लोग उन कर्तव्योंका कहांतक पालन करते हैं। अनेक ग्रन्थोंसे संग्रह करके हम ये कर्तव्य लिखते हैं। यदि इनमें कुछ हमारी भूल हो, तो विद्वानोंको सुधार लेना चाहिये।

१. **सोलहकारण पर्व**—यह पर्व भादों वदी १ को प्रारंभ होकर आसोज वदी १ को समाप्त होता है। इसमें पहले दिन एकासना दूसरे दिन उपवास, इस प्रकार एक दिन एकासना और एक दिन उपवास करना चाहिये। इन दिनोंमें सम्पूर्ण विषय कषाय तथा आरंभोंका त्याग कर देना चाहिये। भोजनमें लालरंगका पदार्थ नहीं खाना चाहिये। एक यंत्र सोना चांदी तांबा पीतल आदि जिस धातुका हो सके, बनवाना चाहिये। उसमें १६ कोठे बनवाकर १६ भावनाओंके नाम लिखवाना चाहिये। फिर उसके द्वारा दिन दो २ एक २ भावनाका चिन्तवन करते रहना चाहिये, तथा अपना आचरण भी ठीक भावनाओंके अनुकूल रखना चाहिये। प्रतिदिन सोलहकारण भावनाओंकी पूजा और "**ओं ऱ्हीं अर्ह असिआउसा दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो नमः**" इस मंत्रका यथाशक्ति जाप करना चाहिये।

इसप्रकार १६ वर्ष तक अथवा शक्ति न हो तो ५ वर्ष, दो वर्ष अथवा एक ही वर्ष यह महान व्रत धारण करना चाहिये। समाप्त होनेपर उद्यापन करना चाहिये। उद्यापन न कर सकै तो दूने दिन व्रत करना चाहिये। अन्तमें चार प्रकारके संघको चारों प्रकारका दान, तथा मन्दिरजीके लिये सोलह २ उपकरण देना चाहिये। सोलहकारणका मंडल मांडकर खूब ठाठवाटसे पूजनकरके प्रभावनांगकी वृद्धि करनी चाहिये।

२. **दशलक्षणपर्व**—यह पर्व भादों सुदी ५ से प्रारंभ करके सुदी १४ को समाप्त करना चाहिये। भादों सुदी ५ के दिन जिनमंदिरमें जाकर मोतियोंका अथवा कुंकुमका मंडल मांडकर छत्र चमरादि उपकरणोंसे विशेष शोभा बढ़ाकर दश दिनतक दशलक्षणादि पूजन कराना चाहिये। तथा सोलह कारणके समान इसका भी एक यंत्र सोना चांदी आदि किसी धातुका बनाकर उसमें दश कोठे बनाकर उत्तम क्षमादि दश धर्मोंके नाम लिखकर दश धर्मोंको अच्छे प्रकारसे समझकर धारण करना चाहिये। भगवतके सम्मुख स्थापन करके इस यंत्रमें लिखे हुए दशों धर्मोंकी प्रतिदिन पूजा करना चाहिये। इस पर्वमें भी एकदिन एकासना और दूसरे दिन उपवास इस क्रमसे व्रत करना चाहिये। इसे दश वर्ष पर्यंत करके अन्तमें उद्यापन करना चाहिये। उसमें शास्त्र, माला, कलश आदि दश दश उपकरण, मंदिरमें भेंट करना चाहिये। धर्मात्माओंको अथवा अनेक मंदिरोंको शास्त्रदान करना चाहिये। उद्यापन करनेकी शक्ति न हो तो २० वर्ष व्रत पालना चाहिये। तथा नीचे लिखे मन्त्रोंका जाप प्रति दिन करना चाहिये।

प्रथमदिन—ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः।

दूसरेदिन—ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नमः।

तीसरेदिन—ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांङ्गाय नमः।
चौथेदिन—ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय नमः।
पांचवेंदिन—ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांङ्गाय नमः।
छठेदिन—ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांङ्गाय नमः।
सातवेंदिन—ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांङ्गाय नमः।
आठवेंदिन—ओं ह्रीं उत्तमत्यागधर्मांङ्गाय नमः।
नववेंदिन—ओं ह्रीं उत्तमाकिंञ्चन्यधर्मांङ्गाय नमः।
दशवेंदिन—ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांङ्गाय नमः।

रत्नत्रयपर्व—यह व्रत माघ चैत्र और भादों इन तीन महीनोंमें सुदी १२ से प्रारंभ होकर पूर्णिमाको समाप्त होता है। प्रतिपदाको पारना करना चाहिये। इसे तेरह वर्ष पर्यन्त करना चाहिये। उद्यापनमें कलश, चमर, छत्र, आदि मन्दिरको भेट करना चाहिये, तथा भोजनादि कराके चतुर्विधिसंगका सत्कार करना चाहिये। श्रावक श्राविकाओंको वस्त्राभरण भेट करना चाहिये। व्रत करनेवालेको अहिंसादि अणुव्रतोंका भलेप्रकार पालन करना चाहिये। सोना, चांदी तथा तांबेके यंत्र बनवाकर उसमें रत्नत्रयके सम्पूर्ण गुण लिखना चाहिये, और प्रतिदिन उनका चिन्तवन करना चाहिये। प्रतिदिन उत्सवके साथ जिनेन्द्रदेवकी पूजन करनी चाहिये। तथा प्रतिदिन निम्नलिखित तीन मन्त्रोंका जाप करना चाहिये।

ओं ह्राँ ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय नमः।
ओं ह्राँ ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्ज्ञानाय नमः।
ओं ह्राँ ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राचाराय नमः।

---

(१)तत्त्वार्थसूत्रकी राजवार्तिक्यादि टीकाओंमें पहिले शौच और पीछे सत्यधर्म ग्रहण किया गया है प्रवत्तिमें पहिले सत्य पीछे शौच ग्रहण करते हैं।

पुष्पांजलिव्रत—यह व्रत भादों, आसोज, कार्तिक, अगहन, पौष, माघ, फाल्गुण और चैत्र इन आठ महीनोंकी प्रत्येक सुदी पंचमीके प्रातःकालसे प्रारंभ होता है। पुण्यास्रवकथाकोषमें इसके करनेकी विधि इस प्रकार लिखी है कि, सबेरेसे लेकर संध्याकालतक प्रत्येक प्रहरमें चौवीस तीर्थंकरोंका अभिषेक और पूजन करना चाहिये। पूजनमें भगवतके सम्मुख चावलोंके चौवीस पुंज स्थापित करके उन्हें यक्षिदेवियोंके बारह पुंजोंसे वेष्टित करना चाहिये, और फिर चौवीस तीर्थंकरोंकी स्तुति करते हुए उनपर पुष्पक्षेपन करना चाहिये। इसी प्रकारसे रात्रिकालमें जागरण करके दूसरे दिनके दो पहरतक पूजनादि करते रहना चाहिये। पश्चात् पारणेके समय पहले चौवीस मुनियोंको अथवा नहीं मिल सकै, तो पांचको अथवा एक मुनिको आहारादि कराके पुस्तक पिच्छी कंमडलु आदि उचित उपकरण देवै। इसके सिवाय दो सुहागन स्त्रियोंको भोजन कराके वस्त्रादिसे सत्कार करै और उन्हें एक विजौरा (मातुलंग फल) भेंट करै। इस तरह चार दिन पुष्पांजलि व्रतकी विधि करके नवमीको उपवास करना चाहिये और पूर्वमें कहे अनुसार अभिषेकादि करना चाहिये। अन्तमें रत्नोंकी अथवा वे नहीं मिल सकैं, तो पांच प्रकारके फूलोंकी अंजुलि क्षेपण करना चाहिये। इस प्रकार तीन वर्षतक विधिपूर्वक करके फिर उद्यापन कराना चाहिये। उद्यापनमें चौवीस तीर्थंकरोंकी चौवीस प्रतिमायें तयार कराके जिनमन्दिरोंमें स्थापित करना चाहिये, उत्तमोत्तम जैनग्रन्थ ऋषि मुनियोंको अर्पण करना चाहिये, और ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्णोंका तथा मुनि अर्जिकादि चारों संघोंका भोजनादि कराके यथाशक्ति सत्कार करना चाहिये। उद्यापन करनेकी शक्ति न हो तो तीन वर्षके बदले पांच वर्ष तक

व्रत पालन करना चाहिये। इस व्रतके पालनसे स्वर्गादि सुखोंकी प्राप्ति होती है।

अनन्तव्रत—भादों सुदी एकादशी द्वादशी और त्रयदशीको एकासन करना, भोजनके समय मौन धारण करना और और सात अन्तरायोंका पालन करना। अन्तमें चतुर्दशीको उपवास करना। इन चारों दिनोंमें ब्रह्मचर्य व्रत पालना, धरतीपर सोना, सचित्तवस्तु नहीं खाना, व्यापारका त्याग करना, कोई भी पाप कर्म नहीं करना, और राग द्वेषका त्याग ये कर्तव्य कर्म हैं। इस व्रतका चिन्ह स्वरूप एक सोनेका चांदीका अथवा शक्ति न हो तो सूतका अनन्त बनाना चाहिये, और उसमें १४ गुणोंका स्मरण करके एक २ गांठ देना चाहिये। प्रत्येक गांठ लगाते समय निम्नलिखित गुणोंका स्मरण करना चाहिये—

१ आदिनाथ भगवानसे अनन्तनाथ पर्यंत चौदह तीर्थंकरोंका नाम स्मरण करके पहली गांठ लगाना चाहिये।

२ सिद्ध परमेष्ठीके चौदह गुणोंका स्मरण करके दूसरी गांठ।

३ मतिश्रुतअवधिज्ञानके धारक चौदह मनुओंका नाम स्मरण करके तीसरी गांठ।

४ केवली भगवानके समवसरणमें जो चौदह अतिशय होते हैं, उनका स्मरण करके चौथी गांठ—

५ ज्ञानवृद्धिके कारणभूत द्वादशांग जिनवाणीके चौदह पूर्वोंका स्मरण करके पांचवी गांठ।

६ चौदह गुणस्थानोंका पाठ करके छठी गांठ।

७ चौदह मार्गणाओंका स्मरण करके सातवीं गांठ।

८ चौदह जीव समासोंका वर्णन ध्यानस्थित करके आठवी गांठ।

९ गंगासिंधु आदि चौदह नदियोंका नाम लेकर नवमी गांठ।

१० चौदह राजू प्रमाण लोकका स्वरूप ध्यानस्थ करके दशवींगाठ।

११ चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंका नामोच्चारण करके ग्यारहवीं।

१२ चौदह स्वरोंका स्मरण करके बारहवीं गांठ।

१३ चौदह तिथियां व्रत नियमादि करनेके लिये उपयोगी हैं। इसलिये उनका विचार करके तेरहवीं गांठ।

१४ मुनिराज १४ मल दोषोंको टाल करके आहार करते हैं। इस विषयमें उनके सद्गुण हृदयस्थ करके चौदहवीं गांठ लगाना चाहिये।

इस प्रकार चौदह गांठें लगाकर उस अनन्तको मेरुकी जिनप्रतिमाओंके आगे रखना चाहिये और फिर अभिषेक करके जयमाला सहित १४ पूजायें करना चाहिये। इस प्रकार चार दिनतक पूजा करना चाहिये और प्रतिदिन १०८ जाप करना चाहिये। **ओंनमोऽर्हते भगवते अनंता अनंत सिज्झधम्मे भगवतो महाविज्झा ओं महाविज्झा, अनन्ते अनंत केवलीय अनन्तकेवलणाणे अनंत केवल दंसणें अणुपुजवासणे अनन्ते अनन्तागम केवली स्वाहाः** यह जपका मंत्र है। यह न किया जा सके, तो ऊँ ह्रीं **अर्हं हं सः अनन्तकेवलिने नमः** इस छोटे मंत्रका जप करना चाहिये।

पश्चात् चतुर्दशीकी रात्रिको जागरण करके पूर्णिमाके सबेरे वह अनन्त अपनी दाहिनी भुजापर अथवा कंठमें पहिरना चाहिये, और घर आकर जिनपूजन करना चाहिये। उत्तम मध्यम जघन्य सत्पात्रोंमेंसे जिस किसीका समागम हो, उसे आहारदान देना चाहिये और सज्जन मंडलीको साथ लेकर पारणा करना चाहिये। इस प्रकार १४ वर्ष तक व्रत करना चाहिये। और अन्तमें उद्यापन करना चाहिये। उस समय चौदह चौदह उपकरण मन्दिरोंमें भेट

करना चाहिये। चार प्रकारके संघका निमंत्रण करना चाहिये और धर्मकी प्रभावना जिस प्रकारसे हो, उस प्रकारसे उत्सव करना चाहिये। इसी प्रकार समस्त व्रत शास्त्रविधिसेही करना चाहिये।

लालचन्द जैन।

जिनवाणीके प्रति।

(१)

हे जिनेन्द्रमुखकमलवासिनी, सुखदायिनी सरस्वति वानि।
पापतापहरनी जगजननी, शान्तिरूपनी हे गुनखानि॥
देख! देख! ये तेरे प्यारे, पुत्र कर रहे तेरा घात।
हाय! विपतिमें हितकारी भी, करते हैं विचित्र उत्पात॥

(२)

जीर्ण शीर्ण अति गलित अंग, क्षत विक्षत तेरा वृद्ध शरीर।
अब तक बचा रहा जो ज्यों त्यों, जिसे देख होती है पीर॥
समझा था यह पुत्रवृन्द तव, तन धन बार बचावेगा।
इससे थोड़े ही दिनमें सब, यथापूर्व हो जावेगा॥

(३)

किन्तु हुई झूठी वह आशा, सपनेकी संपति जैसी।
यह तो "खेती ही बारीको, खाने लगी" दशा ऐसी॥
जो सुपूत माता कह कह कर, विनय विनय चिल्लाते हैं।
वे ही तेरा मूलोच्छेदन, करते नहीं लजाते हैं।

(४)

विबुधपूज्य तेरे शरीरका, यदि न स्वयं करते उद्धार।
तौ भी कुछ संताप न होता, क्योंकि जगत रुचि विविध प्रकार॥
किन्तु मात! ये औरोंके भी, पथके कंटक बनते हैं।
यथाशक्ति जो सेवातत्पर, उनसे कुवचन कहते हैं॥

(५)

स्नेहशालिनी जननीकी जो, तनधनसे सेवा करते।

शुद्ध चित्तसे सदा सुजन सब, उनको धन्य धन्य कहते ॥
किन्तु इसे इन मूढोंकी मति, " **मातृगमन** " बतलाती है।
हाय! न क्यों इनकी जिव्हा, शत खंड खंड हो जाती है॥

(६)

यद्यपि ये सब घोर विनयका, शोर प्रचंड मचाते हैं।
भूमि शयनकर हाथ जोड बहु, वार सु सीस नवाते हैं।
किन्तु विनयका अंश मात्र भी, इनमें नहीं दिखाता है।
क्योंकि जननिकी देख दुर्दशा, इन्हें न रोना आता है॥

(७)

जगत्तारिणीको चाहे तो, दीमक चूहे करें तमाम।
अथवा पड़ी पड़ी सड़ जावे, भंडारोंमें रहे न नाम॥
तत्त्वज्ञान भी रहे न जगमें, इस चिन्तासे इन्हें न काम।
कोरी भक्ति दिखानेवाले, ये पिंजरेके तोताराम॥

(८)

हे जिनेन्द्र। कीजे करुणा, दीजे सुबुद्धि इन भूलोंको।
जिससे ये आकर सुमार्गपर, समझें अपनी भूलोंको॥
अपनी प्यारी माताकी, सेवा सच्ची करना सीखें।
घर घर में उसको बिलोक, आंखें ठंडी करना सीखें॥

काशीवासी कविवरवृन्दावनकृत श्रीप्रवचनसारकी

कवितका नमूना।

सत्संगति।

माधवी।

तिसकारनतैं समुझाय कहों, मुनिवृन्दनिकी सतसंगति कीजे।
अपने गुनके जे समान तथा, परधान मुनीनिको संग गहीजे॥
यदि चाहत हो सब दुःखनिको खय, तो यह सीख सु सीस धरीजे।
नित वास करो सतसंगतिमाहिं, कुसंगतिको सु जलांजुलि दीजे॥

दोहा।

ज्यों जुग मुकता सम मिलत, कीमत होत महान।
त्यों सम सतसंगति मिलत, बढत सुगुन अमलान ॥
ज्यों पारस संजोगतैं, लोह कनक व्है जाय।
गरेल[1] अमिय[2] सम गुन धरत, उत्तम संगति पाय ॥
जैसे लोहा काठ सँग, पहुंचै सागर पार।
तैसे अधिक गुनीनि संग, गुन लहि तजहि विकार ॥
ज्यों मलयागरके विषैं, बावन चन्दन जान।
परसि पौन तसु और तरु, चन्दन होंहिं महान ॥
त्यों सतसंगति जोगतैं, मिटै सकल अपराध।
सुगुन पाय शिवमग चलै, पावै पद निरुपाध ॥
देख कुसंगति पायके, होंहिं सुजन सविकार।
अगिनि जोग जिमि जल गरम, चन्दन होत अंगार ॥
छीर जगतजन पोषिकैं, करत वीजे[3]–दुति गात।
सोई अहिमुख[4] परत ही, हालाहल व्है जात ॥
तातै बहुत कहाँ कहा, जे ज्ञाता परवीन[5]।
ते थोरेंहीमें लखहिं, संग रंगकी वीन ॥
दुर्जनकों उपदेश यह, निष्फल ऐसे जात।
पाथर परको मारिवो, चोखो तीर नसात ॥
तातैं निजहित हेतको, गहन करहिं बुधि–धार।
हंस पान पयको करत, जिमि तजि वारि–विकार ॥
यों मत चितमें जानियो, मुनिकहं यह उपदेश।
श्रावकको तौ नहिं कह्यो, मूलग्रन्थमें लेश ॥
मुनिके मिष सबको कह्यो, न्यायरीति निरबाह।
"जिहि मगमें नृप पग धरै, प्रजा चलै तिहि राह ॥"
ऐसो जान हिये सदा, जिनआगम अनुकूल।
करहु आचरन हे भविक, करम जलै ज्यों तूल ॥

---

१ विष। २ अमृत। ३ विजलीके समान चमकता हुआ। ४ सर्पके मुखमें। ५ बुद्धिवान लोग।

परम पुण्यके उदयतैं, मिल्यो सुघाट सुजोग।
अब न चूकी भवि'वृन्द'यह, "नदी नाव संजोग"
सकल ग्रन्थको मंथके, पंथ कह्यो यह सार।
"कुन्दकुन्द" गुरुदेव सो, मोहि करो भवपार ॥

जिनागमका माहात्म्य ।

सरवज्ञ भाषित सिद्धांत विन वस्तुनिको,
जथारथ निहचै न होत सरवथा है ॥
विना सर्व दर्वनिको भलीभांति जाने कहो
कैसे निज आतमको जानै श्रुतिमथा है ॥
याहीतैं मुनिन्द वृन्द शब्द ब्रह्मको अभ्यासि
आपरूप जानि तामैं होहि थिर जथा है।
तातैं शिवमारगको मूल जिनआगम है
ताको पढ़ो सुनो गुनो यही सार कथा है ॥

दोहा।

जो जन जिनआगम विमुख, बहिर्मुखी ते जीव।
डांवांडोल मिथ्यातवश, भटकत रहत सदीव ॥
करता बनत त्रिलोकके, कबहु भोगता होहि।
इष्टानिष्ट विभावजुत, सुथिर न कबहूं सोहि ॥
ज्यों समुद्रमें पवनतैं, चहुँदिशि उठत तरंग।
त्यों आकुलतासों दुखित, लहै न समरसरंग ॥
जब अपनेको जानई, ज्ञानानन्द स्वरूप।
तब न कबहुं परदरवको, करता बनै अनूप ॥
जो आतम निजज्ञानकरि, लोकालोक समस्त।
प्रगट जानकरि आपमें, सुथिर रहत परशस्त ॥
ऐसा जो भगवान यह, चिदानंद निरद्वन्द।
सो जिनशासनतैं लखहिं, महामुनिनिके वृन्द ॥
तब ताको सरधान अरु, ज्ञान जथारथ धारि।
ताहीमें थिर होयके, पावैं पद अविकार ॥

जातैं जिन आगम बढ़ो, उपकारी पहिचान ।
ताको वृन्द पढ़ौ सुनौ, यह उपदेश प्रधान ॥

मत्तगयन्द ।

जो मुनिको नहिं आगमज्ञान सो, तो निज औ परको नहिं जानै !
आप तथा परको न लखै, तब क्यों करि कर्म कुलाचल भानै ॥
जासु उदै जगजालविषैं, चिरकाल बिहाल भयौ भरमानै ।
तातैं पढ़ो मुनि श्रीजिनआगम, तौ सुखसों पहुंचौ शिवथानै ॥

कवित्त छन्द ।

जिनआगमसों दरव भाव, नो करमानिको हो है तहकीक ।
तब निजभेदज्ञानबलकरिके चूरें, करम लहै शिव ठीक ॥
तिस आगमतैं विमुख होयकें, चहै जो शिवसुख लहैं अधीक ।
सो अयान विनु तत्त्वज्ञान नित, पीटत मूढ सांपकी लीक ॥
आगमज्ञान रहित नित जो मुनि, काय कलेश करै तिहुंकाल ।
ताको स्वपरभेद नहिं सूझत, आगम तीया नयन विशाल ॥
तब तहँ भेदज्ञान विनु कैसे, चलै शुद्ध शिवमारग चाल ।
सो विपरीत रीतिकी धारक, गावत तान ताल विनु ख्याल ॥

दोहा

"ज्यों ज्यों मिथ्यामग चलै, त्यों त्यों बंधै सोय ।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय" ॥

फुटकर ।

कवित्त छन्द ।

जाके हिये मोह मिथ्यामत, हे भवि पूर रह्यो भरपूर ।
कैसहु कै न तजै हठ सो शठ, ज्यों महि गहै गोह पग भूर ॥
जो कहुं सत्य सुनै तउ उरमें, धरै न सरधा अतिहि करूर ।
ताको यह उपदेश अफल जिमि, "कूकरके मुखमाहिं कपूर" ॥
तातैं अब इस कथन मथनको, सुनो सार भवि धरि उपयोग ।
सम्यग्दर्शनज्ञानचरितमें, सुथिर होहु जुत शुद्धपयोग ॥
यही सु मुनिपद वृन्द अनूपम, यातैं कटैं करमके रोग ।
ताको गहो मिल्यो यह औसर, "जैसे नदी नाव संजोग" ।

माधवी ।

जिन आगममें नित सात सुभंगीका, छन्द अभंग धुजा फहरावै ।
जिसको लखिकै मुनि भेद विज्ञान, सुसंजमसंजुत मोच्छ सिधावै ॥
तिहिको तजिकै जो सुछन्दमती, अति खेद करै हठसों बहु धावै ।
वह त्यागिकै सीख–सुधारसको, " नित ओसके बूंदसों प्यास बुझावै ॥ "

नोट—यह ग्रन्थ जैनहितैषीके आगामी वर्षका उपहार नियत किया गया है । पाठकगणोंके जाननेके लिये कि, प्रवचनसारकी कविता कैसी बढ़ियां और बोधप्रद है, यह कविता उदाहरणस्वरूप उद्धृत की है । आशा है कि, कवितामर्मज्ञ जन इस अपूर्व ग्रन्थको पसन्द करेंगे और आगामी वर्षके ग्राहक बननेके लिये तैयार रहेंगे

सुभाषित श्लोक ।

सशानभूमिमें एक मुरदा पड़ा हुआ था । एक दरिद्रीने वहां आकर उससे कहा:—

उत्तिष्ठ क्षणेमकमुद्वह गुरुं दारिद्र्यभारं सखे
श्रान्तस्तावदहं चिरं मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम् ।
इत्युक्तो धनवर्जितेन सहसा गत्वा स्मशाने शवो
दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वैव तूष्णीं स्थितः ॥ १ ॥

" हे मित्र ! उठ, और मेरे इस दरिद्रताके बड़े भारी बोझेको क्षणभरके लिये धारण कर । मैं थक गया हूं, इसलिये अब तेरे इस मरण सुखको चिरकालतक सेवन करूंगा ।" धनहीनने सशानमें जाकर इस प्रकार कहा, परन्तु उस शवने (मुरदेने) मानो यह जानकर कि, "दरिद्रतासे मरण हजार बार अच्छा है," कुछ भी उत्तर नहीं दिया । चुप हो रहा ।

यद्वक्त्रं मुहुरीक्षसे न धनिनां ब्रूषे न चाटुं मृषा
नैषां गर्वगिरः शृणोषि न पुनः प्रत्याशया धावसि ।

काले बालतृणानि खादसि सुखं निद्रासि निद्रागमे
तन्मे ब्रूहि कुरङ्ग कुत्र भवता किं नाम तप्तं तपः ॥ २ ॥

धनिक पुरुषोंकी खुशामदसे दुखी होकर कोई पुरुष एक हरिणको लक्ष्य करके कहता है,– "हे मृग ! न तो तू वारंवार धनियोंके मुंहकी ओर देखता है, न उनसे झूठी खुशामदके वचन कहता है, न उनकी घमंडभरी वाणी सुनता है, और न आशाके वश उनके पास दौड़ता है परन्तु जब भूख लगती है, तब हरी २ दूब चरता है, और जब निद्रा आती है, तब सुखसे निद्रा लेता है। इसलिये हे भाई ! मुझसे कह कि, तूने ऐसा कौनसा तप किया है, जिसका यह फल है।

सिंहो बली द्विरद शूकरमांसभोजी
संवत्सरेण रतिमेति किलैकवारम्।
पारावतः खरशिलाकणमात्रभोजी
कामी भवत्यनुदिनं वद कोत्र हेतुः ॥ ३ ॥

हाथी और शूकरका मांस खानेवाला बलवान्सिंह एक वर्षमें केवल एकबार संभोग करता है, परन्तु कंकर पत्थर मात्र खानेवाला पारावत एक दिनमें भी अनेक बार कामी होता है ! बतलाओ, इसका क्या कारण है ?

बाबू देवकुमारजीका स्वर्गवास।

हम को यह प्रकाशित करते हुए अतिशय शोक होता है कि, आराके प्रसिद्ध जमींदार बाबू देवकुमारजीका कलकत्तेमें ता० ९ अगस्तकी रात्रिको ११ बजे केवल ३२ वर्षकी युवा अवस्थामें देहान्त हो गया। आपसे हमको बहुत कुछ आशा थी, क्योंकि आप जैसे ही धनिक तथा विद्वान थे, वैसे ही धर्मात्मा भी थे। आपके शरीर-

पातसे जैनसमाजकी जो क्षति हुई है, उस की पूर्ति करनेवाला हमको कोई भी दिखलाई नहीं देता है। विद्वान धनी नहीं होते हैं। और धनी धर्मात्मा नहीं होते हैं, इन नियमोंके आप अपवाद स्वरूप थे। आपके इन गुणोंको देखकर दि० जैनमहासभाने गत अधिवेशनपर आपको सभापतिका आसन प्रदान किया था। उस समय समाजकी उन्नतिके लिये आपने जो उच्चश्रेणीका व्याख्यान दिया था, वह आपकी विद्वत्ताका आदर्श था। महासभाको आजतक आप जैसा सुयोग्य सभापति कभी नहीं मिला था। आप बड़े ही सरल साधे सहिष्णु विनयी और परिश्रमी पुरुष थे। आपका बोलचाल और वर्ताव आपके देवकुमार नामके सर्वथा ही योग्य था। धनिकों तथा विद्वानोंमें जो अहंकार तथा वत्सलताका अभाव देखा जाता है, वह आपमें सर्वथा नहीं था। धर्मप्रेमके विषयमें इतनेहीसे समझ लीजिये कि, साड़े तीन महीनेकी कठिन बीमारीमें भी मरनेके दिन तक कभी भगवानके दर्शन किये विना आपने औषधिपान नहीं किया। स्वाध्याय, पूजन सामायिकमें आपका बहुत समय जाता था। विद्योन्नतिकी ओर आपका बहुत ख्याल था। आरामें आपने पाठशाला कन्याशाला और एक पुस्तकालय खोल रक्खा है। आप काशीकी श्रीस्याद्वादपाठशालाके आप प्रधान सहायक और संचालक तथा स्थापक थे। सरस्वतीभंडारकी ओर तो आपका बहुत ही ख्याल था। जबसे आप दक्षिणकी यात्रा करके आये हैं, तबहीसे इस विषयमें प्रयत्नशील थे। प्राण जाते २ आपके हृदयमें सरस्वतीभंडारके स्थापित करनेकी वासना रही है।

आपके बाबू निर्म्मलकुमार और चक्रेश्वरकुमार नामके दो छोटे २ बालक हैं। इन बालकोंको आप पहले धर्मशिक्षा देकर

और उसमें निष्णात होनेपर पीछे लौकिक शिक्षा दिलानेका विचार करते थे। इसके लिये अपने पं० लालारामजीको बम्बईसे ९०) मासिकपर बुलाया था। उक्त बालकोंको आप अपने शिक्षा सम्बन्धी विचारोंका प्रतिरूप बनाना चाहते थे।

वह पुरुष बड़ा ही भाग्यशाली है, जिसका अन्त समय समाधिपूर्वक होता है। बाबू साहबने श्रीयुत नेमिसागरवर्णीको अपना अन्तसमय सुधारनेके लिये पहलेहीसे बुला रक्खा था। तदनुसार बहुत अच्छे परिणामोंसे भगवानका नाम स्मरण करते हुए आपका समाधिमरण हुआ। आप बड़े ही कष्टसहिष्णु थे। इस बीमारीमें असह्य कष्ट सहे, परन्तु कभी दादा मैया नहीं की, अपने कर्मोंका परिपाक समझकर सब समतासे सहन करते रहे।

बाबू साहबकी जमींदारी बहुत बडी है। आराके आप एक मुख्य रहीस हैं। अपनी जमींदारीका आप बडी योग्यतासे प्रबन्ध करते थे। इसी कारण सरकारने आपको आनरेरी माजिष्ट्रेटके पदसे भूषित कर रक्खा था।

बनारसमें लाला प्रभुदयालजीका मंदिर तथा धर्मशाला जिसमें कि इस समय स्याद्वादपाठशाला तथा महाविद्यालय है, बहुत प्रसिद्ध है। लाला प्रभुदयालजी आपके दादा थे। वे बडे भारी धर्मात्मा व मंत्रशास्त्रके ज्ञाता थे। उनका एक मंदिर चन्द्रपुरीमें और एक आरा शहरमें है। आपके पिताका बनवाया हुआ भी एक मंदिर कोसांबीनगरीमें है। इन सब मन्दिरोंकी व्यवस्था और खर्च बाबू साहब स्वयं करते रहे हैं और आगेको भी प्रबंध कर गये हैं।

बाबू साहबने जैन समाजका जो कुछ उपकार किया है, यदि उसके बदलेमें हमारा समाज अधिक नहीं, तो बाबूसाहबका इच्छित पुस्तका-

लय उनके स्मारकस्वरूप स्थापित करनेका उत्साह प्रगट करै, तो हम समझेंगे कि जैनी अपने उपकार करनेवालोंका तथा अपने अगुओंका सत्कार करना—कृतज्ञता प्रकाश करना जानते हैं। अन्यथा हम कहेंगे;—

> वे न यहां नागर बड़े, जिन आदर तो आब।
> फूल्यो अनफूल्यो भयो, गवईंगांव गुलाब॥

हम श्रीयुत बाबू जैनेन्द्रकिशोरजीसे भी प्रार्थना करते हैं कि, वे इस विषयमें कुछ स्वतंत्र उद्योग करें और कमसे कम एक उच्चश्रेणीका मासिकपत्र बाबू साहबके स्मारकमें अवश्य ही प्रकाशित करें। एक बार स्वर्गीय बाबू साहबने ऐसे एक मासिकपत्र निकालनेकी इच्छा भी प्रगट की थी।

बाबू साहबके कुटुम्बियोंके प्रति हमारी पूर्ण सहानुभूति है। श्रीजीका कृपासे बाबू साहबके आत्माको शान्ति प्राप्त हो, और उनके सुकुमार पुत्रद्वय पूजनीय पिताकी इच्छानुसार प्रवर्त कर अपनी दुःखिनी माताके शोकका शान्तवन करनेमें शीघ्रही समर्थ हों, हम यही चाहते हैं। बाबू साहबका दानपत्र आगे छपा है।

मनोविनोद।

(२०)

एक शिष्यकी चिट्ठी।

"गुरुजी! पहले तो आपके मुंहसे सुना करता था कि, जैनियोंके व्रत विधान बहुत कठिन हैं। जिन दिनोंमें आप यहांपर थे, आपको याद होगा कि, मैं नास्तिक कहलाता था। क्योंकि आपके मुंहसे कठिनाईकी बातें सुनकर व्रत करनेका मैं साहस नहीं कर सकता था। परन्तु अब मालूम हुआ कि, आप नाहक

डरवाते थे। क्या कहूं यदि इस समय आप यहांपर होते, तो अवश्य ही मुझे परम आस्तिक कहकर प्रशंसा करते।

आप जानते हैं कि मै तम्बाकूका परले सिरेका पियक्कड़ हूं। सावनमें जिस प्रकार स्त्रियोंके कोमल हाथ मेंहदीके रंगसे अपूर्व शोभा धारण करते हैं, उसी प्रकारसे धूमोत्फुंकारिणी अग्निशिरोधारिणी चिलम देवीकी कृपासे मेरे हाथ बारहों महीना अरुणवर्ण रहते हैं। तम्बाकू खानेका और नस्य सूंघनेका भी मुझे कम शौक नहीं है। मेरे घरकी चित्र विचित्र दीवालोंको देखनेसे मेरे इन व्यसनोंका अनुमान "धूमसे अग्नि"के समान सहज ही किया जा सकता है। इन्हींको छोड़ना मेरे लिये कठिन कार्य था। परन्तु इस नवीन देशमें आकर जो पद्धति देखी, उसमें मेरे हर्षका ठिकाना नहीं रहा। यहां लोगोंसे परिचय होनेके पहले ही मैं सर्टिफिकट याफ्ता आस्तिक बन बैठा हूं। "धूमपानसे पेट नहीं भर सकता है अतएव उससे उपवासका भंग संभव नहीं है" इस अपूर्व युक्तिसे यहां तम्बाकू पीनेसे व्रतका भंग नहीं समझा जाता है। अतएव व्रतके दिन भी मैं अपने मुंहको एंजिन बनाये रहता हूं। मस्तिष्करंजिनीके सूंघनेका भी यही हाल है। इतना अवश्य है कि, नासिका साफ करनेके लिये रूमाल जरा बड़ा रखता हूं। तम्बाकू खानेकी यहां यह विधि है कि, एकासन कर चुकनेके पश्चात् भोजनकी चौकीपर ही प्रायः आध घंटे तक आसन जमाये हुए मुखरंजिनीकी सेवा की जाती है। साम्हने पवित्र पीकदान भी विराजमान किया जाता है। इतनेपर भी जिन लोगोंकी तृप्ति नहीं होती है, वे व्रतोंके दिनोंमें धूम्रपान करने लगते हैं। कोई २ लोग संध्याकालके पहले एक बार जल पीते हैं, और उस समय भी १०–२० मिनट बैठ-

कर दीवालोंको चित्रित करते हैं। मैं भी इन्हींका अनुगामी हो गया हूं।

यहां एक शेठानी हैं। वे ११ बजे एकासन करनेको बैठती हैं। लगभग १ घंटेमें उनका पेटगर्त्त भरा जाता है, तब वे सुपारी वगैरह खाकर जिस स्थानपर बैठती हैं, वहींपर सो जाती हैं। कोई दो घंटेकी गहरी निद्रा लेकर उठकर मुंह धोकर फिर पेटपर हाथ फेरती हैं, और पाव आध सेर जितना जा सकता है, और भी डाल लेती हैं। पश्चात् सुपारी वगैरह खाकर कुरला करके ठीक ५ बजे जमीनका बोझ हलका करती हैं। यह पद्धति मुझे बहुत पसन्द आई है। परन्तु मुझे ज्यादा भूख नहीं लगती हैं, इसलिये इसका अनुसरण नहीं करता हूं। हां! प्यास अधिक लगती है, क्योंकि एक तो खूब गरमागरम माल उड़ाता हूं और दूसरे तम्बाकूसे मुंह सूखता है अतएव पानी दो तीन बार पी लेता हूं। यहां बहुतसे लोग दो तीन बार पानी पीते हैं।

यहां प्रायः लोग दशलक्षण व्रत करते हैं। पंचमीके प्रातःकालसे उसका प्रारंभ होता है, इसलिये चौथकी रात्रिके २–३ बजे तक लोग अलौकिक मौज मजा उड़ाते रहते हैं। इन दिनों ककड़ी और मक्काके भुट्टोंकी फसल ज्यादा आती है, इससे एकासनमें बहुतसे लोग उनपर भी खूब हाथ साफ किया करते हैं।

दशलक्षणके दिनोंमें प्रायः प्रत्येक घरमें खूब माल बनाये जाते हैं तथा दूसरे वक्त मिलनेकी आशा नहीं रहती है, इसलिये यहां दोनों वक्तका टोटल एक ही वक्त लगा लिया जाता है। एकाशन शब्दका अर्थही यह समझा जाता है कि, दो वक्तका भोजन एकही वक्तमें खा लेना। शायद ही कोई अभागी दश पांच तोलेकी

कसर रखता होगा ! परन्तु स्मरण रखिये कि, आपका शिष्य ऐसा अभागी नहीं है।

एक बात यहांकी और भी जानने योग्य है कि, भोजनके समय लोग अन्तराय पालते हैं। यदि कोई कुत्ता बिल्ली आदिका नामोच्चारण कर देवे, तो फिर भोजन नहीं करते हैं। परन्तु इसके लिये किसी बुद्धिमानने एक युक्ति निकाल दी है। वह यह कि, उस समय एक आदमी थाली या झालर बजाता रहता है, जिससे कुछ भी न सुन पड़े। बस "**न रहेगा बांस, न बजैगी बांसुरी**।" भोजन करते समय मौन धारण करनेकी भी यही प्रथा है। इससे इशारा करनेका अच्छा प्राक्टिश (अभ्यास) हो जाता है। कभी २ बडा आनन्द आता है।

ऐसे २ सुभीते पाकर मेरे व्रतोंका निर्वाह अच्छी तरहसे हो जाता है। आपको चेताये देता हूं कि, आयन्दा आप मुझे कभी नास्तिक न लिखा करें। श्रीजीसे प्रार्थना है कि, मेरा अन्नजल इसी देशमें चिरकालतक रहै। इत्यलम् विस्तरेण—

आपका—वही आस्तिक शिष्य।

मनराखनलाल सौंधिया।

(२१)

एक उपदेशक और मारवाडी शेठका वार्त्तालाप।

उपदेशक—सेठजी साहब! जुहार।

सेठ—आवो पधारो—थे कठ्यां सूं आया।

उपदेशक—मैं....सभाका उपदेशक हूं सभाके हुकुमसे उपदेश करता २ यहां भी आया हूं आशा है कि, आप यहांपर भी एक दो सभा करानेका प्रबंध करैंगे।

सेठ—सभा तो म्हे एक दो ही क्यूं दशबीस करा देश्यां, पण सभामें रुपे पैसे देणेकी बात नहीं छेड़ना। थे कहोला, ईमें द्यो। वींमें द्यो इसी बात म्हानै कोनी सुहावै।

उपदेशक—क्यों सेठ साहब आप ऐसा क्यों कहते हैं।

सेठ—अठै इस्यो कोई भी नहीं जो थानै पीस्यो रूपियो देवै पछैं थे मारै गलै पडस्यो पण मैं एक छदाम भी देवा वालो नहीं हूं।

उपदेशक—तो सेठ साहब आपके पिताजी जो पचास साठ लाख रुपये पैदा करके रख गये और आपभी लाखों रुपये पैदा करते हैं, सो क्या मरते समय साथ ले जावोगे?

सेठ—साथ तो नहीं ले जावां पण म्हांकै अठै और घणाई खर्च हैं जकामें भी पूरा कौनी पडै। फेर मैं थांकी नाई एकला थोडाई छां लारैं खाणैवाला घणाई छै और अंगरेजांकी खुशामदमें भी हजारों रुप्या उड जावै छै।

वंदे जिनवरम्।

इस नामका मराठी भाषाका एक मासिकपत्र निपाणी जिला बेलगांवसे प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादक हैं वार्शीनिवासी भाई तात्या नेमिनाथ पांगळ और प्रकाशक हैं निपाणीके कृष्णाजी रामचंद्र लाटकर। वार्षिक मूल्य डांक खर्च सहित १।) रुपया। साइज डेमी आठपेजी तीन फारमका है। हमारे पास इसके तीन अंक आये हैं तीसरा अंक ज्येष्ट महीनेका है। पत्रके लेख बहुत अच्छे हैं। दक्षिण महाराष्ट्र प्रान्तके जैनियोंको उपयोगी है। महाराष्ट्र भाषाके जानकार धर्मात्मा धनाढ्य महाशयोंको चाहिये कि इसको हरतरहसे सहायता देकर इसके प्रकाशक और संपादकोंका उत्साह बढावैं, जिससे यह पत्र जैनजातिकी सेवा चिरकालतक करता रहै।

दिगम्बर जैन ।

इस नामका गुजराती भाषाका मासिकपत्र सूरतसे निकला है, इसके संपादक शा मूलचन्द कृष्णदासजी—और प्रकाशक शेठ प्रेमचन्द मोतीचन्द दि० जै बो० अहमदाबाद है । यह पत्र समस्त कार्योंमें पीछें पड़ी हुई गुजरात प्रान्तकी जैनसमाजके हितार्थ प्रकाशित हुआ है। इसके कई अंक हमारे पास आये है। लेख साधारण अच्छे हैं। हिंदी मराठी जैनपत्रोंसे चुन २ कर अच्छे २ विषयोंको प्रकाशित करता है। इस पत्रको दानवीर शेठजीका पूरा आश्रय है इसकारण इसकी उन्नति होना संभव है। संपादकको चाहिये कि अभी वर्ष दो वर्ष कठिन विषयके कठिन भाषामें लेख प्रकाशित नाहिं करै । वार्षिक मूल्य डांकखर्चसीहत १।) है । और साइज राइल आठ पेजी ३ फारमका है । गुजरातके दिगम्बरजैनसमाजमें यह पहला ही पत्र है ।

परीक्षा ।

वह बडभागी धन्य है, जिसका कभी इस तीन अक्षरके शब्दसे काम न पडै और अपना भरम लिये हुए मुँदी भलमंसीके साथ जीवनके दिन पूरे कर दे । परीक्षा वह चीज है। जिसके नामसे बडे बडे देवता और ऋषी मुनि भी कांप उठे हैं फिर हमारे जैसे साधारण मनुष्योंका सामर्थ्य ही कितना है, जो इसके साम्हने पैर जमा सकैं ।

परीक्षा कितनी बुरी बला है, इस बातको वे लोग अच्छी तरह जान सकते हैं, जिनको किसी विद्यालयमें परीक्षा देनेका अवसर मिला है । जब परीक्षाके दिन निकट आते हैं, तब दिनरात परिश्रम करने-

पर भी संतोष नहीं होता है। जीमें सदा यही खटका रहता है कि, कहीं फेल न हो जायें। जो विद्यार्थी देवी देवताओंकी दिल्लगी किया करते हैं, वे भी परीक्षाके समय मन ही मन उनसे प्रार्थना करते रहते हैं। कोई पंडितके पास दौडा जाता है और कोई ज्योतिषीजीकी शरण लेता है। मानो कोई उनपर बड़ी भारी विपत्तिका पहाड़ आ पड़ा है। सब यही कहते हैं, देखे क्या होता है?

सचमुच परीक्षा ऐसी ही भयानक है। " **स्वर्णकारने स्वर्ण जब, दियो अग्निमें डाल। कांप उठ्यो पानी तबै, देख परीक्षाकाल**।,, एक उर्दूका शायर भी कहता है, " **इस शर्तपर जो लीजे, तो हाजिर है दिल अभी। रंजिश न हो फरेब न हो इम्तिहां न हो** " तात्पर्य यह है कि, परीक्षा सबके जीमें खटकती है, प्यारी किसीको नहीं लगती।

संसार छलछिद्रसे भरा है। जिधर देखोगे, उधर धोखेकी टट्टी और आडम्बरका ठाठ दिखाई देगा। ऐसी अवस्थामें परीक्षाकी बहुत आवश्यकता है। बहुधा देखा गया है कि, कपटमूर्ति चतुरचूडामणि लोग ही बहुत मधुरभाषण और शिष्टाचार प्रदर्शन करते हैं। अल्पज्ञ पुरुष ही, " **बड़ा धोता बड़ा पोथा पंडिता पगड़ा बड़ा**" का उदाहरण बनते हैं। सुगन्धरहित पुष्प अधिक रंगीला होता है। अधर्मात्मा ही धर्मध्वजी बनता है। इसलिये संसारमें परीक्षाके विना काम चलना कठिन है। यदि किसीकी परीक्षा न की जावेगी, तो फिर यही कहना पडेगा कि—

" काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः "

यों तो हमारे समाजमें दिल्लीके पांचवें सवारोंमें नाम लिखानेवाले सिंगई, सवाई सिंगई, रायबहादुर, सी, आई, ई आदि

बडी २ पदवियोंके धारण करनेवाले धानिक, न्याय निशाकर, व्याख्यानवाचस्पति कहलानेवाले भारी २ पंडित, और हलुवा पूडी उडाकर पेटपर हाथ फेरेनेवाले भट्टारक ब्रह्मचारी बीसों हैं, परन्तु यदि उनकी परीक्षाकी जाय, तो दो चारही ऐसे निकलेंगे, जो अपने नामकी रक्षा कर सकेंगे।

बडे आदमियोंसे यदि आपका कुछ दिन संसर्ग रहा हो, तो आपने देखा होगा कि, ऊंची २ दीवारोंकी ओटमें कितना व्यभिचार और कितना दुराचार हो रहा है। उन गुप्त कथाओंको यदि सप्रमाण प्रकाशित किया जाय, तो न जाने उन बडे आदमियोंके बडप्पनका क्या हो? भट्टारकों तथा उपदेशकोंसे कभी काम पडा हो, तो आपको विदित होगा कि, " संसार दुःखरूप है, दुःखोंका अत्यन्ताभाव मोक्षके अतिरिक्त कहीं नहीं हैं " आदि विशद उपदेश देनेवाले उन महात्माओंका अन्तरंग चरित्र कितना मलिन है।

खेदकी बात है कि, कभी २ हम लोग बाह्याडम्बरमें भूलकर पीतलको कांचन, सर्पको कंठहार, और सीपको सुवर्ण समझ लेते हैं। इसप्रकारके भ्रममें हम अनेक बार पड चुके, तथापि '**विषकुंभ पयोमुख**' पुरुषोंको हम पहिचान नहीं सकते। जिसको एक दिन नन्दनवन का पारिजात, अमृतका आकर, देवस्वरूप समझ बैठे थे, आज देखते हैं कि, वह कलिकालका अवतार प्राणघाती विषधर है।

पाठक! जो पुरुष तुम्हारे मुंहसे धर्मकी जय बुलवा, धर्म और प्रेमका उपदेश दे, बडे धर्मात्मा दानी बन रहे हैं, जो पुरुष शुद्धाम्नायकी चीत्कार कर धर्म प्रचारका झंडा उडा रहे हैं, और जिन्हें

आप धर्मके मुख्य रक्षक समझते हैं, वे सब साधुताके आवरणसे अपने असली रूपको छुपाये हुए हैं। एक बार तुम इनके आचरणको हटा देखो, देखोगे कि ये मेषचर्माच्छादित सिंह हैं। अवसर मिलनेपर ये स्वदेश और स्वजातिके खून पीनेमें भी कोर कसर नहीं करेंगे।

हम नितान्त ही अकिंचित्कर लोगोंकी बातें नहीं कहते। किन्तु समाजके दो एक गण्य मान्य पुरुषोंकी ही बात कह रहे हैं। लोगोंको आशा थी कि, लक्ष्मी और सरस्वतीके इस अपूर्व सम्मेलनसे समाजका बहुत कुछ कल्याण होगा। अथवा इन न्यायनिशाकरोंसे धर्मका मुंह उज्ज्वल होगा। परन्तु वह आशा धूलमें मिल गई। उनका चरित्र सुनकर हम चकित हो गये। प्रकृतिके विरुद्ध महा मलिन आचरण, विषयलिप्सा, तथा मिथ्या प्रतारणा कहीं देखा चाहो, तो इन महात्माओंके पास जाओ। इन सबको मूर्तिमान् पाओगे।

औरोंको चाहे जैसी लगै, पर हमारे शास्त्रकारोंको तो परीक्षा बडी प्यारी लगती थी। परीक्षाके विना अध्ययन अध्यापन नहीं होता था, और न गुरुशिष्यका सम्बन्ध ही स्थिर होता था। संसारकी भली भांति, परीक्षा करके लोग जब उसे निस्सार जान लेते थे, तब घर द्वार छोडकर मुनि होते थे। हम लोगोंके समान परीक्षाको प्रधान माननेवाला शायद ही कोई होगा। विना परीक्षा किये हम साक्षात् भगवानको भी नमस्कार नहीं करेंगे, और की तो बात ही क्या है? भगवत्समन्तभद्राचार्यने अपने **आप्तकी परीक्षा** कैसे २ विलक्षण अनुमान प्रमाणोंसे की है? जो जितना परीक्षक होगा, उतना ही

वह अंधकूपसे बचेगा। जो पुरुष अपने इष्टमित्र बन्धुओंकी यथा-साध्य परीक्षा किये रहता है, वह कभी धोखा नहीं खाता। और जो केवल अन्ध विश्वासी होता है, उसे अवश्य ही एक दिन अपने कार्यपर पश्चात्ताप करना पडता है। इसीलिये पुराने लोगोंने कहा है कि, "**गुरू कीजे जानकर पानी पीजे छानकर।**"

जिनका यह सिद्धान्त है कि, प्रत्येक मनुष्यके कर्म उसके सच्चे परीक्षक हैं, परिणामके एक अंशमात्रसे उसका सम्बन्ध होता है। ऐसा कोई स्थान ही नहीं है, जहां कर्मके सम्बन्धसे बचकर पाप किये जा सकें, उनसे कभी कोई दुष्कर्म नहीं हो सकता है। परंतु जिनका कर्मकी सत्तापर विश्वास नहीं, जो संसारको सुखोंका सार समझते हैं, वे छुपकर नित्य महामहा पाप किया करते हैं। परंतु स्मरण रहे कि, पाप करनेवाला चाहे जितना प्रतापी और बलशाली हो, चाहे जितने गुप्त रहकर दुष्कर्म करता हो, किन्तु एक न दिन परीक्षाकी प्रचंड आंचमें उसकी कलई खुल जावेगी, और कर्म जो सच्चे परीक्षक हैं, वे तो मनमें पापका विचार आते ही उसे बांध लेंगे।

परीक्षा कडवी है सही, पर "**परिणामेऽमृतोपमा**" अवश्य है। परीक्षाहीके प्रतापसे संसारमें श्रमशाली और सच्चरित्र लोगोंका आदर हो रहा है। यह परीक्षाहीकी महिमा है कि, जो विद्यार्थी केवल अपने रंगरूप और वाचालताके कारण छात्र समाजके नेता बने हुए थे, अपना सा मुह लेकर पीछे पडे रह गये और जो गरीब विद्यार्थी अर्थाभावसे किसी गिनतीहीमें न थे वे सबके मुखिया बन बैठे। अस्तु! इसमें सन्देह नहीं कि, परीक्षामें पडना बडा ही कठिन कार्य है, पर यदि कोई माईका लाल इससे उत्तीर्ण हो जाता है, तो फिर उसके आनन्दकी सीमा भी नहीं रहती है।

परीक्षामें भय उसे है, जो खोटसे भरा हो और जिसे निश्चय हो कि, उसके पास शुद्धताका लेश नहीं है। अग्निमें तपाये जानेपर वही सुवर्ण जलता और घटता है, जिसमें खोट रहती है। नहीं तो सांचको आंच ही क्या है? बल्कि यों कहना चाहिये कि, स्वर्ण सदा ही सुवर्ण है, वह कभी नहीं जलता। जलता वही है, जो जलानेके योग्य है और जो सुवर्णके असली रूपको बिगाड रहा है। शुद्ध सुवर्णको कोई चाहे जितना तपा देखे, वह न रती भर घटेगा, न रती भर जलेगा और न कुछ उसकी असलियतमें फर्क आवेगा वरन, तपानेसे दूना दमकने लगेगा। पर हां, सुवर्णके नामसे विकनेवाले पीतलको सदा भय है।

(सुदर्शनसे उद्धृत व परिवर्त्तित।)

विविध समाचार।

स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीके शोकमें आरा, बम्बई, दाहोद आदि अनेक स्थानोंमें समायें हुई हैं।

आगामी फाल्गुण मासमें श्रवणवेलगुमें श्री गोमटेश्वर भगवानका अभिषेकोत्सव होनेवाला है। गोमटेशकी विशाल मूर्तिके ऊपर एक मंडप बनानेका विचार भी हो रहा है

काशीस्थ यशोविजय पाठशालाके संस्थापक श्रीधर्मविजयजी यतिको काशीके पंडितोंने **शास्त्रविशारद** धर्माचार्यकी पदवीसे भूषित किया है।

बम्बईमें दशलक्षण पर्वके अवसर पर पं. नरसिंहदासजी अजमेरसे आनेवाले हैं। इसवर्ष आप ही बम्बईवालोंको तत्त्वार्थसूत्रका अर्थ सुनवेंगे।

सुना है कि—मान्यवर पंडित गोपालदासजी वरैया इसवर्ष दिल्लीमें दशलक्षणपर्व पर धर्मामृतकी वर्षा करनेवाले हैं। बहुत अच्छी बात है।

सम्मेदशिखरजीके विषयमें अभीतक कुछ भी यिश्चय नहीं हुआ है। अधिकारियोंकी इच्छाका कुछ भी पता नहीं लगता है। सुना है आगामी मासमें रांचीमें सरफ्रेजर निश्चित फैसला करनेवाले हैं।

ॐ

मनोरमा।

आरानिवासी श्रीयुत बाबू जैनेन्द्रकिशोरद्वारा लिखित।

पहिला परिच्छेद।

दिनभरका थका हुआ सूर्य्य जलदी २ अपनी राह तै कर रहा है और उसका प्रकाश धीरे २ कम होता जाता है। चिड़ियें अपने २ बसेरेपर पहुंचनेकी आशामें पंख फटफटाती हुई उड़ी जा रही हैं। किसान अपने २ बैल हांकते हुए अपने घरकी ओर चले जाते हैं। इसी समय वैजयन्ती नगरीसे उज्जैन जानेवाली सड़कपर एक रथ बड़े सजधजसे जा रहा है। इसमें दो सुन्दर नागौरी बैल जुते हुए हैं। बैलोंके सींग सोनेसे मढ़े हुए हैं, जिनपर जड़ाऊ काम अपनी विचित्र छटा दिखा रहा है। बैलोंपर जरदोजीकी झूलें पड़ी हुई हैं और सोने चांदीके गहने उनकी सुन्दरताको चौगुनी बढ़ा रहे हैं। रथपर भी क़ीमती कमखाबके पर्दे पड़े हुए हैं। सारथी बड़े आन बानसे बैठा हुआ रथ हांक रहा है। उसकी अवस्था चालीस वर्षके लगभग जान पड़ती है। मुखसे शान्ति तथा करुणा झलक रही है। बदनपर कीमती कपड़े पड़े हुए हैं। रथकी सजावट आदिपर ध्यान देनेसे यही जान पड़ता है कि यह सवारी अवश्य किसी सेठ साहूकारकी है।

सारथी वेगतासे रथको हाँके जाता है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि किसी सेठ साहूकारकी जनानी सवारी जा रही है किन्तु संगमें दाई लौंड़ी एक भी नहीं है। रथके भीतरसे कलेजेको पानी करनेवाली रोनेकी आवाज आ रही है जिसे सुनकर पत्थरका भी हृदय मोम होता है!

यह रथमें कौन सवार है जो रोरोकर अपने कलेजेके टुकड़ेको आंखोंकी राहसे आंसूके संग बहा रही है? इसके रोनेका क्या कारण है? क्या यह मेहरसे पीहरको जा रही है जो इसप्रकार विलाप कर रही है? नहीं २! यदि ऐसा होता तो इसके साथ साथ कुछ अटला खटला जरूर होता परन्तु यह तो अकेली है! तो क्या सारथी इसे कहीं कपटसे लेकर भागा जाता है? यह भी संभव नहीं है क्योंकि इस विचारी अनाथिनीके रोनेपर सारथीका भी कलेजा फटा जाता है। इसको भी रोते २ हिचकी बंध गई है और आंखें लाल हो गई हैं। उसके मुखसे करुणारस टपक रहा है। भगवान् जाने क्या बात है! यह पेचीला मामला कुछ भी समझमें नहीं आता है।

वैजयन्ती नगरीसे कोई एक मंजिलकी दूरीपर एक भयानक वन है। बड़े २ वृक्ष कटहर आम महुआ पाकर पीपर ऊमर कठूमर और शीशम आदिके इतने सघन हैं कि दिन होनेपर भी यहां रात्रिके ऐसी अंधियारी छाई है और हाथसे हाथ नहीं सूझ पड़ता है। यह वन सिंह हाथी सांप विच्छू रीछ आदिका स्थान है। पहाड़ियोंका सिलसिला कोसोंतक चला गया है जिनपर झरते हुए झरने करुणामय रुदनकी छटा दिखा रहे हैं अथवा यों

कहिये कि किसीकी वेदनापर कलेजा फाड़ २ कर डाढ़ें मारकर रो रहे हैं। पर्वतोंकी गुफाएं ऐसी भयानक हैं कि यदि उन्हें पाताालपुरी कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा।

सूर्य्य महाराजको अनाथिनीका रुदन असह्य हो गया अतः उन्होंने अपना मुंह रातकी काली चादरसे छिपा लिया। कमलके प्रेमी भ्रमर अनाथिनीके ऐसे कमल रथके भीतर तड़फ २ कर जान देनेकी चेष्टा करने लगे। चकवा चकवी अपने परस्पर विरहमें विना जलकी मछलीसे तड़फ रहे हैं। क्रूर तारे अपनी खिड़कियोंसे झोंक ताक कर रहे हैं। और अपनी क्रूरतापर खिले जा रहे हैं। वनमें झिल्लियोंकी झनकारसे कान परे आवाज नहीं आती है।

इसी समय सारथीने रथको वीच वनमें खड़ा कर दिया। अनाथिनी अपने इष्टदेव जिनेन्द्रभगवानको पुकार २ कर रो रही है, सारथीका हृदय दया तथा करुणासे फटा जाता है। सत्पुरुषोंका हृदय दूसरोंके दुःखपर अवश्य ही द्रवीभूत होता है। वे दूसरोंकी आत्माको अपनी आत्माके समान जानते हैं अतः वे दूसरोंके दुःखसे दुःखित होते हैं।

सारथीने रथका पर्दा उठा दिया उसमेंसे एक चाँदका टुकड़ा (सुन्दर स्त्री) बाहर निकला। इस सुन्दर स्त्रीकी सुन्दर कान्तिसे अन्धेरा बीहड़ वन भी प्रकाशमान् हो गया। सुन्दर रमणियोंकी आदर्श (नमूना) अनाथिनी रथके बाहर निकली। इसके चेहरेसे शोक विपत्ति और उदासी बरस रही थी। इतनेपर भी इसकी सुन्दरतामें बट्टा नहीं लगा था। गोरे और गुलाबी गालोंपर आंसूके बूंद गुलाबपर ओसकणिकाओंकी शोभा दिखा रहे थे। अना-

थिनी एक सर्वाङ्गसुन्दर रमणीरत्न है। इसके किस २ अंगकी बड़ाई गाई जावे ? इसके वस्त्राभूषणोंपर ध्यान देनेसे यही ज्ञात होता है कि यह किसी बड़े घरानेकी स्त्री है। चेहरेसे सदाचार तथा धर्म्म स्नेहकी झलक दिखाई पड़ती है। अनाथिनी जब रथसे नीचे उतरी, तब सारथी पछाड़ खाकर उसके चरणोंपर गिर गया।

अनाथिनी आजकलके ऐसी अनपढ़ स्त्री नहीं थी। वह धर्म्म-प्रतिपालिका थी, अतः ऐसे बुरे समयमें भी उसने साहसको हाथसे नहीं जाने दिया। सारथीकी दशा तथा स्वामिभक्ति देखकर उसे रोमांच हो आया। तुरंत ही उसने अपनी आंखोंके आंसुओंको अपने आँचलसे पोंछा और सारथीको उठाकर कहा—

"प्यारे सेवक ! तुम इतने अधीर क्यों हो रहे हो ! उठो अपने घरका रास्ता लो और मुझे भगवान्‌के शरणमें छोड़ो !"

सारथी०—(हाथ जोडकर रोतेहुए) "स्वामिनी ! ऐसे बीहड़ वनमें आपको अकेली छोड़ते हुए मेरा हृदय फटा जाता है। हाय २ मैं क्या करूं ! भगवन् ! हे दीनानाथ ! यह कोमलाङ्गी फूलकी सेजोंपर सोनेवाली इस कंटकमय भयानक वनमें कैसे रहेगी ? (मनमें) हाय ! सेवकाई भी क्या बुरी बला है ? इसमें आदमीको घृणितसे घृणित काम करने पड़ते हैं ! क्या मैं इतने दिनोंतक यही पाप करनेके लिये जीता रहा हूं ? हे भगवन् ! मैं निर्दोष और लाचार हूं ! जो कुछ अनर्थ कर रहा हूं, वह अपनी स्वामिनीकी आज्ञासे करता हूं ! हे दीनानाथ ! मेरे अपराधोंको क्षमा करियेगा !"

अनाथिनी—"नररत्न ! तुम्हारी बातोंसे मुझे आश्चर्य होता

है! क्या तुम नहीं जानते हो कि सबका रक्षक आयुकर्म ही है! जो आयुकर्म हमारा शेष है, तो वह हमारी अवश्य रक्षा करेगा! तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो? और फिर इसमें तुम्हारा अथवा किसीका भी दोष नहीं है, यह सब हमारे पूर्वोपार्जित पापोंका प्रायश्चित्त है। अब तो अपने कर्मोंका फल भोगना ही है और जो कुछ भागमें है सो सहन करते ही बनेगा। तुम व्यर्थ रो रो कर मुझे भी व्याकुल कर रहे हो!"

सारथी—"स्वामिनी! मैं निर्दोष हूं! सर्वथा निर्दोष हूं! इ—स—में—मेरा कुछ दो—ष—.........." इसके बाद सारथीका गला भर आया रोते २ हिचकी बँध गयी और वह फिर अनाथिनी-के चरणोंपर गिर गया। अनाथिनीने उसे उठाकर फिर भी ढाढस दिया। वह पुनः उठा और हाथ जोड़कर कहने लगा—

"स्वामिनी! मेरे अपराधोंको क्षमा करियेगा! मैं विवश हूं! पराधीन सपने सुख नाहीं—मैं सेवक हूं—जिसका नमक खाता हूं उसकी आज्ञा पालन करना ही अपना कर्तव्य जानता हूं। सेठ मही-पालकी स्त्रीकी यही आज्ञा है। मैं क्या करूं? तुम्हारे कहनेसे मैंने तुम्हें मेहर भी पहुंचाया, पर विपत्ति आनेपर कोई भी किसीको नहीं पूछता है। बुरे समयमें बाप भाई कोई भी काम नहीं आते हैं यहां-तक कि अंधेरेमें अपने शरीरकी छाया भी दूर हो जाती है। हाय २! तुम्हारे मातापिताने भी तुम्हे शरण नहीं दिया! हाय। मैं लाचार हूं! अच्छा जाता हूं! प्रणाम—"

इतना कहकर सारथीने रथ हांक दिया। विचारेकी बुरी दशा है। अनाथिनीको छोड़कर जानेकी इच्छा ही नहीं होती है। ज-

हांतक नजर पहुँचती है, वह मुड़ २ कर अनाथिनीको देखता जाता है और आंखोंसे अविरल आंसू बहाता जाता है। थोड़ी दूर जाते जाते उसके हृदयमें अनाथिनीके निष्कपट प्रेमकी ऐसी तरंग उठी कि उसे वह संभाल नहीं सका और अचानक उसने रथको फेर ही तो दिया। बातकी बातमें वह पुनः अनाथिनीके पास आ पहुँचा। अनाथिनीने पूछा "ऐ दयालु सारथी! तू पुनः लौट क्यों आया?"

सारथी—"स्वामिनी! आपको अकेली छोड़नेका साहस नहीं होता है। मैंने बहुत कुछ जोर किया परन्तु मेरा जी नहीं मानता है। अब मैं भी लौटकर नहीं जाऊंगा और आपके साथ रहूंगा।"

अनाथिनी—"नररत्न! तू सेवकोंमें धन्य है तेरी बड़ाई मैं किस मुँहसे गाऊं? किन्तु तेरा मेरे साथ रहना ठीक नहीं है। दासवृत्ति ऐसी ही होती है? तू जाकर अपने बालबच्चोंकी सुधि ले। मुझ अभागिनीके पीछे कहां २ धूल उड़ाता फिरेगा? अपने परिवारका तूही पोषक है। तेरे बालबच्चे भूखों मर जायंगे।"

सारथी—(हाथ जोड़कर) "स्वामिनी! मैं सब समझता हूं किन्तु अपने जीसे लाचार हूं। दयाकर मुझे साथ रहने दीजिये।"

अनाथिनी—"सेवकरत्न! मैं बिनती करती हूं कि तू दया कर अपने घरको लौट जा, नहीं तो मैं और भी दुखी होऊंगी"

सारथी—(दीर्घनिश्वास डालकर) "खैर! अगर आपकी यही मर्जी है तो मैं लाचार हूं—अच्छा जाता हूं। प्रणाम।"

सारथी छाती पीटता और आंसू बहाता हुआ अनाथिनीसे बिदा हुआ और थोड़ी देरमें आंखोंसे ओझल हो गया।

सारथीके जानेपर अनाथिनीने अपने व्याकुल हृदयको बहुत कुछ ढाढस दिया "जो भागमें है उसे अवश्य भोगना है, फिर अधीर होनेसे कुछ हाथ नहीं आनेको है। जो कुछ पूर्वोपार्जित पाप है उसका प्रायश्चित अवश्य होगा फिर रोने धोनेसे क्या लाभ है ? जो कुछ विपत्ति आ गई है उसे सन्तोष तथा धैर्य्यसे सहन करूं तथा भगवानका ध्यान करूं कि विपत्तिकी घड़ी शीघ्र कट-जाय आदि।"

अब इस भयानक वनमें विचारी अनाथिनी अकेली रह गयी। इस समय इस विचारीका रक्षक यहांपर भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई नहीं है। अनाथिनीने अपनेको लाख धैर्य्य दिया परन्तु अबला वास्तवमें अबला ही होती हैं। स्वभावसे ही उनका हृदय कोमल होता है। अपनी दशा और जनशून्य बनकी छटा देखकर उसका धैर्य हाथोंसे जाता रहा। सारा वदन थरथर काँपने लगा। गुलाबके ऐसा कोमल मुखड़ा कुम्हला गया। आखोंसे चौधारे आंसू बह रहे हैं। आंसू काहेको एक नदी है जो उमड़ी आती है। अपने पूर्वकर्मोंको स्मरण करती है और पछाड़ खाकर धरतीपर गिर जाती है। शरीरके गहने कपड़ोंपर दो २ अंगुल मिट्टी जम गयी है।

पाठक! यह वही कोमलांगी रमणी है जिसकी सेवा टहलमें पचासों दासियां हाथ बाँधे खड़ी रहती थीं। हाय आज कोई धरतीसे उठाकर बैठानेवाला भी नहीं है। एक दिन वह था कि

वह फूलोंकी सेजपर सोती थी। आज पूर्वोपार्जित कर्मोंके प्रसादसे विचारी कंटकमयी भूमिपर तड़फ २ कर प्राण खो रही है। रोते २ बिचारीकी बुरी गत हो गयी है! वह कलेजा पीट २ कर कहती है—हायरे! ऐसे अशुभकर्म्मोंका उदय आया कि अपने पराये सभी छूट गये। पिताने भी बिसार दिया और माताने भी मेरी सुधि नहीं ली। माता! हाय २! क्या तुमने अपने गर्भमें नौ महिने-तक मुझे इसी दिनकेलिये धरा था? इस अभागिनीपर तुम्हें तनिक भी दया नहीं आई। हाय! तुमने अपने कलेजेपर ऐसा पत्थर बैठा लिया! हे भगवन्! मैं बेसहारे हो गयी! स्त्रीको दोही ठिकाना होता है मेहर या पीहर। हे दुर्दैव कर्म्म! तूने मुझसे दोनों छोड़ा दिया। कहींका नहीं रक्खा। हे दीनानाथ! अब केवल आपहीका सहारा है। पिता माता भाई बहिन सभीने मुझे त्याग दिया। हे प्राणपति! आज मेरे गलेमें फांसी तुम्हारे नहीं रहनेसे लगी। अगर तुम होते तो कोई मुझे उंगलीसे भी नहीं बता सकता था। तुम्हारे वियोगहीने मुझपर विपत्तिका पहाड़ गिरा दिया। पीहरवालोंने देशसे निःकारण निकाल दिया और मेहरवालोंने भी शरण नहीं दिया! हाय २ मैं बेसहारे हो गई! हे प्राणनाथ! दयाकर स्वप्नमें भी दर्शन दो कि, मेरे डूबते हुए हृदयको तिनकेका सहारा मिले।"

अनाथिनीका विलापपूर्वक रुदन सुनकर वनके पेड़ पत्ते नदी नाले तथा जीवजन्तु सभी दुखी हो रहे हैं। सिंह चीते आदि दुष्ट जन्तु तक इसके रोनेपर आंसू बहा रहे हैं।

इसप्रकार रोते २ अनाथिनी थककर एक पेड़के नीचें बैठ

गई और श्रीजिनेन्द्रभगवानकी स्तुति करने लगी०--"हे दीनानाथ भगवान्! अब इस अनाथिनीके नाथ आप ही हैं! आप अपने ही शरणमें इस दुखिया अभागिनीको रखिये इत्यादि"

इसी समय वनमें घोड़ेकी टाप सुन पड़ी। अनाथिनी भौंचक होकर अकचकाकर इधर उधर देखने लगी। एक सजीला जवान सिरसे पैरतक हथियारोंसे लदा हुआ रथमें सवार आता हुआ दिखाई पड़ा। नये आये हुए जवानने दूरसे अनाथिनीको देखा और उसने अपने रथको मोड़कर वहीं पहुंचाया जहाँ वह विचारी बैठी हुई अपने भोगोंको रो रही थी।

अनाथिनी तो नव आगत पुरुषको देखकर भयसे थर २ कांपने लगी। आँखोंमें अंधेरी छा गयी। कलेजा धडकनसे बाँसों उछलने लगा।

यह नवागत जवान राजगृही नगरीका युवराज है आज वनक्रीड़ाके लिये इस वनमें आ निकला है। यह बड़ा ही कुचेष्टित तथा कामीपुरुष है। राजगृहकी युवतियां इसके नाम पर कान पकड़ती हैं और अपनेको इससे छिपाये रखती हैं क्योंकि इस पापी कुलांगारने कितनी स्त्रियोंका शील भंग कर डाला है उसकी गिनती ही नहीं। आज इस पापीकी दृष्टि विचारी अनाथिनीपर पड़ी है। देखिये इसका फल क्या होता है।

जवान अपने रथसे उतर पड़ा और विचारी अनाथिनीपर बाघके ऐसा टूट पड़ा! अनाथिनी तो भयसे मूर्छित हो गयी। जवानने उसे उठाकर अपने रथमें लेटा दिया और आप भी सवार होकर अपनी नगरीकी ओर चल पड़ा।

दूसरा परिच्छेद।

पश्चिमकी ओर मालवादेशमें एक उज्जैनी नगरी है। नगरीके चारों ओर मजबूत शहरपनाह है जिसमें बड़े बड़े बारह फाटक बने हुए हैं। फाटकोंकी मजबूतीपर भीमके भी दांत खट्टे होते हैं अर्थात् बन्द होनेपर बड़े २ सूरमा भी घुसनेका साहस नहीं कर सकते हैं। हाटबाट गलीकूचा सभी रौनकपर है। नगर-निवासी धन सम्पत्ति तथा सुख चैनमें मस्त हो रहे हैं।

इसी नगरीमें एक **महीदत्त** नामक सेठ रहते हैं। नागरिक धनी जनोंमें इनकी ध्वजा ऊंची हो रही है। शुभकर्मोंके उदयसे इस समय सेठजीका बोलबाला हो रहा है। धन जन मान बड़ाई सुख तथा चैन सभी सेठहीजीके भाग्यमें है। विद्या बल बुद्धि धन कुल और जाति आदि कर्माधीन हैं अर्थात् आदमी पूर्वजन्ममें जैसी कमाई करता है उसीकी मजूरी इस जन्ममें पाता है। पूर्व-जन्मकी कमाईके धनी सेठको इस जन्ममें सभी कुछ प्राप्त है। आपकी जाति और कुल तो उत्तम है ही सुतरां आपका धर्म्म जैन होना तो सोना और सुगन्धकी कहावतको चरितार्थ कर रहा है। सेठानीका नाम **श्रीमती** है। यह आजकलकी स्त्रियोंके ऐसी क-र्कशा तथा अज्ञानी नहीं है वरन् एक उच्चकुलकी धर्मपारायणा तथा पंडिता है। यदि इन्हें शीलकी आकर तथा धर्मदिवाकर कहैं तो अनुचित नहीं होगा। हमारी पूर्वपरिचिता अनाथिनीका जन्म इन्हीं श्रीमती सेठानीके गर्भसे हुआ है। घरौआ असली नाम अनाथिनीका **मनोरमा** है।

पाठक! अब मैं अनाथिनीको मनोरमाके नामसे लिखा करूंगा।

जैसा बीज और भूमि होती है तैसी ही उपज भी होती है, महीदत्त तथा श्रीमती ऐसी धर्मधुरन्धरा और शीलवतीकी पुत्री कैसी होगी? इसका अनुभव हमारे पाठकवृन्द स्वयं सहज-हीमें कर सकते हैं।

आजकल स्त्रीशिक्षाके लाखों विरोधी नजर आते हैं। यदि कोई इस कुरीतिको दूर करनेका साहस भी करे, तो चारोंओरसे उसपर ऐसे २ वाक्प्रहार होने लगते हैं कि अन्तमें उसे हार मानकर बैठ जाना पड़ता है। स्त्रियोंका सबसे बड़ा कर्तव्य अपने सतीत्वधर्मकी रक्षा करना है किन्तु विना शिक्षाके इस धर्मका पालन टेढ़ी खीर है क्योंकि संसारमें छलबल कपट तथा क्रूरता इस-प्रकार फैली हुई है कि उसमें अनायास ही अशिक्षित स्त्रियां फंस जाती हैं और अपना सर्वस्व नाश करके उभय कुलको कलङ्कित करती हैं। ऐसी अवस्थामें उनके अपने पराये कोई भी उनका मुख देखना नहीं चाहते हैं निदान उन्हें अनाथाके ऐसा दुःख तथा क्लेशमें जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त पतिपरायणता क्षमा शीलता आदि गुण भी शिक्षाहीपर निर्भर हैं। जब शिक्षाद्वारा स्त्रियां अपने धर्म्मको जान जायेंगी तब उनसे कोई भी दुराचार नहीं हो सकता है अतः लोगोंका यह कहना कि 'स्त्रीशिक्षासे व्यभिचारकी वृद्धि होती है' सर्वथा निर्मूल है।

हमारे सेठ महीदत्तजी तथा उनकी सेठानी स्त्रीशिक्षाकी वि-रोधी नहीं थीं। अतः जब मनोरमा आठ वर्षकी हुई तब एक सु-योग्य गुरुके पास पढ़नेको बैठाई गई। गुरुने भी छही महीनेमें सारी विद्याको घोलकर मनोरमाको पिला दी।

पाठक! आप आश्चर्य करेंगे कि छही महीनेमें मनोरमा सम्पूर्ण विद्यामें पारङ्गत कैसे हो गयी?

बुद्धिमानोंके आगें कोई बात भी असाध्य तथा असंभव नहीं है। जब रेल नहीं बनी थी तब हम लोग स्वप्नमें भी ध्यान नहीं करते थे कि दो दिनकी राह दोही घंटेमें आदमी चल सकेगा। योग्य गुरु प्राप्त होनेसे पर्वतका राई हो जाता है। प्राचीन समयके गुरु आजकलके गुरुओंके ऐसा पेटार्थी तथा स्वार्थी नहीं होते थे। पढ़ानेके उपलक्षमें वे एक टका भी नहीं लेते थे वरन् अपनी गिरहसे विद्यार्थीयोंको खिलाते थे। आजकल तो दो रुपये मासिकपर गुरु रक्खे जाते हैं। गुरु साहब भी गोरु साहब हो जाते हैं अर्थात् वे अपने भूसे घासहीसे मतलब रखते हैं–' मुर्दा नरकमें जाय या स्वर्गमें जाय हमें हलुआ पूड़ी जपनेसे काम है–' की कहावतको चरितार्थ करते हैं। संसारचक्रमें जिसे देखिये वही गुरु–बन बैठता है और चेला बनना कोई नहीं चाहता है किन्तु गुरु बनना दाल भातका नेवाला नहीं है। हमारे जैनसमाजमें गुरुका अधिकार श्रीमुनिराजहीको दिया गया है और पढनेके लिये भी पूर्व समयमें बालक इन्हींकी सेवामें भेजे जाते थे। क्योंकि "गु" नाम तिमिरका है और 'रु' का अर्थ है प्रकाश करना अर्थात् जो अज्ञान-रूपी अन्धकारको दूर करके ज्ञानका प्रकाश करै वही गुरु है। शास्त्रोंमें सच्चे गुरुका स्वरूप इसप्रकार कहा है०–जिसको क्रोध, मान, माया और लोभ नहीं है तथा जिसके आरंभ और परिग्रह नहीं है एवं जो ज्ञान ध्यान तथा तपमें सदा मग्न है वही सच्चा गुरु है। संसार सागरके पार होनेकी नौका गुरु ही है। जब लोक

और परलोक दोनोंका भार गुरु ही पर है तब साधु महात्मा ही गुरु होनेके योग्य हैं। गृहस्थी गुरुसे तो किसीप्रकार भी उपकारकी संभावना नहीं है। सच्चे गुरुकी पहचानके लिये विशेष अनुभवकी जरूरत है। क्योंकि झूंठी जटा जूटके बढ़ानेवाले साधु टोकरियों मारे २ फिरते हैं और भोलेभाले संसारको ठगते फिरते हैं। आज कल तो "लोभी गुरु और लालची चेला, दोनों नरकमें ठेलमठेला" की लोकोक्ति चरितार्थ होती है।

संसारकी रमणियोंमें हमारी मनोरमा सभी बातोंमें आदर्शरूप हुई। सुन्दरता तथा लावण्यमें बेजोड़ थी। यदि इसका रूप सुरकन्यायें देखतीं तो वे भी लज्जित होतीं। यदि मनोरमाको यक्ष कुमारीका प्रतिबिम्ब कहूं तो अनुचित नहीं होगा। समयानुसार मनोरमाका चित्र पाठकोंको अर्पण करूंगा।

जब मनोरमा सोलह वर्षकी हुई तब उसके माता पिताको उसके व्याहकी चिन्ता हुई।

सेठ महीदत्तजीने एक अनमोल माणिककी माला बनवायी और उसमें बारह करोड़ मोहर खर्च किये। माला तैयार होजानेपर सेठने अपने पुरोहितको बुलाकर कहा०—

'महाराज! आपको इसलिये कष्ट दिया है कि—मनोरमा अब स्यानी हो गई। उसके व्याहकी चिन्ता हमारे मनमें लग रही है। "लायकहीसों कीजिये बैर व्याह अरु प्रीत।" यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है। इसलिये मैंने बारह करोड़ मोहरके लागतकी माला बनवायी है। आप इसे लीजिये और देश २ घूमकर इसका ग्राहक ठहराइये। जो धनी और योग्य होगा वही इसे मोल लेनेका साहस

करेगा। बस आप मालाका मोल न लीजियेगा यदि योग्य वर हो और आपके कोकशास्त्रानुसार मनोरमाके लायक हो तो उसी ग्राहकसे हमारा जुहारु कहियेगा और यही माला उसे टीका दीजियेगा।"

पुरोहितने सेठजीसे माला लेकर कहा०—"महाशय! आपने योग्य वरकी अच्छी जाँच निकाली। ठीक है, बुद्धिमानोंके आगे कठिनसे कठिन काम भी सुलभ होजाता है। अब मैं जाता हूं।" सेठजीने पुरोहितको प्रणाम किया और पुरोहित आशीर्वाद देकर बिदा हुए।

तीसरा परिच्छेद।

कौशल देशके अधिकारमें वैजयन्ती नगरी है। इसके अधिकारमें बारह कोट हैं। वापीकूप तड़ाग बागबगीचे और देवालय आदिसे नगरी पूर्ण है। बाजार इसका चौपड़-नुमा बना हुआ है अर्थात् इस नगरीके चौरास्तोंपर खड़े होनेसे चौपड़की बनावट मालूम पड़ती है। दूसरे बाजारोंकी अपेक्षा जौहरीबाजार रमणीक है। जौहरियोंकी दूकानों पर ताकनेसे आखोंमें चकाचौंध लग जाती है। जिधर आंख उठाकर देखिये उधर ही हीरा मोती माणिक और लालके पुंज धरे हैं। दूकानोंकी सजावट और मोतियोंकी झालरपर नजर नहीं ठहरती है। जौहरियोंके ठाट बाट और आनबान देखने ही लायक है। नगरीकी अखिल सुन्दरता पर ध्यान देनेसे स्वर्गपुरीका धोखा होता है।

महीदत्त सेठके पुरोहितजीमहाराज भी हार लिये हुए फिरते २ इसी नगरीमें आ पहुंचे। हार बेंचनेकी धुनमें हाट बाटकी धूल

उड़ाने लगे। चक्कर लगाते लगाते यह जौंहरीबाजारमें भी आ निकले और इनकी नजर एक जौंहरी पर जा पड़ी। वह अपनी दूकानपर नीले बानातकी मिर्जई लाल किनारेकी रेशमी धोती और माथेमें लहरदार चीरा बांधे हुए बड़े ठस्सेसे बैठा था। हाथोंमें कड़ा और गलेमें हीरेकी कंठी शोभा दिखा रही थी। जौंहरीकी अड़क भड़क तथा साज सामानको देखकर पुरोहितने विचार किया कि "आश्चर्य्य नहीं कि इसीसे अपना मनोर्थ सिद्ध हो। चलकर इसकी नाड़ी टटोलूं तो सही! कहीं माला लेनेपर राजी हो गया तो पौं-बारह! देखनेमें तो एक शौकीन जवान जान पड़ता है। इस प्रकार विचार करते हुए पुरोहितजी महाराज उस जौंहरीकी दूकान पर आ ही तो पहुंचे। इनको देखते ही जौहरीबच्चा उठ खड़ा हुआ और उसने प्रणाम करके इनको आदरपूर्वक अपनी दुकान-पर बिठाया। पुरोहितजी भी आशीर्वाद देकर बैठ गये। अब दोनों आदमीमें बातें होने लगी।—

जौहरी—"महाराज! आप कहांसे पधारे हैं?"

पुरोहित—"मैं उज्जैनीसे आता हूं। महाशय! आपका क्या नाम है?"

जौहरी—"मुझे तो लोग धनपाल कहते हैं—आप अपना मतलब कहिये।"

पुरोहित—(माला एक पट्टेकी गिरहसे खोलकर दिखाता है) मैं इस मालाको बेचना चाहता हूं। यदि आप इसे ले लेवें तो बड़ी बात है।"

जौहरी—"इसमें बड़ी बात छोटी बात क्या है, मैं इसे अभी ले लूंगा। आप इसका मोल तो कहिये।"

पुरोहित—"महाशय! अगर आप बारहकरोड़ मोहर दे देवें-तो मैं पाप काट दूं।"

माला देखकर उस छली जौहरी बच्चेकी लाल टपक पड़ी और उसके जीमें बेईमानी समाई। खोटे आदमीके परिणाम भी स्वभावतः खोटे हुआ करते हैं। लोभ बहुत ही बुरी बला है। इसके चपेटमें योगियोंका योग भी भ्रष्ट हो जाता है। इसीके फेरमें आकर चोरीकी लत पड़ जाती है तथा लोकपरलोक सभीसे हाथ धोना पड़ता है। जीते जी जेलखानेमें सड़िये और मरनेपर नरकमें पड़िये, चलिये धोबीका कुत्ता न घरका न घाटका!

धनपालने दगाबाजीसे पुरोहितकी माला ले लेना ही निश्चय कर लिया और भोलेभाले पुरोहितसे यों बातें बनाईं०—

"कृपानाथ! मैं इसे जरूर खरीदूंगा! आप थोड़ी देरतक मेरी दूकान देखते रहिये मैं अभी हवेलीमें माला दिखाकर लौट आता हूं तो दाम चुकता कर देता हूं" इतना कहकर माला लिये हुए धनपाल दूकानसे नीचे उतर पड़ा।

संसारमें सरल स्वभावी जनोंकी मिट्टी खराब है और ऐसे लोक प्रायः मूर्ख समझे जाते हैं। छली पाखंडी और धूर्तहीका सितारा चमकता दीख पड़ता है तथा ऐसे ही लोग बुद्धिमानोंकी श्रेणीमें गिने जाते हैं।

बिचारा पुरोहित नौ दो कुछ नहीं जानता था। वह एक सरल हृदयका आदमी था। प्रायः मनुष्यका हृदय दर्प्पणका काम करता है

अर्थात् जो आदमी जैसा होता है प्रायः दूसरोंको भी वैसा ही जानता है। जो चोर होता वह संसारमात्रको चोर ही जानता है और जो साधु होता सभीको साधु जानता है। ऐसी अवस्थामें धनपालकी चालवाजियोंको ताड़ना भोले भाले पुरोहित के लिये नितान्त दुर्लभ था अतः वह सहजही में धूर्त धनपालके झांसे पट्टीमें आगया और दूकानपर बैठनेमें राजी हो गया।

धनपालके तो भाग फूट पड़े। बिल्लीके भागों छींका टूटा। घर बैठे छप्पर फाड़कर लक्ष्मी पधारी। मारे खुशीके वह जामेके बाहर हो गया। आनन्दमें फूलकर अपनी सफलतापर अकड़ता हुआ अपनी हवेलीमें पहुंचा।

आंखके अन्धे लोभी धनपालको आगेकी कुच्छ[1] भी सुधि नहीं है! वह नहीं जानता है कि यह माला आस्तीनका सांप हो जायगा! एक दिन इसीके पीछे भारी आपत्ति झेलनी पड़ेगी और वुरी[2] गत हो जायगी। लोभी जन प्रायः अग्रसोची नहीं होते हैं। यदि ऐसा होता तो संसारमात्रसे जेलखाने एकदम उठा दिये जाते और ताजिरातहिंदको समुद्रमें फेंक देना पड़ता।

जैसी होनहार होती है तैसी बुद्धि भी उपजती है! चींटीको मरना होता है तो पंख उत्पन्न होते हैं, धनपालके अशुभ कर्म्मोंके उदयोंने उसकी आखोंपर पर्दा डाल दिया! अब उसके बुरे दिन आया ही चाहते हैं।

धनपालने उस मालेको[3] अपनी स्त्रीको दिखाकर कहा०—

१–२–३–आराप्रान्तके लेखक प्रायः 'कुछ' को 'कुच्छ' 'ब' को व और माला पाठशाला वगैरहको माले पाठशाले लिखा करते हैं–प्रकाशक।

"प्यारी! आजका दिन हमारे लिये बड़ा ही शुभ है! आज मैं बड़ा ही भाग्यशाली हूं कि छप्पर फाड़कर दौलत आयी है! एक मूर्ख ब्राह्मण इसे बेचनेको लाया है! इसे सन्दूकमें बन्द करो और एक ऐसी ही माला झूटे माणिककी है उसे निकाल लाओ! देखो तो पुरोहितरामकी आंखोंमें कैसा धूल डालकर उल्लू बनाता हूं! वही माला देकर उसे धत्ता बताऊंगा और चैनकी गुड्डी उड़ाऊंगा! फिर तो दसों उंगली घीमें है! (हँसता है) मूर्ख ब्राह्मण सच्चे झूठेकी खाक भी पहचान नहीं कर सकेगा।

धनपालकी स्त्री दुष्टस्वभावकी नहीं थी। शील और धर्म्म ही उसका जीवनस्तम्भ था। धर्म्मके विपरीत बातें सुनकर वह थर थर काँपने लगी और भयसे उसके रोंगटे खड़े होगये। वह समझ कर डरते २ बोली.—" प्राणनाथ! आप यह क्या अनर्थ करते हैं! इतना बड़ा घोर पाप करते हुए आप तनिक भी नहीं हिचकते हैं। परलोकमें इसका भारी प्रायश्चित्त होगा! ऐसी खोटी बातोंका तो आपको ध्यान भी नहीं करना चाहिये। पुण्यके उदयसे आपको सभी कुच्छ प्राप्त है। आपको क्या टोटा पड़ा है कि ऐसा अनर्थ करने पर उतारू हुए हैं। ऐसे पापसे लोक और परलोक दोनों नष्ट होते हैं। ऐसा नीच विचार तो एक भिकारी भी नहीं कर सकता है अतः आप ऐसे महापुरुषोंको यह शोभा नहीं देता है। जो कुच्छ भागने दिया है उसी पर आप सन्तोष करें। भला दूसरोंके धनसे कोई धनी होता है? इस पापसे दूर ही रहिये नहीं तो व्यर्थ कलंकका टीका माथेमें लगेगा। कहीं भंडाफोड़ हो गया तो बना बनाया खेल चौपट होजायगा और उलटे लेनेके देने पड़

आयेंगे। कहीं नगरनरेशके कानोंतक यह बात पहुंची तो भारी आपत्ति खड़ी होजायगी। अपनी गांठसे तो जाहीगी और व्याजमें राज्यदण्ड भोगना पड़ेगा! दूसरेका धन सर्पवत् जानना चाहिये क्योंकि उसके ग्रहण करनेसे अपनी ही जान पर आ बनेगी! प्राणधन! कृपा कर पुरोहितकी थाती (?) उसे सौंप दीजिये और अपने धनपर सन्तोष करिये।"

इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें सन्तोषसे बढ़कर दूसरा रत्न नहीं है किसीने ठीक कहा है०—

दोहा—गोधन गजधन वाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवे सन्तोषधन, सब घन धूल समान॥

अर्थात् सन्तोषीजनोंकेलिये सारी सांसारिक सम्पदा निर्मूल है नीति में लिखा है कि जो लोग सन्तोषरूप अमृत से तृप्त हैं उन्हें जो शान्ति सुख होता है वह धनके लोभीजनों को जो इधर उधर दौड़ा करते हैं कदापि नहीं होता है। किन्तु लोभ और सन्तोष में तो बप्पावैर है अर्थात् सन्तोषी को लोभ नहीं होता और लोभीको सन्तोष नहीं होता है।

स्त्रीके उपदेशने धनपाल पर कुच्छ भी काम नहीं किया उलटे उसे क्रोध चढ़ आया। उसके सिरपर तो काल नाच रहा है फिर उपदेश क्यों सुनने लगा! जब विनाशका समय आता है तब बुद्धि भी विपरीत होजाती है। धनपाल अपनी स्त्री की बातों पर आग बबूला होगया। क्रोधसे उसका चेहरा लाल होगया तथा बदन कापने लगा। बड़ी २ आंखें निकाल कर वह बोला०—

"अबला जाति की बुद्धि कितनी! मसल है कि नाक न

रहै तो मुँह से खे खायें ! आगे पीछेका विचार तो किया नहीं लगी अनापशनाप बकने ! मूर्खा आती हुई लक्ष्मीको लात मारती है ! ऐसा ही धर्म्म ध्यान है तो जंगल पहाडोंमें जाकर माला जप ! संसारमें झूठ दगा और फरेबहीसे काम चलता है ! लक्ष्मी आवे को होती है तो इसीप्रकार आती है तू मूर्खिनी है ! भला इसका मर्म क्या जाने ! ”

अबला का नाम ही है अ–बला । भला वह अपने भर्त्तारपर कहांतक दबाव डाल सकती है । निदान लाचार होकर और अपने पति का रुख देख कर बोली०—

“ प्राणपति ! जो उचित था मैंने कह दिया आगे करने नहीं करनेका आपको अधिकार है ! मैं तो आपकी दासी हूं, आपकी आज्ञा सर आंखों पर है ! आप जो कहें मैं वही करने को तैय्यार हूं किन्तु याद रखिये कि एक दिन मेरी बातों को याद कर करके पछताइ-येगा तथा अपने भागों को रोइयेगा । अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जिसकी थाती है उसे सौंप दीजिये इसीमें आपका कल्याण है !”

स्त्रीने लाख सिर पटका पर इसकी सुनता कौन है ! पापी धन-पालने इसकी ओर से अपने कान वहरे कर लिये । जब बुरा होनेको होता है तब कुमती घेर लेती है, हृदयकी आंखों पर पर्दे पड़ जाते हैं और हिताहितका कुच्छ भी ज्ञान नहीं रहता है । हाय २ ! इस हठी दुष्ट और छली धनपालने बड़ा ही अन्धेर किया अर्थात् विचारे गरीब ब्राह्मण को दिन दहाड़े लूट लिया ! हाय ! विचारे की गर्दन पर हत्यारे ने वेगुनाह छुरी फेर दी ।

धनपालने सच्चे माणिक की माला छिपा रक्खी और वह झूठी

माला लेकर अपनी दूकान पर पहुंचा। यहां आकर उसने ऐसा रंग बदला कि देखते ही बने! उसका क्रोध काहेको था कि एक नाटक का स्वांग था। मारे क्रोधके शरीर कांपने लगा आंखें लाल होगई और वह दांत पीसकर बोला.—"अरे ओ पाखंडी धूर्त ब्राह्मण! झूठी माला दिखाकर जगत को ठगता फिरता है! मुझे भी कोई गँवार जान लिया है! इतने दिनों तक क्या मैंने भाड़ झोंके हैं! अगर सच्चे झूठे की भी पहचान न करूंगा, तो क्या खाकर जौहरीपना करूंगा! ब्राह्मण जानकर तुझपर दया आती है नहीं तो मारते २ तेरा कचूमर निकाल देता! अब इसी में कल्याण है कि तू माला लेकर सीधे घर को चला जा। नहीं तो आफत मचा दूंगा और कचहरी तक पहुंचा दूंगा! भाग २!!!"

धनपालकी बातें सुनकर विचारे पुरोहितके तो देवता कूच कर गये! उसे काठया लग गई चीरो तो बदन में लहू नहीं! एकायक वज्रका पहाड़ टूट पड़ा! कहांकी सगाई और कहांका व्याह! अब तो विचारे की मौतही आगयी। "रोये बने न गाये—रहगये वह मुंह वाये"। लाचार माला लेकर रोता पीटता हुआ दूकानके नीचे उतरा। पराया देश पराये लोग न कोई संबी और न कोई साथी फिर इसकी फरियाद कौन सुनता है। अमीर धनपालको चोर कौन बताये! चलो आई गई पुरोहितके मत्थे! जो है इसीको छली और चोर बताता है, विचारा चौराहे पर खड़ा हुआ अपने भाग्योंको रो रहा परन्तु कोई कुशल क्षेम भी नहीं पूछता है। नक्कार खाने में तूतीकी आवाज कौन सुनता है! विचित्र नगर है जहां दाद न फरियाद अन्धा मार बैठेगा की कहावत हो रही है।

संसारमें धनीको कोई भी चोर नहीं कहता है। लाखों ऐब होने पर भी धनीका आसन ऊचा ही रहता है। यदि धनी अधिक भोजन करे तो लोग उसकी बड़ाई करते हैं और कहते हैं कि "बाबू साहेबकी अच्छी खोराक है" और यदि कोई निर्धन अधिक भोजन करे तो लोग उसकी निन्दा करते हैं और कहते हैं कि "वह बड़ा पेटार्थू तथा मकोसू एवं अकालका मारा हुआ है!" संसारकी सभी बातें विचित्र तथा कौतुकमय होती हैं! धनीका बोलवाला—जर ऐब को छिपावे जो कुच्छ कहो सो जर है! निर्धनकी मिट्टी खराव है! संसार में न्यायका अभाव है जिसे देखो वही कपोलकल्पना से अपनी डेढ़ चाँवलकी खिचड़ी अलग पका रहा है!

पुरोहितकी दोहाई किसीने नहीं सुनी। लाचार होकर वह अपने डेरे पर लौट आया। उसने अन्नजल त्याग दिया और निराहार रहकर प्राणहत्या करना ही उचित जाना। विचारा लौट कर महीदत्तके पास भी नहीं जा सकता था क्योंकि वह भी इसी गरीबको चोर ठहराते।

चौथा परिच्छेद।

रातकी चोली मसक गयी है अतः लज्जासे वह अपने घर में छिपा चाहती है। आसमान में जो थोड़ा २ अन्धेरा है वह भी चोर की तरह भागा जाता है। रात भर के घूमनेवाले चोर छली और कामीजन चादरमें मुंह छिपाये नौ दो ग्यारह होते जाते हैं। पूर्व दिशामें थोड़ी २ सफेदी फूट रही है। कुमोदनी अपने प्राणपति चन्द्रमा के विरह में मुह छिपाकर आठ २ आंसू रो रही है। चोररूपी चन्द्रमा महा तेजस्वी तथा न्यायशाली सूर्य्य सम्राट के

सम्मुख आगया अतः उसका चेहरा मलीन पड़ गया है । प्रेमके सताये हुए भ्रमर सूर्य्य दर्बार में पहुंच कर दोहाई देने के लिये तड़प रहे हैं । पूर्व की सफेदी देख कर यही ज्ञात होता है कि न्यायवन्त तथा जगदुपकारी सूर्य्य महाराज के दर्बार में सफेद बिछावन बिछाई गई है । सुनिये ! पक्षिगण भी नकीब की भांति सूर्य्य महाराज के आगमन की सूचना देने लगे ! धीरे २ सारे आकाशदर्बार में सफेद चान्दनी बिछ गई । वह देखिये पूर्व की ओर लाल झंडे फहराने लगे अब सूर्य्य महाराज की सवारी आई ही चाहती है । यह छटा देख कर रातभर खटियाकी पटिया तोड़नेवाले जन भी कुलबुलाकर उठ बैठे और हाथ मुंह धोकर अपने कामधन्धे की चेष्टा करने लगे । लीजिये सूर्य्य महाराजकी सवारी भी आही गयी !

इसी समय वैजयन्ती नरेश श्रीमान् महाराज पद्मसेनजी की राजसभामें दर्बारकी तैय्यारी होने लगी । फर्राशोंने फर्श फरूश करीनेसे झाड़ पोंछ कर ठीक कर दिया । यथोचित आसन लगा दिये गये और महाराज के बैठने के लिये एक जड़ाऊ सिंहासन भी रक्खा गया । चोवदार पहरेदार तथा नकीब आदि अपने २ स्थान पर विनय से खड़े होगये । धीरे २ सभा मण्डप भी हाली मोहाली दर्बारी और सर्दारियों से भर गया । नकीवने आवाज दी "महाराजाधिराज ! श्रीमान् सर्व गुणआगर न्यायविशारद प्रजा-वत्सल पद्मसेनजी महाराज की जय !"

महाराज पद्मसेनजी एक जड़ाऊ तानजाम पर सवार हैं । वदन में केसरिया जामा चीरापटुका और सिरपर बहुमूल्य चीरा बन्धा

हुआ है जिसपर मोती की छब्बेदार जड़ाऊ सिरपेंच लगी हुई है। बाहु पर भुजबन्ध हाथ में जड़ाऊ कड़े तथा गले में गजमुक्ता की माला पड़ी हुई है। महाराज के दोनों ओर चमर झल रहे हैं और सिरपर सोनेकी बहुमूल्य छतरी लगी हुई है। सभामण्डपके सिंहद्वार पर महाराज की सवारी छुटी गयी। महाराजने सभा में प्रवेश किया। दर्बारी तथा सर्दारियोंने उठकर यथोचित आदर और विनय किया। महाराज सिंहासनपर सुशोभित हुए। एक ओर मंत्री अपने आसनपर बैठ गये।

इसी समय चोपदारने विनयपूर्वक निवेदन किया०—"महाराजाधिराज! द्वारपर एक उज्जैनी नगरका ब्राह्मण डाढ़ मारकर रो रहा है और श्रीमान् की दोहाई दे रहा है यदि आज्ञा हो तो बुलाऊं!"

महाराज०—"हे द्वारपाल! उसे शीघ्र दर्बारमें बुला ला पहले उसका न्याय करलूंगा फिर दूसरे कामों को पीछे देखूंगा। एक तो विदेशी दूसरे ब्राह्मण तीसरे दुःखित है अतः पहले उसीका न्याय करदेना उचित है।"

न्यायशील तथा प्रजावत्सल राजाओंका यही धर्म्म है। उन्हें उचित अनुचितका ध्यान पहले होता है। महाराज पद्मसेनजी एक योग्य राजा थे अतः उन्होंने सब काम छोड़कर पहले ब्राह्मणहीका मुकद्दमा देखना उचित जाना। राजनीतिके जाननेवाला राजा अपने प्रशंसनीय कार्य्योंके कारण प्रजाके प्रेमभाजन बनते हैं, यही अवस्था महाराज पद्मसेनजीकी भी थी। इनकी प्रजा सदा सुखी रहती थी और इनको अन्तःकरणसे आशीर्वाद दिया करती थी।

थोड़ी ही देरमें चोपदार उस विपत्ति के मारे हुए ब्राह्मणको ले कर दर्बारमें हाजिर हुआ।

विचारा ब्राह्मण दोहाई तिहाई देता हुआ महाराज के चरणोंके आगे गिरगया और रो रो कर कहने लगा०—"महाराज! मैं इस नगरीमें दिन दहाड़े लुट गया! हाय मैं कहीं का न रहा.

महाराज०—"पंडितजी महाराज! आप ऐसा अधीर न हों और उठकर अपना हाल सविस्तर कहिये।"

ब्राह्मण०—"महाराजाधिराज! आपकी जय हो! मैं क्या कहूं! कहते हुए कलेजा मुहको आ रहा है! आपकी नगरीमें एक धन-पाल नामक जौहरी है! हाय २! उसने वे गुनाह मेरी गर्दनपर छुरी फेरी! दिन दोपहर आखों में धूल डालकर मेरा वस्त्रामोचन कर लिया! मैं उज्जैनी नगरका रहनेवाला ब्राह्मण हूं। मैं एक माणिककी माला बेचनेको चला था! मेरे दुर्भागने मुझे यहां ला पटका! हाय २! यदि मैं ऐसा जानता तो इस नगरको दूरही से नमस्कार करता! शामत आई की मैं उस धूर्तकी दूकान पर गया। वह धूर्त्त माला लेनेको तैयार हो गया और उसने उसकी मोल की! मुझे दूकान पर बैठाकर वह माला लेकर अपनी हवेलीमें गया! वहांसे लौटकर वह ऐसा स्वागत! किया! के मैं तो भौचक हो गया! यही झूटी माला मेरे हवाले किया और वहुत कुच्छ बुरा भला कहकर अपनी दूकानसे मुझे धुधकार दिया! आप न्यायशील नरेश हैं मेरा उचित न्याय करिये नहीं तो अभी आ-पके फांसी लगकार आतमहत्या करूंगा?

ब्राह्मणकी व्यथा सुनकर महाराज पद्मसेनजीका हृदय कांप गया

तुरत उन्होंने नगरीमें मुनादी करादी नगरभरके जौहरी सभामें उपस्थित हो गये! महाराजकी आज्ञासे धनपाल भी पकड़ बुलाया गया।

महाराजने करुणापूर्वक अपने मंत्रीसे कहा०—"विप्रकी कथा सुनकर हमारे हवास पैतरा कर गये! इस नगरीमें ऐसे अनर्थका होना मुझे स्वप्नमें भी संभव नहीं होता था! ऐ मंत्री! इस विप्रका शीघ्र न्याय करो नहीं तो आज हमारी जन्मभर की कमाई लुटती है! अपयश तो लगेहीगा अंतमें ब्राह्मणकी जान भी जायेगी!"

महाराजकी बातें सुनकर मंत्री थोड़ी देरतक विचार सागरमें गोते खाने लगा! उसे कहींसे भी इस अद्भुत मामलेके न्यायका सूत्रपात नहीं मिला निदान उसने महाराजसे निवेदन किया०—

महाराज! जब आपकी बुद्धि इस मामलेमें काम नहीं करती तो मैं किस खेतकी मूली हूं! इस मामलेका न्याय करना बहुतही कठिन है! ऐसा पेचीला मामला न आंखों देखा और न कानों सुना इसका साखी देनेवाला भी कोई नहीं है केवल बुद्धिसे काम लेना जरा टेढ़ी खीर है! यदि धनपालको चोर कहूं तो नगरी भरके जौहरी बुरा भला कहेंगे और यदि इस विप्रको झूठा ठहराता हूं तो यह आत्महत्या करनेपर उतारू है! मेरी बुद्धि भी इस पेचीले मामलेमें घास चरने चली गयी!"

मंत्रीकी बातें सुनकर महाराज पद्मसेनजी बहुत ही उदास हो गये। व्याकुलतासे उनके कलेजेमें पंखियां लग गईं। सारा बदन पसीनेमें डूब गया बड़ी देरतक मस्तक नीचा करके विचार सागरमें डुबकी लगा रहे! कोई बुद्धि काम नहीं करती थी कि इस पेचीले मामले का निवटेरा किस प्रकार किया जाये।

बहुत कुच्छ शोच विचार कर महाराजने मंत्री से पूछा०—"भला वह तो बताओ कि इस नगरमें कोई भी ऐसा चतुर तथा प्रवीन है जो विप्रका न्याय दूधपानीवत करदे!"

मंत्रीने हाथ बान्धकर निवेदन किया०—"इस समय आपकी सभामें प्रायः सभी गुणी तथा बुद्धिमान् जन उपस्थित हैं इसी नगरमें एक महिपाल नामक सेठ हैं जिनके पास छयानवे करोड़ मोहर नगद मौजूद है! वह भी आपकी सभामें बैठे हैं! इनके पुत्र श्रीयुत सुखानन्दकुमार जो बड़े चतुर तथा ज्ञानी हैं केवल वही इस समय सभामें नहीं पधारे हैं।"

इतनी बातें सुनते ही महाराजने तुरत आज्ञा दी कि "सुखानन्द कुमारको शीघ्र सभामें हाजिर करो।"

महाराज पद्मसेनजीकी आज्ञा सुनकर सेठ महिपाल जो सभामें बैठे थे उठ खड़े हुए और उन्होंने कर जोड़कर महाराजसे सविनय निवेदन किया—

"महाराज! हमारी चूक क्षमा करिये तो मैं कुच्छ निवेदन करूं."

महाराज०—"सेठजी! जो कुच्छ कहना है प्रसन्नतापूर्वक कहिये"

महिपाल०—"महाराज! एक प्रतिष्ठित पुरुषको सिपाहियों द्वारा बुलाना आप ऐसे न्यायशाली तथा प्रजावत्सल नरेशको शोभा नहीं देता है! कृपाकर उन्हें आदरपूर्वक बुलायें क्यों कि जब आप ही गुणग्राहकता का परिचय नहीं देंगे तो दूसरे लोगोंसे क्या आशा करूं!

महिपालसेठकी बातें सुनकर महाराज लज्जासे संकुचित होगए और निरुत्तर हो कर उन्होंने मस्तक नीचाकर लिया तत्पश्चात् उन्होंने सुखानन्दके लेनेको पालकी भिजवाई ! राजकिंकर पालकीके साथ २ सुखानन्द कुमारकी बैठकपर पहुंचे !

जिस बैठकमें सुखानन्दजी बैठे थे वह बड़ा लम्बा चौड़ा तथा भड़कीला था कमरेके चारों ओर पीलपायेके खम्भेदार चौड़े ओसारे बने हुए थे ! कमरेमें चारोओर तीन २ दर्वाजे बने थे ! अगर इसे बारहदरी भी कहिये तो अनुचित नहीं है ! हर दर्वाजोंमें लाल मखमली पर्दे पड़े हुए थे जिनके बीचमें मोतीके गुच्छे लटक रहे थे और पर्दे कलाबतूनकी दोरियोंसे बन्धे हुए थे ! बाहरी खम्भे बेल बूटे और मीनेकारीसे पोते हुए अनुपम शोभा दिखा रहे थे ! कमरे के भीतर सफेद चान्दनी बिछी हुई थी जिसके एक सिरे पर कारचोबी के कामका लाल मखमली गद्दा बिछा हुआ था ! जिसपर दो कारसानी मखमलके कामदार मसनद धरे हुए थे ! यहीं पर एक मसनद के सहारे श्रीयुत सुखानन्दकुमारजी बैठे हुए थे ! इनकी सुन्दरता तथा ठाट बाट पर ध्यान देने से यह कमरा राजाके दर्बारकी शोभा प्रगटकर रहा था ! आसपास पचासों सभ्य पुरुष करीने से बैठे थे !

राजकिंकर पालकी लिये हुए पहुंचा और पालकी द्वार पर धरकर स्वयम् कमरे में गया और उसने विनयपूर्वक कुमार से निवेदन किया०—" महाराज पद्मसेनजी ने श्रीमान् को स्मरण किया है और जोहार कहा है ।"

सुखानन्द कु०—"कहो कुशल तो है ? आज क्या है कि महाराजासाहेब ने दास को याद किया है ?

राजकिंकर०—" आज के दिन दर्बारमें एक बड़ा ही पेचीला मामला पेश है ! किसी की बुद्धि काम नहीं करती है ! महाराज मंत्री तथा सभासद गण सभी विस्मित हो रहे हैं । उसी मामले के लिये आप को भी बुलाया है । "

सुखानन्द कु०—(आश्चर्यसे) वह कैसा मामला है जिसमें सभी चतुर गण चकित हो रहे हैं !

इसके पीछे राजकिंकर पुरोहितके मालेकी सारी कहानी और धनपालकी धूर्तताका हाल कहकर बोला०—" भला बताइये इसका न्याय कैसे हो ! न गवाही न साखी ! धनपालको चोर कहा जाय तो जौहरी गण प्रलाप करें और ब्राह्मणको झूठा कहा जाय तो वह सन्ताप करे ! हां कोई सामुद्रिक पढ़े वा भूतपिशाचका इष्ट करे तो मामलेका न्याय करे ! "

किंकर की बातें सुनकर थोडी देर सुखानन्दजी चुप बैठे रहे और तरह २ की बातें शोचते रहे निदान एक मनसूबा गांठकर उठे और राजकिंकर से बोले०—" तुम थोड़ी देर यहीं बैठो ! मैं अभी आता हूं तो दर्बारमें चलता हूं । "

किंकर कमरे में एक ओर बैठ गया और सुखानन्दजी तुरत अपनी हवेली में पहुंचे और उन्हों ने एक दासीसे कहा०—" तू धनपाल की स्त्री के पास जाकर कह कि मुझे धनपालसेठने भेजा है और ब्राह्मणकी सच्ची माणिक की माला जो तूने धरी है उसको फौरन मांगा है । "

इतनी बातें सुनकर दासी तुरत दौड़ी हुई धनपालकी हवेली में पहुंची और जिसप्रकार सुखानन्दजी ने सिखाया था उसीप्रकार उसने धनपाल की स्त्री से कहा। दासी की बातें सुनकर धनपाल की स्त्री ने अपना माथा पीटकर जीमें कहा "हाय! आखिर अपनी करनी आगे आई। हमारी बात पहले मान लेते तो यह दिन काहे को देखने में आता! अब जरूर कोई गुल खिला चाहता है। दासी की बातोंसे भारी खटका मालूम पड़ता है" आदि सोचने लगी फिर उसने दाईसे प्रगट कहा "ऐ दासी! इसमें सन्देह नहीं कि विप्रकी माला घरमें धरी है किन्तु सेठके आये विना मैं उसे किसी प्रकार दे नहीं सकती हूं, क्योंकि वह एक भारी जलेतन आदमी हैं! यदि कोई ऊँच नीच पड़ा तो मेरे चोण्डेका एक बाल भी नहीं बचेंगे।"

सेठानी की बातें सुनकर दासी सुखानन्दजी के पास लौट आई और उसने सेठानी की बातें कह सुनाई जिस से विप्र की माला का ठीक पता लग गया। इसप्रकार अपनी बुद्धि तथा चतुराई से माला का पता पाकर सुखानन्दजी पालकी में सवार हुए और बात की बात में महाराज पद्मसेनजीके दर्बार मे पहुंच गये। सभाके सभीलोग इन्हें देखकर आनन्दित हो गये। महाराज ने भी इनकी यथोचित अभ्यर्थना की और आदरपूर्वक सभामें आसन दिया।

संसाररूपी कमलसरोवर की वास पुन्य ही है। जिसप्रकार फूलें की सुवास पवन में प्रस्तरित होकर पूर्ण ब्रह्माण्ड में (?) फैल जाती है उसीप्रकार पुन्यात्मा जीवों की कीर्ति तथा आदर भी त्रैलोकमें प्रस्तरित होते हैं। धर्मात्माजनों का जीवनधन धर्म ही होता है

अतः धर्मद्वारा संचित पुण्य अपना अलौकिक प्रभाव प्रदर्शित करता है । धर्मात्मा जन जहां जाते हैं उन्हे वहीं आदर मिलता है। संसारमात्र के साधन पुन्य ही से सधते हैं । धन सम्पदा विद्या बल बुद्धि तथा अधिकारादि सभी पुन्यही के वशीभूत हैं । हमारे सुखानन्द कुमार ने पूर्वजन्म में असीम पुन्य सञ्चय किये थे उसीका प्रत्यक्ष फल आज उन्हें मिल रहा है। इस से बढ़कर और क्या सितारा चमकेगा कि महाराज पद्मसेनजी भी इन का आदर सत्कार कर रहे हैं। सुखानन्दजी का आदरसत्कार देखकर महिपालसेठ भी मनही मनमें प्रसन्न हो रहे हैं । सपूत को देखकर सभी पितामाता प्रसन्न हुआ करते हैं और कपूत की मिट्टी घर बाहर तमाम ही खराब है। एक सुपुत्र सौ कुपुत्रोंसे कहीं अच्छा है क्योंकि जिसतरह एक भी अच्छे वृक्ष से जिस में सुन्दर गंधयुक्त फल होते हैं सारा वन सुवासित हो जाता है उसी तरह एक सुपुत्र से कुलमात्र की श्री बढ़ जाती है ।

महाराज पद्मसेनजी ने सुखानन्द कुमार से कहा।—

"सेठसाहेब! आप को मैंने इस लिये कष्ट दिया है कि आप इस विप्र के मामले का यथोचित न्याय कर दें । धनपाल सेठ ने इस विप्र की सच्ची माला छलसे बदलली है । विप्र का कोई भी गवाही साखी देनेवाला नहीं है । यदि धनपाल को चोर ठहराऊं तो नगर के जौहरी असन्तुष्ट होंगे और यदि विप्रको झूठा कहूं तो यह अपना प्राण देनेपर उतारू है! अजब बेढब मामला है! कोई बुद्धि काम नहीं करती है! आप इस नगरमें चतुर और ज्ञानी हैं— मैं जानता हूं कि इस मामले का निबटेरा आप ही कर सकेंगे।

यदि आप इसका समुचित न्याय कर दें तो मेरे मुंहकी लाली रह जाय नहीं तो यहांसे उज्जैनी नगर तक मेरी बदनामी हो जायगी और संसार मुझे अन्धन्यायी ठहरायेगा! बस मेरी लज्जा आप ही के हाथ है।"

महाराज की बातें सुनकर सुखानन्दजी ने नम्रता से मस्तक नीचा कर लिया और वह थोड़ी देर तक शोचते रहे तथा फिर उस ब्राह्मण से बोले०—"महाराज! वह झूठी माला जरा मै भी देखूं!"

विपत्ति के मारे ब्राह्मण का हृदय हाथों उछल रहा था। दर्बार का रंग देखकर उस का मन मुर्झा गया था और माला पाने से एक प्रकार निराश ही हो गया था किन्तु सुखानन्दजी को देखकर उस के हृदय की आशालता फिर लहलहा गयी। मानो सूखे धानों में पानी पड़ा अथवा डूबते को तिनके का सहारा मिला! उस ने जल्दी से झूठी माला अपने एक पट्टीकी गिरह से निकाली और सुखानन्दजी के हाथ में दे दी।

सुखानन्द कुमार ने माला लेकर उलट पुलट कर देखी और फिर महाराज से कहा०—"राजन्! थोड़ी देर के लिये मैं पुनः अपने घर जाता हूं और लौटकर विप्र का न्याय कर देता हूं! आशा है कि जबतक मैं लौट कर नहीं आऊंगा तबतक सभा विसर्जन नहीं होगी और सभासदों में से कोई भी उठने नहीं पायेगा!"

इतना कहकर सुखानन्दजी महाराज की आज्ञा लेकर पुनः पालकी में बैठे और दौड़ा दौड़ी अपनी हवेली में पहुंचे। जिस दा-

बाबू देवकुमारजी रईसका दानपत्र।

चलं वित्तं चलं चित्तं चलेजीवितयौवने ।
चलाचलमिदं सर्वं कीर्तिर्यस्य सजीवति ॥

स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी जो दानपत्र लिखकर रख गये थे, वह प्रकाशित हो गया है। उन्होंने जो दान किया है, उससे उनकी कीर्ति चिरकाल तक अमर रहेगी, इसमें सन्देह नहीं है।

५०००) रु. वार्षिक दान।

१	जैनमन्दिर—आरा	५००) रु.
२	,, भदैनी घाट बनारस	३००) रु.
३	,, चन्द्रपुरी	२००) रु.
४	,, गठवा (प्रयाग)	२००) रु.
५	सरस्वतीभवन	१५००) रु.
६	छात्रवृत्तियां—धर्मशिक्षा	५००) रु.
७	औषधालय—सम्मेदशिखर	८००) रु.
८	तीर्थक्षेत्रोंकी रक्षा	२००) रु.
९	जैनधर्मके प्रचार करनेवालोंकी असहाय विधवाओंमें	१००) रु.
१०	जैनपाठशाला और कन्यापाठशाला—आरा	५००) रु.
११	श्रवणबेलगुल पाठशाला—	शेष

१००००) रु. इकमुश्त दान।

१	सरस्वतीभवन	२०००) रु.
२	जैनमन्दिर—मंदारगिरि	५००) रु.
३	गोमटेश कलशाभिषेक	१७५) रु.
४	गठवाके मंदिरकी प्रतिष्ठार्थ	५०००) रु.
५	सम्मेदशिखरजीकी रक्षार्थ	१५००) रु.
६	जैनअनाथालय-हिस्सारको २६बीघा जमीन और	७५०) रु.
७	अंधे लंगडोंको	शेष

Reg. No. B. 719.

पंडित सदासुखजीकृत

रत्नकरंडश्रावकाचारकी बडी वचनिका।

यह महान् ग्रन्थ दूसरी बार बम्बईके जगत्प्रसिद्ध निर्णयसागर छापखानेमें चिकने और पुष्ट कागजपर हाल ही छपकर तयार हुआ है। दो तीन मूल प्रतियोंपरसे इसका संशोधन किया गया है। पं० सदासुखजीने जिस भाषामें लिखा था, वैसा का वैसा है एक अक्षर मात्रामें भी फेरफार नहीं करके छपाया है।

यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि, यह ग्रन्थ कैसा उपदेशजनक और धर्मके सम्मुख करनेवाला है। क्योंकि सारे देशमें इसका प्रचार है। सब ही लोग इससे परिचित हैं। प्रत्येक बातको अत्यन्त सरल भाषामें इस तरहसे लिखा है, और उसकी पुनरावृत्ति इतनी अधिक की है कि, बांचनेवाले और सुननेवालोंपर उसका असर हुए विना नहीं रहता। वैराग्यका तो यह भंडार ही है। बालक वृद्ध लडकियां स्त्रियां सबही इसको पढ सकती हैं। प्रत्येक मन्दिरमें तथा प्रत्येक लिखे पढे कुटुम्बमें इसकी एक २ प्रति रहनी चाहिये। न्योछावर गत्तेवेष्टन सहित ५) रक्खी है परंतु ग्राहकोंके सुभीतेके लिये भादों सुदी १५ तक हम इसे केवल ४) में भेज देवेंगे। डांकखर्च ||) अलग। मन्दिरोंमें भेट करनेके लिये तथा शास्त्रदान करनेके लिये जो इकट्ठी १०-२० प्रतियां लेगें, उन्हें और भी किफायतसे देनेका विचार है। भादोंके पश्चात् यह ग्रन्थ ५) से कममें किसीको नहीं दिया जावेगा।

मिलनेका पता-मैनेजर जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय

पोष्ट—गिरगांव (बंबई)

ॐ

जैनहितैषी.

अथवा

(जैनसमालोचक)

मासिक पत्र।

पन्नालाल बाकलीवालद्वारा संपादित व प्रकाशित।

चतुर्थ भाग	आश्विन वीर नि० संवत् २४३४।	अंक ४८

नियमावली

१ इस पत्रका वार्षिक मूल्य डांकखर्चसहित अग्रिम १॥) और पीछेसे २) रु० है। इस महीनेतक जिनका मूल्य आजावेगा वह अग्रिम समझा जायगा। फुटकर अंकका मूल्य ।) आने।

२ यह पत्र बिना मगाये भी अनेक महाशयोंके पास भेजा जाता है। प्रथम अंक पहुंचनेपर यदि कोई महाशय कार्डद्वारा सूचना देंगे अथवा दूसरा अंक लौटा देंगे तो उनका नाम काट दिया जायगा। जो महाशय न तो नाम कटानेके लिये कार्ड भेजेंगे और न दूसरा अंक लौटावेंगे वे महाशय पक्के ग्राहक समझे जायंगे और उनको तीसरा अंक **वी. पी.** द्वारा भेजा जायगा।

३। जो भाई साफ २ हिंदीके सिवाय उर्दू, अंगरेजी व मूडी वगैरहमें चिट्ठी भेजेंगे उनकी तामील नहि होगी वे रद्दीमें फेंक दी जायगी।

पत्र भेजनेका पता—**पन्नालाल जैन,**

जीतेकरकी चाल पो. **कालबादेवी** (मुंबई.)

कर्नाटक छापखाना, मुंबई.

आत्मख्यातिसमयसार ।

भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य कृत समयसारकी पं० जयचन्द्रजी कृत भाषावचनिका अध्यात्मका प्रसिद्ध और उत्कृष्ट ग्रन्थ है। न्योछावर चार रुपये मात्र ।

प्राचीन उपन्यासग्रन्थ

धर्मपरीक्षा ।

यह एक बडा ही विचित्र ग्रन्थ है। इसमें बडी ही मधुर हृदयग्राही भाषामें एक विलक्षण कथाके द्वारा सम्पूर्ण धर्मोकी परीक्षा करके जैनधर्मकी उपादेयता सिद्ध की गई है। पुराणोंकी पोलोंपर सभ्यताके साथ बडे ही बढियां कटाक्ष किये हैं। एक वार पढना प्रारंभ करके फिर छोडनेको जी नहीं चाहता है। यों तो यह नवोंरसका भंडार है, परन्तु हास्य और शृंगारकी प्रधानता है। अर्थान्तरन्यासकी इतनी ज्यादती शायद ही किसी दूसरे ग्रन्थमें होगी। अबकी बार मूल ग्रन्थ छोडकर ग्राहकोंके सुभीतेके लिये केवल हिन्दी अनुवाद छपाया है। पं० मनोहरलाल आदि एक दो पंडितोंकी बनाई धर्मपरीक्षा जहां तहांके भंडारोंमें मिलती हैं, परन्तु मूल ग्रन्थका यथार्थ आनन्द जैसा इस अनुवादमें आता है, वैसा किसीमें भी नहीं आता है। न्योछावर १) है।

पार्श्वपुराण ।

कविवर भूधरदासजीका बनाया हुआ यह ग्रन्थ सर्वत्र प्रसिद्ध है। चौपाई, दोहा, सोरठा आदि नाना छन्दोंमें इस ग्रन्थकी रचना हुई है। कविता बडी ही सुहावनी है। इस ग्रन्थमें कथाभाग तो थोडा है परन्तु जैनधर्मके तत्त्वोंका बडे विस्तारमें वर्णन है। शास्त्र सभाओंमें बांचनेके लिये बडे ही कामका है। इसी लिये हमने खुले हुए पत्रोंमें छपाया है। प्रत्येक मंदिरमें इसकी एक २ प्रति मंगाके रखना चाहिये। न्योछावर १॥) रुपया.

ॐ

जैनहितैषी.

विद्या धन मैत्री विना, दुखित जैन सर्वत्र ।
तिन हित नित ही चहत यह, जैनहितैषी पत्र ॥ १ ॥

चतुर्थ भाग | आश्विन श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३५ । | अंक ४८-वां

नवीन उपहारलेनेवालोंको शीघ्रता करनीचाहिये ।

आगामी वर्षका नवीन उपहार तैयार हो चुका है। हमारा विचार है कि, नये वर्षके पहले अंकके साथ वह सब ग्राहकोंके पास भेज दिया जावे–इस साल सालके अखीरतक ग्राहकोंने हमें उपहारके लिये तंग किया था और लाचार होकर हमें उन्हें अभीतक पिछला उपहार भेजना पडा परंतु ऐसा करनेसे हमको नुकसान बहुत उठाना पडा और कामकी बडी असुविधा रही, इसलिये अब आगें ऐसा विचार किया है कि, अधिकसे अधिक दूसरे तीसरें अंकतक नया उपहार भेजेंगे, इसके पीछे जो लोग ग्राहक होंगे, उन्हे पछताना पडैगा। उपहारका ग्रंथ अबकी बार बहुत थोडा छपाया है, सिर्फ ५०० ग्राहकोंको ५०० प्रति देना है।५०० ग्राहक हो जानेपर फिर पछिके बननेवाले ग्राहकोंको निराश होना पडैगा । सो इस अंकके साथ जो कार्ड रवाना किया जाता है, उपहार चाहनेवालोंको उसे भरकर दिवालीके पहिले २ हमारे पास भेज देना चाहिये ।

अबका उपहार **श्री प्रवचनसार परमागम** नामका ग्रंथ है । अध्यात्मका ऐसा अच्छा ग्रंथ आजतक कहीं भी नहीं छपा है। जिस ग्रंथके मूलकर्त्ता भगवान्

कुंदकुन्दाचार्य हैं. टीकाकार श्रीअमृतचंद्रसूरि हैं. और भाषाकविताकार कविवर वृन्दावनजी हैं. उसकी प्रशंसा कौन कर सकता है. इतना ही कहना बस है कि यह एक अद्वितीय ग्रंथ है।

दूसरा उपहार।

प्रवचनसारके सिवाय एक और भी उत्तम ग्रन्थ अनुमान ७–८ फार्मका उपहारमें देनेका विचार हो रहा है। वह उसी प्रकारसे निकाला जावेगा, जैसें गतवर्ष मनोरमउपन्यास निकाला था। परन्तु यह ग्रन्थ तीसरे चौथे अंकसे किपके ग्राहक बन चुकनेपर छपाया जावेगा। ग्रन्थका नाम पीछें प्रकाशित किया जावेगा।

उपहार और डांकखर्च सहित जैनहितैषीका मूल्य आगेंकी साल १।।) नियत किया गया है। प्रथम उपहार कमसे कम सवा रुपयेका और दूसरा आठ आनेका होगा। इस हिसाबसे जैनहितैषीके ग्राहक बननेमें—

आमके आम और गुठलीके दाम।

होते हैं। देखिये हम जैनहितैषी वर्षभर मुफ्तमें देगें, बारह अंकोंके तीन आना तथा उपहारी ग्रंन्थोंका तीन आना इस प्रकार छह आना डांकखर्च गांठसे देंगे, और १।।।) रुपयेके दो ग्रन्थ भेजेंगे। इतनेपर भी आप ग्राहक न होवें तो लाचारी है।

सम्पादकीयविचार।

गुड़खाते हैं, परन्तु गुलगुलोंका परहेज है

कई वर्ष हुए महासभाके एक मुख्य अधिकारीने हमको छापेके विषयमें उत्तेजना देते हुए और लोगोंकी मूर्खता बतलाते हुए लिखाथा कि, "गुड़ खाते हैं परन्तु गुलगुलोंका परहेज करते हैं" इस समय यह वाक्य हमको बहुत याद आता है। हम देखते हैं कि, जितने छापेके विरोधी बन रहे हैं, वे सब किसी न किसीरूपमें ग्रन्थ छपाते हैं। जैनपताका इसकी मुख्यनेत्री बनरही है, परन्तु देखते हैं कि, उसमेंभी बराबर प्राचीन आचार्योंके प्रमाणरूप श्लोक छपते हैं। और नहीं तो प्रत्येक अंकमें ओंकार तो छपता ही है भाई श्रीलाल भी इससे नहीं बचा है। उसके

धर्मविषयक लेखमें श्रीसमन्तभद्रस्वामीके अनेक श्लोक छपे हैं। विनयके तारतम्यमें भी अंतरंग तथा बाह्यतपका निरूपण शास्त्रसे ही उद्धृत किया है। पुरुषके पुरुषत्वमें एक और लेखक छहढालाके पद्य उद्धृत करते हैं। इतने पर भी यह सब मंडली छापेका विरोध कर रही है। देखिये, इस विरोधका अस्तित्व कबतक रहता है।

हाथ सुमरनी पेट कतरनी।

एक मंडली इस प्रकारकी भी है, जो मनमें तो छापेका अनुमोदन करती है, परन्तु सेठ लोगोंके भयसे ऊपरसे निन्दा किया करती है। वे स्वयं घर में जैनग्रंथ पढते हैं उनकी स्त्रियां पढतीं हैं उनके बेटे पढते हैं, परन्तु सभामें बैठकर छापेका प्रतिबंध करनेको तैयार रहते हैं। थोडे दिन पहले बम्बईके पंचायती मंदिरमेंसे छपे ग्रन्थोंके रखनेके कारण प्रांतिकसभा और जैनमित्रका दफ्तर फेंकनेमें जो अगुए बने थे, वे ही महाशय अभी कुछ दिन पहले स्वयं हमारे कार्यालयमें आकर १५-२० रुपयोंके जैनग्रन्थ ले गये हैं। हम यह लीला देखकर चकित हो रहे। जहां देखिये, वहीं यह दशा हो रही है सबसे कडा प्रबंध इंदौर तथा देहलीके भाइयोंने किया था कि कोई भाई छपा ग्रंथ न पढै। परंतु आजकल इन दोनों ही शहरोंके भाई धड़ाधड़ छपे ग्रंथ मगा रहे हैं और वे लोग मंगाते हैं जो कि समाजके मुखिया वा सरपंच हैं! फिर भी श्रीलालकी दृष्टिमें छापेका प्रचार एक छोटासा अंकुर दिखता है जो प्रतिज्ञापत्र निकालनेसे ही मुरझा जावेगा ऐसे लोगोंके विचारपर हमें हँसी आती है!

जैनगजटमें छापेका विवाद।

पं० रामलालजी उपदेशकने जैनगजटमें लिखा है कि "छापेका खंडन मंडन जैनहितैषी और पनाकामें न छपकर जैनगजटमें ही छपना चाहिये।" इस सम्मतिका हम अनुमोदन करते हैं। और जैनगजटके संपादकसे प्रार्थना करते हैं कि वे इस सम्मतिको शीघ्र ही कार्यमें परिणत करें। क्यों कि एक तो हमारा छोटासा पत्र है दूसरें हमारे अनेक पाठक इस झगड़ेसे अरुचि प्रकाश करते हैं तीसरे इस पत्रका उद्देश जिनवाणीमाताका जीर्णोद्धार करानेका है और चौथे भाई श्रीलाल और उसके अनुयायियोंके लेख ऐसे वाहियात और बेवकूपीके होते हैं कि, उनका उत्तर देनेको जी नहीं चाहता है। कोई युक्ति हो तो उसका खंडन किया जाय! गालियोंका उत्तर ही क्या हो सकता है

जैनगजट बडा पत्र है, साप्ताहिक है, इसलिये यह वितंडा उसीमें चलै, तो अच्छा हो। यदि कोई युक्तिपूर्ण लेख आवैगा, तो हम भी उसका उत्तर जैन गजटमें भेजनेका प्रयत्न करेंगे। अगले वर्षमें हम इन सब लड़ाई झगड़ोंसे मुक्त हो कर अपने पाठकोंको उत्तमोत्तम उपयोगी लेख सुनानेका उद्योग करेंगे।

श्रीलालजीका पांडित्य।

(२)

" युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः। "

(श्रीहरिभद्रसूरिः)

पंडित श्रीलालजीने अभीतक हमारे पूर्व लेखका उत्तर नहीं दिया है, तौ भी अपनी पंडिताईकी नाक रखनेके लिये और अपने भोले भक्तोंमें वाहवाही लूटनेके लिये आपने जैनपताकाके बारहवें अंकमें **विनयका तारतम्य** शीर्षक एक सारशून्य लेख लिखनेका फिर भी परिश्रम किया है। इस लेखके विषयमें हमारा कुछ भी लिखनेका विचार नहीं था, परन्तु " इसमें जो विनयके विषयमें **शास्त्रीय चरचाके** नामसे औंधा सीधा समझाया गया है, उससे कहीं हमारे भोले भाई ठगाये न जावें, " इसकारण यह लेख लिखना ही उचित समझा गया। इसके सिवाय पंडित दरयावसिंहजी " शास्त्र बेचकर लाभ उठाना निंद्य है या नहीं, " इस विषयमें युक्तिपूर्ण लेख चाहते थे, तथा हमने भी इस विषयमें लेख लिखने की प्रतिज्ञा की थी, सो ये दोनों हेतु भी इस लेखमें पूर्ण हो जावेंगे, ऐसा समझकर भी यह प्रयत्न करना पडा। आशा है कि, पाठकगण इसे निष्पक्ष बुद्धिसे बांचेंगे, और श्रीहरिभद्रसूरिके उक्त वचनका अनुकरण करेंगे कि " जिसका युक्तिपूर्ण वचन हो, उसीका ग्रहण करना चाहिये। "

इस लेखके प्रारंभमें ही न्याय सिद्धान्तोंके वेत्ता पंडित श्रीलालजीने ऐसी प्रबल युक्ति दी है जो आज तक न तो किसीने सुनी होगी और न किसीकी कल्पनामें आई होगी। जिसप्रकार एक धूर्तने " अस्माकं बदरी चक्रे युष्माकं बदरी गृहे " अर्थात् " मेरी गाडीके पहिये बेरीके है, और तुम्हारे घरमें बेरीका पेड है " इसप्रकार बादरायण सम्बन्ध बतलाकर अपना मतलब निकाला था,

उसीप्रकार पंडितजीने भी एक नीतिके श्लोकका एक पाद उड़ाकर शास्त्रको द्रव्य सिद्ध किया है। यदि पंडितजी चाहते, तो ऐसी और भी अनेक युक्तियां हैं, जिनसे उन्हें शास्त्रमें द्रव्यत्व सिद्ध करना कुछ कठिन नहीं पड़ता। परंतु जब बुद्धिपर पक्षपातका परदा पड़ता है, तब ऐसी ही पोच युक्तियां सूझतीं हैं। जिस श्लोकके चरणसे आपने शास्त्रको द्रव्य बनाया है, उसका पूरा स्वरूप यह है:—

न चौरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥ १ ॥

अर्थात् "जिसे चोर हरण नहीं कर सकता है, राजा छीन नहीं सकता है, भाई बंधु बटवा नहीं सकते हैं, जो भार रूप नहीं है और खर्च करनेपर भी निरन्तर बढ़ता है। वह विद्यारूपी धन सब धनोंमें प्रधान धन है।" साहित्यका जो थोड़ा भी मर्मज्ञ है, वह इस श्लोकको पढते ही समझ जावेगा कि, कविने अपनी चतुराईसे विद्याको धन कहकर उसे धनसे भी उत्कृष्ट सिद्ध कर दिया है। परन्तु इससे विद्या कोई ऐसी चीज नहीं हो गई, जिसे तिजोरीमें रखनेकी आवश्यकता हो। कविने स्वयं ही उसके ऐसे विलक्षण गुण बतला दिये हैं, जो धनमें नहीं होते हैं। इतनेपर भी पूरे श्लोकको वंचकताकी ओटमें छुपाकर एक अपूर्व साहससे पंडितजीने केवल "**विद्याधनं सर्वधनप्रधानम**" कहकर शास्त्रको द्रव्य सिद्ध कर दिया है। न्याय और सिद्धान्तोंकी चर्चामें इसप्रकार सामान्य नीतिके तथा उपमाओंके वाक्योंसे पदार्थ सिद्ध करनेकी धूर्तता शायद ही किसीने देखी होगी।

पंडितजी इतनेहीसे संतुष्ट नहीं हुए हैं, किन्तु वांचनेवालोंकी आंखोंपर धूल डालनेके लिये आपने प्रमाण तो दिया है, विद्याको धन कहनेका और सिद्ध किया है, शास्त्रको द्रव्य। क्या विद्या और शास्त्रमें आपकी समझमें कुछ भी अन्तर नहीं है? और यदि आपके कथनानुसार शास्त्र और विद्याको एक समझ कर विद्याको धन मान लिया जावे, तो क्या आचार्य उपाध्यायादि महात्माओंको जो विद्याधनके भंडार होते हैं, महापरिग्रही मानना चाहिये? हम आशा करते हैं कि, अब आगे आप ऐसी पोच युक्तियां देकर हम लोगोंको नाहक दिक करनेकी कृपा न करेंगे।

खैर, पंडितजीने शास्त्रका द्रव्य तो सिद्ध कर दिया। अब उसे देवद्रव्य सिद्ध करनेके लिये आप कहते हैं कि, " जिसप्रकार आप्तप्रणीत वाक्योंको आप्तवाक्य कहते हैं, उसी प्रकारसे शास्त्रोंका कर्त्ता देव है, इसलिये शास्त्र देवद्रव्य हैं। इस कारण शास्त्र बेचकर जो लाभ उठाया जाता है, उसे देवद्रव्य कहना किसी प्रकार असंगत नहीं है।" लीजिये, पंडितजी पहली युक्तिकी नाईं इसमें भी स्वयं उलझ गये। आपने शास्त्रोंको देवद्रव्य तो बना डाला, परन्तु यह नहीं सोचा कि, ऐसा करनेसे शास्त्रोंका ग्रहण करना भी पाप हो जावेगा। क्योंकि देवद्रव्यका ग्रहण करना पाप है और इसी प्रकारसे जिनवाणी भी देवद्रव्य है, तो उसको सुनकर ग्रहण करना भी महापाप होगा। क्योंकि आपकी युक्तियोंसे विद्याको धनत्व और जिनवाणीको देवद्रव्यत्व सिद्ध हो चुका है। और देवद्रव्यसे जो वृद्धि होती है, तथा सुख होता है, वह नरकका कारण होता है, ऐसा आप पहले कह चुके हैं। तब आपकी समझमें तो विद्याध्ययन करनेवाले सब ही नरकगामी होंगे। इस युक्तिको देते हुए पंडितजीको अपनी ग्रहण की हुई विद्याका स्मरण नहीं रहा होगा, ऐसा जान पड़ता है।

आगे चलकर अपनी बुद्धिमानीको पंडितजी स्वयं ही स्वीकार कर लेते हैं! आप फरमाते हैं "अथवा इस क्लिष्टकल्पनाको छोड़ दीजिये, प्रामाणिक ग्रंथोंमें भी तो श्रुत (शास्त्र) को देव कहा है। यथा-**देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति**" इसलिये शास्त्रदेवको बेचकर जो लाभ उठाना है वह देवद्रव्य है। उसे व्यवसाय कदापि नहीं कह सकते हैं।" इसमें हम पूछते हैं कि, शास्त्रको देव तो आपने बतला दिया। परन्तु फिर उसे देवद्रव्य कैसे कह दिया ? क्या आप देवद्रव्यका यही लक्षण मानते हैं कि देवको बेचकर जो लाभ उठाया जाता है, उसे देवद्रव्य कहते हैं ? ऐसा माननेसे तो कृपानाथ! मंदिरके उपकरणादि देवद्रव्य नहीं कहलावेंगे। क्योंकि उनमें आपका उक्तलक्षण घटित नहीं होता है। हमारी समझमें तो शास्त्रोंमें देवद्रव्य उसे माना है, जो दूसरोंके द्वारा देवको अर्पण किया जाता है और उस द्रव्यको जो लोग ग्रहण करते हैं, वे उन्हें देवद्रव्यका ग्राहक कहते हैं! ऐसे देवद्रव्यके ग्राहक ही नरकके पात्र होते हैं। और ऐसा ही देवद्रव्य कुलके नाशका कारण होता है।

हमारे शास्त्रोंमें नव देवता माने हैं। पंचपरमेष्ठी, जिनवाणी, जिनधर्म, जिनचैत्य, और जिनचैत्यालय इसी लिये इन ९ मेंसे किसी भी देवके लिये अर्पण किया हुआ द्रव्य देवद्रव्य कहलाता है।

कल्पना कीजिये कि, मैंने किसी मंदिरको दो हजार रुपये अर्पण किये। वे रुपये जिस दिन मैंने अर्पण किये, उसी दिन देवद्रव्य हो गये। अब यदि कोई पुरुष उन रुपयोंको ले लेवे, अथवा मैं ही उन रुपयोंको अपने काममें ले आऊं, तो मैं देवद्रव्यका ग्राहक हो जाऊंगा। परन्तु इससे यह नहीं समझलेना चाहिये कि, वह देवद्रव्य किसीके ग्रहण करनेके योग्य ही नहीं है। नहीं यदि ऐसा माना जावेगा, तो बड़ा भारी अनर्थ हो जावेगा। क्योंकि मैं उन रुपयोंसे जिस दिन मंदिरका कोई काम करवाना प्रारंभ करूंगा, उसी दिन एक दो मुनीम गुमास्ते नौकर चाकर देखरेख रखनेवाले रक्खूंगा, और उन्हें उन रुपयोंमेंसे तनख्वाह वगैरह दूंगा। परन्तु क्या इससे उन रुपयोंको लेकर वे मुनीम गुमास्ते देवद्रव्य के ग्राहक हो जावेंगे? नहीं कदापि नहीं। क्योंकि जिस कारीगरसे जिनप्रतिमा बनवाई जाती है, प्रतिष्ठाकलामें उसकी बड़ी भारी प्रशंसा की है। परन्तु वह भी उस देवके लिये अर्पण किये हुए द्रव्यमेंसे अपनी मजदूरी लेता है। मन्दिरके द्रव्यसे हम निरन्तर ही सोने चांदीके छत्र चमर झारी, जरी, गोटा, चंदोवा आदि चीजें बाजारसे लेते हैं, और इन चीजोंके वेचनेवाले बहुतसे जैनी तथा अन्यमती भी होते हैं परन्तु क्या वे इससे देवद्रव्यके भक्षक कहला सकते हैं? सारांश यह है कि, यद्यपि देवद्रव्यका ग्रहण करना पाप है, परन्तु उसका ग्रहण सर्वत्र एक परिणामसे नहीं होता है। उपयोगमें लानेके भेदसे वह दोषका कारण नहीं भी होता है।

जिस मूल्यसे भगवानकी प्रतिमा कारीगरसे खरीदी जाती है, वह मूल्य भगवानका नहीं, किन्तु कारीगरके परिश्रमका तथा चतुराईका होता है, यदि हम भगवानका मूल्य देकर लाते, तो अवश्य ही कहा जा सकता कि, कारीगरने साक्षात देवको ही बेच दिया। परन्तु यथार्थमें वह अपने परिश्रमका फल लेता है, इसलिये दोषी नहीं ठहर सकता है।

अब इसे शास्त्रोंके विषयमें भी घटित करलेना चाहिये। शास्त्रदेवके लिये जो द्रव्य अर्पण किया जाता है, वह शास्त्रका देवद्रव्य कहलाता है। जैसें कि, बाबू देवकुमारजीने शास्त्रोंके लिये २०००) अर्पण किये हैं। ये रुपये शास्त्र देवद्रव्य हैं। यदि ये रुपये जैनहितैषीके सम्पादकको दे दिये जावें, और वे उन्हें हजम कर जावें, तो अवश्य ही देवद्रव्यके ग्राहक ठहर जावेंगे। परन्तु

यदि उक्त देवद्रव्यके प्रबंध कर्ता उन रुपयोंमेंसे कोई ग्रन्थ मंगावें, तो मूल्य लेकर ग्रन्थ देनेवाले जैनहितैषीके सम्पादक किसी प्रकार भी दोषी नहीं होंगे, जिस तरहसे प्रतिमा बनाकर बेचनेवाला कारीगर। क्यो कि छपानेवाले तथा हाथसे लिखनेवाले जो तत्त्वार्थसूत्र बेचते हैं, वे भगवान उमास्वामीकी कृतिका मूल्य नहीं लेते हैं और न उनके बचनोंका मूल्य देनेको आज कोई संसारमें समर्थ है। किन्तु कागज स्याहीका मूल्य तथा लिखाई छपाई शुधवाई वगैरह का परिश्रम फल लेते हैं। इससे यह कहना बडी भारी मूर्खता का है कि, छपानेवाले साक्षात् देवताका देवता बेच डालते हैं। और शास्त्र छपाकर बेचना कोई व्यवसाय नहीं है। न्याय और सिद्धान्त पढनेवालोंकी बहुत सूक्ष्मदृष्टि हो जाती है परन्तु बेचारे श्रीलालजीकी समझमें इतनी मोटी बात भी नहीं आई यह एक आश्चर्यकी बात है। इतने परभी जैनपताकाके एक खुशा- मदी टट्टू कहते है कि, "जैनगजटके सम्पादकसे श्रीलालजीके लेखकी समा- लोचना करनेकी भी योग्यता नहीं है उनसे वे वर्षोंतक व्याकरण न्याय और सिद्धान्तशास्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त कर सकते है।

आगे चलकर पंडितजी कहते है कि, "ग्रन्थोंका छपाना जीर्णोद्धार नहीं कहा जा सकता। क्योंकि पुरातन वस्तुके अंगभंगको ठीक कर देना जीर्णोद्धार कहलाता है। परन्तु छपानेमें न तो कोई फटा शास्त्र जुड़ जाता है, और न कोई आधा शास्त्र पूर्ण हो जाता है।" इस विषयमें हमारा कथन यह है कि, भूली हुई जीर्ण हुई विद्याको पठनपाठनविरहित ग्रन्थोंको, अर्थात पंचाध्यायी शाकटायन जैसे अप्राप्य शास्त्रोंको हजार हजार प्रति कराकर प्रचलित करना कौन सिद्ध- कर सकता है कि, जीर्णोद्धार नहीं है। जिस ग्रन्थका पठन पाठन नष्ट हो गया हो, अथवा जीर्ण और दुर्लभ्य हो गया है, उसे सुलभकरके फिरसे प्रचलित करना सच्चा जीर्णोद्धार है। यह कोई बात नहीं है कि, टूटफूटेको जोडना ही जीर्णोद्धार है। आत्माका उद्धार किया जाता है। सो क्या आत्माके कोई प्रदेश खिर जाते हैं, अथवा कम हो जाते है, जिनका कि उद्धार किया जाता है? पंडितजी! इस बातको आप नहीं समझ सकते हैं कि, जैनग्रन्थोंके छपनेसे जिनवाणीका कैसा उद्धार हो रहा है। क्योंकि आपको वह निर्मल दृष्टि प्राप्त नहीं है, जिससे यह उद्धार देखा जा सकता है। आप तो यही चाहते हैं कि, ग्रन्थोंका अधिक प्रचार न होने पावै, क्योंकि ऐसा करनेसे सस्ते शाकके समान ग्रन्थोंमें स्वाद

नहीं आवेगा, और उनका अविनय होने लगेगा। परन्तु याद रखिये कि, अब आपकी यह युक्ति बहुत दिन तक नहीं चलेगी, और आगे इन छपे ग्रन्थोंकी कृपासे विद्याका इतना प्रसार हो जावेगा कि आपकी इस थोथी पंडिताईको कोई पूछेगा भी नहीं। इन निकम्मी युक्तियोंकी पोल लोग बहुत जल्दी जान जावेंगे।

यहां तक **विनयका तारतम्य** शीर्षकसे पंडितजीके लेखका कुछ भी तारतम्य नहीं मिला है। आगे चलकर आपने लगभग दो ढाई कालममें विनयके दर्शन ज्ञान चारित्र और उपचार इस प्रकार चार भेद करके उन्हें अन्तरंग तप सिद्ध किया है। परन्तु यह सिद्ध करनेकी जरूरत क्यों समझी गई? यह मालूम न हुआ। उपचार विनय अन्तरंग तप नहीं है, क्या किसीने ऐसा मान लिया है? जान पड़ता है, किसीके इस लिखनेसे कि "दर्शन ज्ञान चारित्र विनय मुख्य है और उपचारविनय गौण है," पंडितजीको यह भ्रम होगया है, और गौण शब्दका अर्थ आपने बाह्यतप समझ लिया है। परन्तु यथार्थमें ऐसा नहीं है। उपचारविनय गौणविनय अवश्य है, परन्तु बाह्यतप नहीं है, अन्तरंगतपका जो विनय भेद माना है, उसीका यह प्रभेद है।

अब यहां विचार करना चाहिये कि, विनयके भेदोंमें जो चौथा उपचार विनय कहा है, वह गौण है कि, नहीं। हमारी समझमें उपचार कहनेसे ही पहले तीन मुख्य ठहर गये और चौथा गौण हो गया। क्योंकि मुख्य तीन विनयोंके होनेपर ही उपचार विनयको विनयत्व है। मुख्य विनयके घात होनेसे उपचारविनयको विनयत्वही नहीं रहता है। इसलिये जहांपर मुख्य विनयकी सिद्धि होती हो, और उपचारका एक अंग भंग भी होता हो, तो वहां पर मुख्यकी ही रक्षा करनी चाहिये। ऐसा नहीं है कि गौणविनयके एक अंशकी रक्षा करनेके लिये मुख्य विनय पर ही हड़ताल फेर दी जावे। श्रीअमृतचन्द्र सूरीने उपचार (व्यवहार) को **व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थं** इस वाक्यसे असत्यार्थ कहा है। इसलिये उसे किंचित्कर अथवा अप्रधान करनेमें कोई हानि नहीं है। व्यवहार और उपचार एकार्थ वाचक शब्द हैं।

पंडितजीकी क्रियासे तो हमको यही मालूम होता है कि, आप मुख्य विनयके कट्टर शत्रु है, और उपचार मात्रको प्रधान बनाना चाहते हैं परन्तु यह नहीं सोचते हैं कि, **मूले नष्टे कुतः शाखा** जड़के नष्ट होनेपर शाखायें कहां रह सकती हैं।

दर्शन ज्ञान और चारित्र विनयका लक्षण सर्वार्थसिद्धिकारने इसप्रकार कहा है, " १ **शङ्कादिदोषरहितं तत्त्वार्थश्रद्धानं दर्शनविनयः** अर्थात्, शंकादि दोषरहित तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सो दर्शनविनय है, २ **सबहुमानं मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणाभ्यासस्मरणादि ज्ञानविनयः**—मोक्षकी प्राप्तिके लिये अतिशय आदरके साथ ज्ञानका ग्रहण करना, अभ्यास करना, स्मरण रखना और (आदि शब्दसे) दूसरोंको पढाना, ज्ञानकी वृद्धिके कारणोंको मिलाना ज्ञान विनय है ३ **तद्वतश्चारित्रसमाहितचित्तता चारित्रविनयः** जैसा भगवानने कहा है, तदनुसार चारित्रमें लीन होनेको चारित्र विनय कहते हैं।" परन्तु इन तीनों विनयोंकी प्राप्ति ग्रन्थ संग्रहसे होती है, चाहे वे छापेके हों, चाहे हाथके लिखे हुए हों, अर्थात् रत्नत्रयकी प्राप्तिके कारण दोनों ही प्रकारके ग्रन्थ हैं। इन दोनों ही प्रकारके ग्रन्थ लेनेवाले यदि मुख्य विनयका आदर करते हैं तो निश्चय समझिये कि, वे मुख्य विनयके साधक जो ग्रन्थादि हैं, उनकी विनय करेंगे ही क्योंकि जो पुरुष शास्त्रादि साधनोंका तिरस्कार करता है, उसके मुख्य विनय हो ही नहीं सकता है। अब पंडितजीको अपनी कृतिपर ख्याल करना चाहिये कि जब आप छपे ग्रन्थोंको जो कि रत्नत्रयके उत्पादक हैं विनय करनेका उपदेश न देकर उलटे उनका तिरस्कार करते हैं, और लोगोंको अविनय करनेके लिये एक प्रकारसे उत्साहित करते हैं, तब बतलाइये उभय प्रकारकी विनयता कहां रही ? आपकी क्रियासे हमको यह कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं होता है कि, आप मूलविनय और उपचारविनयके तत्त्वको समझे ही नहीं हैं, और नाहक ही पापमें डूबनेके लिये एक असत्यपक्षमें पतित हो रहे हैं।

बस पंडितजीके **विनयका तारतम्य** समाप्त होगया। यहासे आगे लग भग ४-५ पेजमें आपने जैनमित्रके सम्पादकके लेखका तारतम्य मिलाया है। जिसका शीर्षकसे कुछ भी संबंध नहीं है। विद्वान कहलाकर भी लोग अपने पक्षमें कैसे अंध होजाते हैं और अपनी टेंटेके आगे दूसरोंकी अमृतमयी निष्पक्ष वार्णीका भी किसप्रकार तिरस्कार करते हैं यदि इसका सबसे साफ और ताजा उदाहरण देखना चाहते हो तो पंडित श्रीलालजीका उक्त लेख बांच डालिये। मान्यवर पंडित गोपालदासजीने '**जैनी और महासभा**' शीर्षक लेखमें एक जगह लिखा

है कि "पुस्तकोंकी सुलभताके वास्ते मुद्रण यंत्र भी एक अद्वितीय उपाय है। परंतु खेदके साथ कहना पडता है कि हमारे भाईयोंकी परस्परकी खेचाखेंचने इस उपाय से लाभ उठानेमें एक बडा भारी विघ्न उपस्थित किया है। इस खेंचाखेंचसे हमारे समाजमें दो दल होगये हैं एक विधिपक्ष और दूसरा निषेधपक्ष ये दोनोंही पक्ष एकांतग्रहग्रसितकी तरह अपने २ पक्षमें न्याय अन्यायका कुछ भी विचार नहीं करते हैं। विधिपक्षवाले अपने पक्षमें अन्धे होकर परमपूज्य पवित्र जिनवाणी माताका महा अपवित्र सरेसके बेलनसे स्पर्श करानेमें भी बिलकुल नहीं लजाते तथा निषेध पक्षवाले शुद्ध छापेखानेका प्रचार करनेमे भी सहमत नहीं होते हैं" जिसके हृदयमें जरा भी बुद्धि है इन वाक्योंको बांचकर वह तत्काल ही कह देगा कि पंडित गोपालदासजीने इस विषयमें सर्वथा निष्पक्ष होकर अपनी यथार्थ सम्मति दी है। उन्होंने न तो छापेवालेको अच्छा कहा है और न छापनेके विरोधियोंको किंतु दोनोंको एकांतग्रहग्रसित बतलाया है और जहां तक हम जानते हैं, छापेको बुरा बतलानेवाले जितने लोग हैं वे प्राय: इसीलिये हैं कि छापेमें अशुद्धता और अविनय होती है। यदि इन दोनों दोषोंका परिहार हो जावे तो इसके विपक्षमें कोईभी समझदार न होगा। परंतु पंडित श्रीलालजी मुद्रण मात्रके द्वेषी बनकर अपनेको सच्चे मातृभक्तोंकी गणनामें शामिल करना चाहते हैं। इसलिये आपको जैनमित्रका इतना लिखना भी सह्य नहीं होता कि दोनों पक्षवाले एकान्तग्रहग्रसित हैं। यदि जैनमित्र आपकी पीठठोंकर राजा वसुकी तरह पर्वतवाक्यं प्रमाणं की उक्तिका अनुकरण करदेता कि पं. श्रीलालजी जो कुछ कहते हैं वह बहुत ठीक है तो सायद वह निष्पक्ष कहलाता। बलिहारी है इस निष्पक्षताकी !

जैनमित्रके उपर्युक्त वाक्योंको लेकर श्रीलालजीने बहुतसे कागज काले किये हैं, जिनका लेखसे कुछ भी सम्बध नहीं है, और न उनमें वाहियातवाक्योंके सिवाय कोई युक्तिसंगत बातें हैं, जिनका खंडन किया जावे। घुणाक्षरन्यायसे इन्हीं बातोंमें आप एक जगह ऐसी बात लिखगये है, जिससे आपका पक्ष बिलकुल गिरगया है। उसका सारांश यह है कि—"छापाखाना अधिक धनसे शुद्ध हो सकता है। परन्तु प्राचीन शास्त्र उसी छापेखानेमें छपेंगे, इसकी रजिष्टरी किस प्रकारसे हो सकती है? विधर्मियोंके छापेखाने भी तो शास्त्र छाप सकते हैं। यही कारण सहमत होनेका नहीं है।" अहोभाग्य ! जो आपके मुहसे

इतनी सहानुभूतिके शब्द निकल गये । इसके विषयमें हम पूछते हैं कि, रजिष्टरी करानेकी जरूरत ही क्या है ? जैनी भाइयोंसे इस बातकी प्रतिज्ञा करालेना ही काफी है कि, हम विधर्मियोंके छपाये हुए ग्रन्थ नहीं लेंगे । बस. यही हमारी रजिष्टरी है । न हम लेंगे और न कोई छपावेगा । आप जो महाप्रयत्न कर रहे हैं कि, जैनी छपे ग्रन्थ न लेवें उससे भी तो विधर्मी लोग छपानेसे न चूकेंगे फिर इससे तो यही अच्छा हो कि, जैनियोंके लिये पंडित श्रीलालजी शुद्ध छापखानेका प्रबन्ध कर देवें और उन्हें अन्य छापेखानोंकी छपी हुई पुस्तकोंके न लेनेका उपदेश देवें । बस इससे जैनियोंमें विनयपूर्वक ग्रन्थोंका प्रचार भी होने लगेगा, और दूसरोंके लिये रजिष्टरी भी हो जावेगी ।

आगे चलकर पंडितजीने उपचारविनय है सो उत्तरविनय नहीं है, इसके लिये आकाश पाताल एक किया है, परन्तु ऐसा मानता ही कौन है ? उपचारविनय उपचार विनय ही है, उत्तर विनय कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? उपचारका अर्थ व्यवहार अथवा गौण होता है, जैसा कि, हम पूर्वमें कह आये हैं । पंडितजीका कथन है कि, " मूलके होनेपर शाखादि हों, अथवा न हों, परन्तु यह संभव नहीं हो सकता कि, मूलाभावमें शाखादिक हों," सो हम भी यही कहते हैं कि, "मुख्य विनयमें शाखादि रूप उपचार विनय हो अथवा न हो, परन्तु मुख्यके अभावसे अर्थात् ज्ञानाभ्यासादिके न होनेपर उपचार विनयका होना संभव नहीं है । जब पुस्तकें ही नहीं होंगी, तब उपचार विनय किसका । इसीको इस प्रकारसे भी कह सकते हैं कि, मुख्य विनयकी रक्षा करके फिर उपचार विनयकी रक्षा करना चाहिये । ऐसा नहीं है कि, मुख्य विनयका चाहे नाश हो जावे, पर उपचार विनयको छातीसे लगाये रहें ।

आगे आपने अपने पिछले लेखका सार्टीफिकेट पेश किया है कि, उसे अमुक २ नगरवासियोंने पसन्द किया है, परन्तु यह न मालूम हुआ कि, उक्त नगरोंकी पंचायतियोंने आपको सार्टीफिकेट दिया है, अथवा आपही जैसे दो चार लालबुझक्कड महाशयोंने । नाम प्रकाशित हो जाते, तो हम भी सुनकर कर्ण पवित्र कर लेते ।

अन्तमें पंडितजीने अपने भक्तोंसे प्रतिज्ञा पत्र भेजनेकी अपील की है, और आशा की है कि, इस युक्तिसे इस विषयका अंकुर शीघ्र नष्ट हो जावेगा । परन्तु

यह बडे अफसोसकी बात है कि, जैनपताकाके अविनयी सम्पादकने नीचे अपना नोट देकर पंडितजीकी आशालतापर कुठाराघात किया है। सम्पादक महाशय कहते हैं कि, "प्रतिज्ञा पत्र प्रकाश करना तब ही अच्छा होगा, जब लेखक तथा उनके भक्त हस्तलिखित ग्रन्थोंके प्राप्त होनेका उपाय कर लें।" देखिये सम्पादककी यह कितनी बडी गुस्ताखी है जो पंडितजीके एक मात्र उपाय की इस तरह अवहेलना करता है। क्या हस्तलिखित ग्रन्थ न मिलनेसे छपे ग्रन्थोंका प्रचार करना अभीष्ट हो सकता है? परन्तु आश्चर्य तो यह है कि, पंडितजीने भी ऊपर छपना स्वीकार कर लिया है और जैनपताकामें जैनग्रन्थोंके श्लोक प्रतीक बराबर छपाते जाते हैं। फिर संपादक महाशय क्यों न ऐसे हों।

लालाराम गुप्त।

जैनपताकाके प्रश्नोंका उत्तर।

पाठक महाशय! दूसरे वर्षकी जैनपताकाके प्रथमांकमें अलीगढनिवासी हकीम कल्याणरायजी उपदेशक महाशयने छापेवालोंसे छापेकी अशुद्धियोंके विषयमें ८ प्रश्न ऐसे ढंगसे किये हैं कि, जिनके बांचनेसे छापेसे अनभिज्ञ भोले भाले जैनी भाइयोंको छपे ग्रन्थोंसे घृणा हो जाय। आप चिरकालसे महासभाके उपदेशक हैं जैनियोंको उपदेश देकर सुल्टे मार्गपर लाना आपका कर्तव्य है. आप बडे सज्जन और धर्मात्मा हैं ऐसे महाशय इसप्रकार धोकेबाजीके प्रश्न करके भोलेभाले भाइयोंको जिनवाणी माताकी स्वाध्यायसे विरक्त करेंगे ऐसा स्वप्नमें भी गुमान नहीं था हम जहांतक इन प्रश्नोंकी भाषापर विचार करते हैं तो यही भ्रम होता है कि ये प्रश्न हकीमजी साहबकी लेखनीसे न निकल कर महासभाके द्वेषी जैन धर्मके नाशक किसी अन्य ही डरपोक लेखक की लेखनीसे निकले हैं परंतु लेखके नीचे नाम हकीमजी साहबका ही छपा है और अंतमें संदेह भंजनार्थ ही ये प्रश्न किये गये हैं ऐसा प्रकाशित होनेसे मालूम होता है कि हकीमजी साहब छपे ग्रन्थोंमें तो सहमत हैं परंतु उनकी समझमें ग्रन्थ छपानेकी क्रियामें कुछ अशुद्धियां दीख रहीं हैं इसीकारण आपने संदेह निर्वाणार्थ प्रश्नकरके उनका उत्तर मांगा है। इसकारण सबको भ्रम पैदा करनेवाले हकीमजीके इन प्रश्नोंका उत्तर दिया जाता है,—

पाठक महाशय हकीमजीने शिलाप्रेस और टाईपके प्रेस दोनोंका नामोद्देशकरकें इनमें सब ग्रन्थ छपते और विकते हैं ऐसा लिखकर आपको सरा सर धोका दिया है क्योंकि आजकल जितनें ग्रन्थ छपते हैं वे शिलाप्रेसमें (पत्थरके छापेमें) न छपकर टाईपके छापखानोंमें ही छपते हैं हकीमजीने जो जो अशुद्धियें बताई हैं वे सब शिलाप्रेसमें और खास करके अलीगढ आगरेकी तरफके प्रेसोंमें ही होती होंगीं टाईपके प्रेसमें सरेसके रूलरकी अशुद्धताके सिवाय और कोई भी अशुद्धि नहीं है सरेसके रूलरकी (बेलनकी) जगह रबडके रूलसे काम लिया जा सक्ता है सो निर्णयसागर प्रेसमें हमने रबडके रूलका प्रबन्ध कर लिया है। हकीमजी साहबको इसप्रकारकी धोकेबाजी करके भोलेभाले भाइयोंको बहकाना कदापि उचित नहीं था।

प्रश्न पहिला—कापीपर अंडेके पानीका लेप किया जाता है और उसीसे पत्थरपर अक्षर उतारकर छापे जाते हैं सो यह लिखना सारासर धोका देना है क्योंकि हम जब मुरादाबादमें थे तो कापीके कागद हमनें स्वयं एकबार रंगेथे वहां पर क्या हिंदु और क्या मुसलमान कोई भी अंडेका पानी नहीं लगाते थे सिर्फ मैदा और हरतालके रंगका पानीसा बनाकर उसमें कापीके कागज रंगे जाते हैं। यदि वर्तमानमें कोई नवीन रीति निकली हो तो दूसरी बात है। बंबईके लिथो प्रेसोंमें भी इस प्रकारसे कागज नहीं रंगे जाते। कोई नवीन रीतिसे इसमें यदि हकीमजी साहबकी धोकाबाजी न हो तो न सही परंतु यह तो सरासर धोकेबाजी ही है कि आजकल जितने ग्रंथ छपते हैं कोई भी शिलाप्रेसमें नहीं छपते और न कोई भाई छपावैगा। क्यों कि छापेवाले ऐसे तीव्रलोभी वा धर्मरहित नहीं हैं जो ऐसी अशुद्ध रीतिसे छपाकर ग्रंथोंका प्रचार करे। हम हकीमजी साहबसे पूछते हैं कि छापेका प्रचार इन पांच सात वर्ष में ही हुआ है सो इस समयमें कौनसे भाईने कोनसा ग्रंथ शिळाप्रेसमें छपाया है सो बतावें। हम जहांतक स्मरण करते हैं १२ वर्ष पहिले दिल्लीवाले मुंशी अमन सिंहजीने दो एक ग्रंथ लिथोमें छपाया था परंतु हालमें कोई भी भाई शिळाप्रेसमें कोई ग्रंथ न तो छपाया और न कोई भाई ऐसी अशुद्धतासे छपावेगा. फिर हकीमजी साहब भोले भाले भाइयोंको क्यों बहकाते हैं कि इन्हीं प्रेसोंमें ग्रंथ छपते और विकते हैं ?

दूसरा प्रश्न—ब्रूस सूअरके कडे बालोंका होता है सो इसमें भी हकीमजी साहबकी धोकाबाजी है। ब्रूस सब प्रेसोंमें बेतके तथा बासोंके आंशोंका (तारोंका) बना

हुआ काममें लाया जाता है जो कि सूअरके बालोंसे कई गुणा कडा होता है। जैसा कि एक ब्रूस आपके पासभी रहता है जिससे कि शिरके बाल मूछें तथा टोपी साफ किया करते हैं।

तीसराप्रश्न—छापेमें कागजपर चमडा रखकर दबाया जाता है सो यह भी इर्कामजीकी धोकेबाजी है बंबईके प्रेसोंमें कहीं भी चमडेका नाम तक नहीं है। यहां चमडेकी जगहँ–जिस टाटसे मुसाफरीके कपडे रखनेके पाकेट (बेग) बनते हैं वही टाट तथा रद्दी कागजोंके नित्य बनाये हुये गत्ते काममें लाये जाते हैं।

चौथा प्रश्न—सरेसके बेलनसे स्याही लगाई जानेका है, सो इसकी जगहँ रबडका रूल काम देता है जो कि– एक प्रकारके वृक्षोंका गोंद होता है।

पांचवां प्रश्न—छापेकी श्याहीमें चर्वी और मद्य पड़ता है। सो यह बात भी गलत है, विलायती वा स्वदेशी किसी भी श्याहीमें चर्बी नहिं पडती है। हां जो कार्य विना भिजोये सूखे रफ (खुर्दरे कच्चे) कागजोंमें छपाया जाता है तो उसमें स्याही पतली करनेके लिये कहीं २ कोई प्रेसवाला मद्य डालता है परंतु यहांपर बहुतसे छापेवाले तारपीन तैल व केरोसिन तैल तथा एकप्रकारके तेजावसे काम लेते हैं। जिनमें मदिरा वा किसी अशुद्ध पदार्थका कुछ भी संबंध नहीं है।

छट्ठा प्रश्न—यदि कोई जैनी कहे कि, मैं जैनप्रेस बनाकर सब छपानेकी शुद्धता करलूंगा। यह बात संभव है या केवल लोगोंको रिझाना और स्वार्थ साधन है ?

उत्तर—इसके उत्तरमें हम जोरके साथ कह सकते हैं कि, यदि कोई द्रव्य लगानेके लिये तैयार हो, तो एक ऐसा उत्तम छापखाना खोला जा सकता है, जिसमें हस्तलिखित ग्रन्थोंसे भी सवाई शुद्धता तथा पवित्रताका साधन हो सकता है। स्याही, बेलन, कागज बगैरह सब पदार्थ विश्वासके योग्य पवित्रता पूर्वक मिल सकते हैं। और सम्पूर्ण कर्मचारी जैनी तथा सदाचारी ब्राह्मणादि रखकर यहांतक प्रबन्ध किया जा सकता है कि, छपा हुआ एक भी पत्र जमीनमें अथवा पैरोंमें न जा सके। पतले कागजोंपर छपानेसे जो छपे ग्रन्थोंके शीघ्रही जीर्ण होनेकी तथा फट जानेकी शिकायत रहती है, वह बढ़ियां मोटे

कागजपर छपानेसे दूर हो जावेगी। ग्रन्थ संशोधनके लिये ऐसे विद्वानोंका संग्रह किया जा सकता है, जैसे जैनियोंमें शायदही एक दो मिलें। परन्तु उपदेशक महाराज! यह सब रुपयोंसे होगा। बातोंसे नहीं होगा। लोगोंको धोका देकर इस कल्याणके मार्गसे विमुख करना हीं, यदि वर्तमानमें छापेके विरोधियोंका मतलब हो, तो बात दूसरी है। नहीं तो सच्ची और शुद्धता पूर्वक जैनसिद्धान्तोंके प्रचारकी आंतरिक इच्छा रखनेवालोंको तो चाहे जैसे साधन तयार हैं। जी खोलकर उद्योग करनेका विलम्ब है। यह रिझानेकी तथा स्वार्थसाधनकी बात नहीं है। रिझाना तथा स्वार्थसाधना धोकेबाजीके प्रश्न करके भोले भाइयोंको बहकाना आपसरीखे महोपदेशकोंका हीं कार्य हो सकता है।

और जिनवाणीमाताका प्रचार करके जैनधर्मका प्रभाव फैलाना बहुत बडा धर्म कार्य है। यदि इस महान् कार्यके प्रचार करनेमें तन मन धनको लगाया जाय तो परमार्थ सिद्ध होसकता है और इसी उद्देशसे दानवीर सेठ माणिकचंदजी जे. पी. देव प्रकृति स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी वा सेठ हिराचन्दजी नेमचंदजी सेठ नाथारंगजी गांधी आदि बडे २ धर्मात्मा धनाढ्य जिनके लाखों हजारोंका अन्यव्यापार होता है वे यदि प्रेस खुलवाकर भंडारोंमें गलती सडती जिनवाणीमाताका जीर्णोद्धार करें तो उसमें स्वार्थसाधनकी बू. तक नहीं हो सकती है आपने यह कैसें समझ लिया कि छपानेवाले सब केवल स्वार्थ साधनार्थ ही ग्रंथोंका जीर्णोद्धार करते हैं? क्या आप कह सक्ते हैं कि उक्त धर्मात्मा धनाढ्य गण जो जैनग्रंथ छपाते हैं बेचते हैं सो क्या स्वार्थ साधनके लिये छपाते हैं? दूसरे यदि कोई कोई स्वार्थ साधन करना चाहे। तो स्वार्थ भी साधन कर सकते हैं क्योंकि ऐसा कोई भी परमार्थ कार्य नहीं है कि जिसमे स्वार्थसाधन न हो सकता हो जैसें उपदेश करना एक पारमार्थिक कार्य है परंतु स्वार्थसाधन करनेवाले उपदेशक लोग उससे स्वार्थसाधन भी करते हैं।

सातवां प्रश्न—जो नवीन प्रेस बनाकर ग्रन्थ छपावें उनको अन्य कोई छापेवाला छापकर बेच सक्ता है वा नहीं और किसी कायदेसे सरकार उनको रोक सकती है वा नहीं।

उत्तर—ऐसा प्रबंध सरकारी कानूनसे हो सक्ता है जिससे कोई अन्य छापनेवाला वह ग्रंथ छापकर नहिं बेच सकै अगर उसकी रजिष्टरी करा ली जाय तो।

आठवां प्रश्न—वनस्पति कज्जल सुवर्ण जलआदि पवित्र पदार्थोंसे जैनशास्त्र लिखे जाते हैं और ऊपर कहे हुये पदार्थोंसे जैनशास्त्र छपते हैं। इन दोनोंमें कौन शुद्ध पूज्य और कौन अशुद्ध अपूज्य है।

उत्तर—जब आपके लिखे हुये अपवित्र पदार्थोंसे ग्रंथ छपते ही नहीं तो हाथके लिखे और छपे दोनों शुद्ध व पूज्य हैं। बलके विचार करनेसे हाथके लिखे ग्रंथ अधिक अशुद्ध ठहरते हैं क्योंकि हस्तलिखित ग्रंथ प्रायः लाखकी श्याहीसे लिखे जाते हैं सो लाख बडी अशुद्ध चीज है जिनावरोंका प्रायः कलेवर होता है उसका पानी बनाकर रख देते है तथा दावातमें शाही बहुत दिनोंतक रहती है उसमें बेंद्रियादिजीव पडकर शाही प्रायः दावातमें जमजाती है उसमें गर्मपानी डालकर फिर लेखक लोग लिखते है सो वह शाही प्रायः जिनावरोंके मांसका पिंड होती है, देशी कागजोंपर चांवल तथा मैदेका मम्वरा मावा मुशलमानोंद्वारा चढाया जाता है, सिंदूरकी जगह आजकल खूनका बना हुआ विलायतीरंग हुआ करता है इत्यादि अनेकप्रकारकी अशुद्धता हस्तलिखित ग्रंथोंमें भी प्रायः हुआ करती है, रहा स्पर्श दोष सो न तो हस्तलिखित ग्रंथोंमें टल सक्ता है और न छापेके ग्रंथोंमें टल सक्ता है। इसप्रकार लिखनेकी अपेक्षा छापनेकी कियामें विशे शुद्धता है परंतु हकीमजी साहबने इस प्रश्नमें जो शब्दच्छल किया है सो बडी धोकेबाजीका है। आजकल हस्तलिखित ग्रंथ प्रायः उक्त अशुद्ध रीतिसे लिखे जाते हैं, उसमें तो आपने वनस्पति कज्जल सुवर्ण जलका उल्लेख करके शुद्धता बताई और छापेकी कियामें शुद्धता होनेपर अर्थात् मांस चर्बी आदिकके न होनेपर भी झूठा दोषारोपण करके पाठकोंके हृदयमें निश्चायक शब्दोंसे घृणा उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया है। सो ऐसे छलरूप प्रश्न करना कदापि उचित नहीं था।

दूसरे हकीमजी साहबकी यह बडी भारी गलती है कि, इन प्रश्नोंका उत्तर सिद्धांतशास्त्रके अद्वितीय वेत्ता पंडित गोपालदासजीसे भी पूछा है सो इनसे क्यों पूछा गया? इन्होंने तो टाईपके छापेमें जो अशुद्धता देखी वह पहिलेहीसे अपने लेखमें दिखा दी है फिर वही बात उनसे पूछना कि—सरेस अशुद्ध है कि शुद्ध? सो यह हकीमजी साहबकी कैसी अपूर्व समझ है कि जबरदस्ती उनको भी छापेकी पक्षमें खेंचते हैं। जो कि नीतिमार्गका अवलंबन किये हुये मध्यस्थ निष्पक्ष होनेपर भी उनको एक पक्षका अवलंबी समझकर उनसे प्रश्न करते हैं। हकीमजी साहबको याद रखना चाहिये कि अंतमें हम सबको उन्हीके समर्थनका अवलंबन करना होगा।

श्वेताम्बर समाजका अनुकरणीय प्रयत्न।

आजकल प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धार करनेके विषयमें श्वेताम्बरी भाई जिस प्रकार उद्योग कर रहे हैं, उसे देखकर उनकी प्रशंसा किये विना नहीं रहा जाता। इस समय उनके यहां जैनग्रन्थोंके छपानेकी, सुलभ मूल्यपर बेचनेकी, विनामूल्य बांटनेकी तथा प्राचीन भंडारोंकी सूची बनानेकी धूम मच रही है। पढे लिखे धर्मात्मा तथा धनिक लोगोंका चित्त इस ओर खूब खिंच रहा है। श्वेताम्बरी भाई जानते हैं कि, धर्मकी रक्षा तथा उसकी सच्ची उन्नति तब ही होगी, जब हमारे धर्म ग्रन्थोंका बहुलतासे प्रचार होगा। धर्मकी रक्षा करनेवाले, प्रतिष्ठा बढ़ानेवाले और संसारमें उसके तत्त्वोंको प्रगट करनेवाले प्राचीन ग्रन्थ ही हैं। यदि हम उन्हें दीमक तथा चूहोंसे न बचा सके, तथा उनका प्रचार न कर सके, तो फिर **मूले नाशे कुतः शाखा**के अनुसार हमारा धर्म कहां रहैगा?

जैनहितैषीके बहुतसे पाठक जानते होंगे, कि कई वर्ष पहले मुर्शिदाबादके राय धनपतसिंहजी अनुमान लाख डेड लाख रुपये खर्च करके श्वेताम्बर धर्मके आचारांगादि सम्पूर्ण सूत्रोंको छपवाकर प्रकाशित कर चुके हैं, और उनकी हजारों प्रतियां दान कर चुके हैं। इसी तरह विगत वर्षमे अहमदाबादके शेठ मनसुखभाईने पचास हजार रुपये श्वेताम्बर धर्म ग्रन्थोंके उद्धारके लिये दान किये हैं। इस वर्षमे उक्त फंडके द्वारा **सिद्धहेमव्याकरण** तथा न्यायके दो उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं तथा **तर्कसिद्धि** नामका एक बडा भारी ग्रन्थ छप रहा है। इसके शिवाय हालहीमें शेठ देवचन्द लालभाईने इसी पवित्र कार्यके लिये ७० हजार रुपये देकर समाजका अनन्त उपकार करनेका यश संचय किया है। इस फंडसे समस्त प्रकारकी पुस्तकोंका उद्धार किया जावेगा। काम प्रारंभ हो चुका है।

बम्बईमें एक परमश्रुतप्रभावक मंडल नामका फंड भी इसी लिये खोला गया है। जिसमें अनुमान १५ हजार रुपये हैं। इसके द्वारा श्वेतांबरी दिगंबरी दोनों सम्प्रदायके ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं। हमारे सप्तभंगीतरंगिणी, पंचास्तिकाय, ज्ञानार्णवादि ग्रन्थ इसी संस्थाके द्वारा छपके प्रकाशित हुए हैं।

ऊपर जिन संस्थाओंका हम वर्णन कर चुके हैं, उनके सिवाय भावनगर जैनसभा, पालीताणा जैनसभा, मांगरोल जैनसभा, ज्ञानप्रसारकमंडल, जैन ग्रन्थ माला यशोविजय, भीमसी माणिक आदि अनेक संस्थायें ऐसी हैं, जिनके द्वारा ग्रन्थोंके छपानेका काम बहुत जोर शोरसे चलता है। इनके द्वारा प्रतिवर्ष सैकडों ग्रन्थ छप रहे हैं। इनमें अनेक खाते तो ऐसे हैं, जो लागतके भावपर ग्रन्थ बेचते हैं, और अनेक ऐसे हैं, जो व्यवसायके रूपमें बेचते हैं।

आज कल इस समाजके साधुओंका यतियोंका ध्यान भी इस ओर बहुत बढ़ता है। ये लोग भी अपने उपासकोंको इसी विषयमें दान करनेकी प्रेरणा करते हैं। और इस तरहसे प्रतिवर्ष दश वीस ग्रन्थ इनके प्रयत्नसे भी छप जाते हैं, और उत्सवोंके समयमें मुफ्तमें बाँटे जाते हैं।

कुछ शिक्षित लोग अच्छे २ ग्रन्थोंका सम्पादन करते रायल एशियाटिक सुसाइटी कलकत्ताकी सीरीजमें भी छपवा कर प्रकाशित करते हैं। तत्त्वार्थाधिगम भाष्य, उपमितिभवप्रपंचा कथा, योगशास्त्र आदि कई बड़े २ श्वेतांबरी ग्रन्थ इस सीरीजमें निकल चुके हैं। तथा निकल रहे हैं।

उधर श्वेताम्बर जैनकान्फरेंस **सिद्धपुरपट्टण, जैसलमेर** आदिके सरस्वती भंडारोंकी सूची तयार करा रही है. और उन ग्रन्थोंको सुरक्षित रखनेका उपाय कर रही है।

सारांश यह है कि, श्वेताम्बरी भाई अपने प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धारमें तनमन धनसे प्रयत्न कर रहे हैं। इसका फल श्वेताम्बर सम्प्रदायके लिये कैसा होगा सो पाठक अनुमान कर सकते है। विदेशोंमें आज जो जैनधर्मकी चरचा है, वह श्वेताम्बरी ग्रन्थोंके ही आधारसे है, दिगम्बरी ग्रन्थोंको विदेशी लोग बहुत कम जानते हैं। जाने भी कैसे ? हमारे ग्रन्थ प्रकाशित होवें, तब न।

ग्रन्थ उद्धारके विषयमें जब अपने समाजका प्रमाद देखते हैं, तब हमारे हृदयमें बड़ी वेदना होती है। हाय, हमारे यहां कोई भी ऐसी संस्था नहीं है, जो मुफ्तमें तो दूर रहा, लागतके भावमें भी पुस्तकें छपाकर प्रकाशित करै। इने गिने दो तीन आदमी पुस्तकें छपानेवाले हैं, जो अपनी छोटीसी पूंजीसे ज्यों त्यों दशपांच पुस्तकें प्रकाशित करते हैं। परन्तु कुछ महात्मा उनके मार्गके भी कंटक बन रहे हैं। उनका थोड़ासा भी कार्य इनकी आंखोंमें खटकता है।

जो पढे लिखे तथा धनिक लोग अन्य समाजोमें आशाके स्थान होते हैं, हमारे यहां वे ही इस कार्यके संहारक बन रहे हैं, और इस काममें लगे हुए लोगोंको नरक निगोदका रास्ता बतलाते हैं। इन महात्माओंकी समझ है कि, ग्रन्थोंका अधिक प्रचार ही अविनयका कारण है। इसलिये उन्हें आलमारियोंमें ही अलीगढके ताले लगालगाकर बन्द रखना चाहिये।

हमारे समाजमें गुरुमार्ग प्राय: लुप्त हो चुका है, अर्थात् गृहस्थोंको कल्याणका मार्ग दिखलानेवाले दिगम्बर गुरु आजकल दिखलाई नहीं देते हैं। इनके अभावसे हमारे धर्मकी जो अवनति हुई है, उसका वर्णन नहीं हो सकता है। आज हमारी गुरुसम्प्रदाय बनी होती, तो हम कठिनसे कठिन कार्योंको उनके प्रतापसे सहज ही कर सकते। उन महात्माओंके अभावमें इस समय हमको एक मात्र शरण्य हमारे प्राचीन ग्रन्थ ही रह गये हैं। येही हमारे मार्गदर्शक और सम्पूर्ण आशा तथा भरोसेके स्थान हैं। यदि इनका यथेष्ट प्रचार हो जावे, तो गुरुओंके अभावसे जो हानियां होतीं हैं, उनके बहु भागकी पूर्ति हो जावेगी। परन्तु बडे ही दुःखका विषय है कि, कुछ लोगोंकी मूर्खतासे इन ग्रन्थोंका प्रचार भी रोका जाता है। श्रीजी न करें कि, हमारा समाज इन महात्माओंके पीछे चलें, नहीं तो जो कुछ रहा सहा है, वह भी समाप्त हो जावेगा। मार्गदर्शकोंके अभावमें हमारे धर्मका बहुत जल्दी लोप हो जावेगा।

यदि हमें इस उन्नतिके समयमें विधर्मियोंके समक्षमें अपनें धर्मको जीता रखना है, यदि जैनसमाजके प्रत्येक बालकको धर्मका जानकार बनाना है, और यदि दूसरे धर्मवालोंपर अपने धर्मका महत्व प्रगट करना है, तो हमको सब काम छोड़कर अपने प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धार तथा प्रचारके लिये कमर कसके तयार हो जाना चाहिये। श्वेताम्बरी भाइयोंके समान हमें भी ऐसी अनेक संस्थायें स्थापित करना चाहिये, जिनके द्वारा बडे २ ग्रन्थ लागतके मूल्यमें अमूल्यमें अथवा मुफ्तमें बांटे जा सकें। ऐसा उपदेश करना चाहिये जिससे प्रतिवर्ष रथ प्रतिष्ठा करनेवाले, व्रतोंका उद्यापन करनेवाले, दान करनेवाले हजारों ग्रन्थ मुफ्तमें बांटकर उन्हें घर २ विराजमान कर दें, ऐसे विद्वान तयार करना चाहिये, जो उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका देश भाषामें अनुवाद करके उनका सुलभतासे प्रचार करें, और ऐसे व्यवसायी भी तयार करना चाहिये, जो इस कार्यमें

अपनीं अच्छी पूंजी लगाकर अपना समाजका और संसारका कल्याण करें। जैनधर्मकी रक्षाका तथा उन्नतिका सबसे अच्छा यही मार्ग है।

श्वेताम्बरी भाइयोंका अनुकरण करके हमारे यहांके धनिक महाशयोंको भी इस समय अपने द्रव्यको ऐसे ही सत्कार्यमें लगानेके लिये तयार होना चाहिये। इस समय जैनग्रन्थोंकी इतनी जरूरत है कि, यदि दो चार लाख रुपये भी इस काममें लगाये जावें, तो थोड़े हैं, लोगोंको छपे ग्रन्थोंकी इतनी चाह है कि, उसकी पूर्ति लाखों रुपयोंकी पूंजी लगाकर ग्रन्थ छपानेके कार्यालय खोले जावें, तो भी नहीं होगी। इधर कई सौ वर्षसे जैनियोंमें जो घोर अज्ञान अंधकार फैल रहा है, उसको दूर करनेके लिये हजारों ग्रन्थ रत्नोंके प्रकाशकी आवश्यकता है। खुर्जा अथवा अलीगढमें १०-५ लेखकोंको बिठाकर उसका निवारण नहीं होगा। इसके सिवाय छापेका विरोध करनेवाले धनवानोंके समान सर्व साधारण भाइयोंकी सामर्थ्य नहीं रही है, जो एक २ ग्रन्थके पीछें सौ २ रुपये खर्च करके अपने बालकोंको पढावेंगे। क्योंकि देश दिनपरादिन निर्धन हो रहा है इसलिये धनहीन धर्मात्मा भाइयोंको विद्वान् शास्त्रज्ञ बनानेके लिये इससे अच्छा कोई मार्ग नहीं है कि, उन्हें सस्ते दामोंपर तथा मुफ्तमें जैनग्रन्थ पढनेका सुभीता कर दिया जावे। जो भाई इस पुण्यकृत्यमें रुपया लगावेंगे, वे जैनधर्मकी सच्ची प्रभावना और सच्ची रक्षा करेंगे। इत्यलं विद्वद्वरेषु।

सरस्वती सेवक।

अंकोंका वार्षिक हिसाब।

ग्राहक महाशय! जैनहितैषीका इस अंकके साथ १ वर्ष पूरा होता है। जिस समय ३७ वें अंकसे यह पत्र प्रारंभ हुआ था तब हमारा विचार ३२ पृष्ठ अखबार तथा उपन्यासके और ४ पृष्ठ टाईटलके इस प्रकार ३६ पृष्ठका प्रत्येक अंक निकालनेका था सोई ३९ वें अंकमें हमने प्रकाशित भी कर दिया था कि १२ महीनोंके भीतर १२ अंकोंके ३२ पृष्ठके हिसाबसे ३८४ पृष्ठ बराबर हम ग्राहक महाशयोंकी सेवामें पहुंचा देंगे सो अब आप १२ अंकोंके पृष्ठोंका और मनोरमा उपन्यासके ११८ पृष्ठोंका हिसाब लगा लीजिये। अर्थात् १२ अंकोंके कुलफारम १९ और पृष्ठ ३०४ होते हैं। और मनोरमाके कुलपृष्ठ ११८ हैं

दोनोंको मिलानेसे कुलपृष्ठ ४२२ होतें हैं। हमारी प्रतिज्ञा ३८४ पृष्ठ देनेकी थी उसकी जगह ४२२ पृष्ठ दिये गये। यदि सब अंकोंके के टाईटलोंके ४० पृष्ठ मिलाये जांय तो ४६२ होते हैं। जिसका मूल्य १।) रुपया आपसे लिया गया है। और।) आने डांक वगेरेहका खर्च लेकर पुष्टकागज सुंदर छपाईके जिल्दसहित वृंदाबनविलास और अर्हत्पासाकेवली ये दो ग्रंथ विनामूल्य दिये गये हैं जिनकी छपाई वगेरहमें रुपये हमारे खर्च हो गये हैं। अब विचार कीजिये कि जैनहितैषीमें ग्राहक बननेसे आपको कितना लाभ हुआ? ऐसा लाभ अन्य पत्रोंके ग्राहक बनानेसे कदापि नहिं हो सकता है। हां इसका हमें खेद है कि अनेक भाई उपहारके ग्रंथ देखदेखकर पीछेंसे अर्थात् ४४-४५ वें अंकसे ४७ वे अंक तक ग्राहक वन २ कें उक्त ग्रंथोंकी लूट कियी उनको हम जैनहितैषीके पिछले अंक नहिं रहनेके कारण नहिं भेज सके। इसीकारणही अबके उपहारका ग्रंथ दीपावलीसे पहिले तैयार करा लिया गया है और अबकी बार कुल ५०० ही ग्राहकोंको यह ग्रंथ भेजैंगे जो महाशय पहिले और दूसरे अंक तक ग्राहक बन जांयगे उनको ही यह उपहार मिल सकैगा पीछेंवाले ग्राहकोंको यह ग्रंथ कदापि नहिं मिलैगा। वलके उनको पिछले अंक भी नहिं मिलैंगे क्यों कि हम पहिले और दूसरे अंककी तो एक एक हजार कापी छपाकर सबको सब वतौर नमूनेके १००० ग्राहकोंकेपास भेज देंगे। उसके पश्चात् उतनी ही प्रतियें छपाई जांयगी जितने कि पक्के ग्राहक हो जांयगे। इसकारण तीसरे अंकसे पीछें ग्राहक बननेवालोंको न तो प्रवचनसार ग्रंथ मिलैगा और न पिछले अंकही मिलैंगे।

सम्पादक।

पंडित श्रीलालजी आदिसज्जनोंसे प्रश्न।

विद्वज्जन महाशयो! मैंने जैनहितैषी अंक ४५ पृष्ठ २८—२९—में अपने सन्देह निवार्णार्थ पांच प्रश्न उक्त महाशयोंसे किये थ जिसको आज तीन माह होगये किसी महाशयने भी उत्तर देकर कृतार्थ नहिं किया। कदाचित संभव हो सकता है कि पंडित श्रीलालजी आदि विद्वानोंने मेरे प्रश्नोंका उत्तर लिखकर **जैनपताकामें** भेजे हों और जैनपताकामें छापनेका अवसर नहिं मिला होगा तो मै उत्तर भेजनेवाले महाशयोंसे तथा जैनपताकाके संपादक महाशयसे

प्रार्थना करता हूं कि मेरे प्रश्नोंका उत्तर छपे नहीं तो मुझे वैसे ही निचे लिखे पतेपर भेज दीजिये जो मैं अपना संदेह दूर करलूं ! अगर अभी तक किसी महाशयने उत्तर न लिखे हों तो मैं फिरसे प्रार्थना करता हूं कि इन प्रश्नोंका उत्तर जरूर निर्णयरूप दे कर कृतार्थ करेंगे ।

उत्तराभीलाषी

बुद्धूलालजैन—अध्यापक—

जैनपाठशाला दाहोद

(जि० पंचमहाल्स)

जरूरी सूचना ।

१ हमारे पास जैनहितैषीके मूल्यके बाबत, दो तीन मनी आर्डर इस किस्मके जमा हैं जिनके भेजने वालोंका नाम ग्राम पता कुछ भी कूपनसे मालूम नहीं हुआ है उपहार भी उन्हें नहीं भेजा गया है, सो जिन भाईयोंका हो उन्हें लिखा पढी करके निर्णय कर लेना चाहिये ।

२ सनातन जैनग्रन्थमालाकी दो प्रतियां भी इसी तरह किसी भाईने वापिस भेजी हैं, परंतु साथमें चिट्ठी वगैरह कुछ नहीं आई है । जिन्होंने भेजी हों, सूचित करें ।

मैनेजर—**जैनहितैषी कार्यालय.**

पोष्ट—गिरगांव—बम्बई

जिनवाणी माताके समाचार ।

प्रद्युम्नचरित्र वचनिका—यह ग्रंथ मूलकर्त्ता सोमकीर्ति आचार्यके प्रद्युम्न चरित्रका मनोहर सरल हिंदीभाषामें श्रीयुत बाबू बुधमलजी पाटणीसे अनुवाद कराकर रत्नकरंडश्रावकाचार बडेकी साइज और टाइपसें पुष्ट कागजोंपर निर्णयसागरमें छपनेको दे दिया गया है होलीतक यह ग्रंथ छपकर तैयार हो जायगा ।

आत्मानुशासन मराठी—इस ग्रंथका शोलापुरके श्रीमान् सेठ जीवराज गौतमचंद दोशीने दशलक्षणके दशही दिनोंमें हिंदीभाषासे मराठीमें अनुवाद कर डाला है इस साहसके लिये धन्यवाद है परन्तु इसप्रकार शीघ्रतासे इस महान्

ग्रंथका अनुवाद करनेमें बहुत कुछ अशुद्ध अनुवाद हुआ होगा. दूसरे जिस भाषानुवाद परसे अनुवाद किया गया है वह भी सर्वतया शुद्ध अनुवाद नहीं है लाहोरके छपे ग्रंथमें अनेक जगह प्रमाद हुआ है हस्त लिखितमें भी पंक्तिकी पंक्ति मूर्ख लेखकोंके द्वारा छूट जाती है अतः सेठ साहबसे हमारा अनुरोध है कि—उस मराठी अनुवादको मूल पाठसे मिलाकर शुद्ध कर लें तब छपावें अन्यथा बहुत अशुद्ध रह जायगा ।

नीचें लिखे ग्रंथोंकी फरमायस न भेजें।

ग्राहक महाशयो ! तत्त्वार्थसूत्र बालबोधिनी टीका सहित, भाषापूजासंग्रह, जैनबालबोधक प्रथमभाग, जैनपदसंग्रह प्रथमभाग, ब्रह्मविलास, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, इतने ग्रंथ हमारे पास अब नहीं रहे सब बिक गये। मोक्षशास्त्रादि दूसरी बार छपने सुरू हुये हैं सो तैयार होनेपर सबको सूचना दी जायगी तब तक कोई भी भाई इन ग्रंथोंकी फरमायस न भेजा करें ।

दूसरे **पुण्यास्रव, श्रावकवनितावोधिनी, चौर्वीसठाणचर्चा**, और **बालबोधव्याकरण** दोनोभाग ये चार ग्रंथ भी हमारे यहांसे नहिं मिलैंगे सो इनकी भी कोई भाई फरमायस न भेजा करें ।

विविध समाचार।

सुना है कि, रानीवाले पंडित मेवारामजी वगैरह एक लाख रुपये लगाकर एक हस्तलिखित ग्रन्थोंका कारखाना खोलना चाहते हैं, जिसके द्वारा हाथके लिखे ग्रन्थोंकी मांग पूरी की जावेगी। बहुत खुशीकी बात है । यदि यह बात सत्य है तो संभव है कि इस वर्षकी **जैनपताका** भी हातसे लिखी हुई प्रकाशित हुआ करेगी ।

नागोरके सरस्वती भंडारमें जो कि, वहांके भट्टरकजीके अधिकारमें है, सात आठ हजार जैनग्रन्थ मौजूद हैं । अब इस गादीपर यदि कोई संस्कृतका विद्वान् बैठे, तो इन ग्रन्थोंकी रक्षा और वृद्धिका उपाय अच्छा हो जावे ।

कोल्हापुरके प्रोफेसर लट्ठे एम्. ए. जो की अंग्रेजी जैनगजटके सम्पादक हैं, अस्पर्श्य शूद्रोंको ब्राह्मणादि बनानेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं । क्या खूब ।

सरकारने दो स्कालर्शिप संस्कृत पढानेके लिये मुकर्रर किये हैं, जिनकी सहायतासे दो विद्यार्थी यूरोपमें जाकर अंग्रेजी ढंगसे संस्कृत पढेंगे। अभी क्या हुआ है, कुछ दिनोंमें धर्मशास्त्र पढानेके लिये भी अंग्रेज हमारे गुरु बनेंगे।

बम्बईमें विना जोडकी फिल्ट कैप, इहा लिपन वगैरह स्वदेशी टोपियोंका एक कारखाना खुला है, जिसमें हर महीने पन्द्रह हजार टोपियां तयार होती है। टोपियां विलायती टोपियोंसे किसी बातमें कम नहीं है।

आसोज सुदी १४ को बम्बईके दि० जैन मन्दिरमें जो सभा हुई थी, उसमे ष खूबी यह थी कि, सभापति और व्याख्यानदाता सेठ हुकुमचंदजी इन्दौर वासी दोनों ही उपस्थित नहीं हुए थे। सभा ऐसी ही होना चाहिये।

थोडे दिन पहले हैद्राबादमें महाजलप्रलय हो गया था। जिसमें अनुमान सवा- ाख मनुष्योंका संहार हो गया, और ४० करोड रुपयेके करीब हानि हुई! जाने इस देशका क्या होन हार है, सुनते हैं, वहांके जैनमंदिर और जैनि- ोंकी सब प्रकार कुशलता रही है!

खेद है कि, पंडित लालारामजीके पिता लाला **तोतारामजी**का गत महिनेमें स्वर्गवास हो गया। आप बडे ही सज्जन और धर्मात्मा थे बडे पुत्रके सिवाय सब त्रोंको संस्कृत और धर्म विद्या पढाकर समाजके कल्याणका मार्ग दिखाया था।

तलेगांव (पूना) में पैसाफंडकी ओरसे एक काचका कारखाना खुला है। त ४ अक्टूबरको उक्त कारखानेमें बनी हुई चीजोंकी प्रदर्शनी मुंबईमे खोली ई थी।

गत आठ महीनोंमे विलायतके निर्यातव्यापारमें ७ करोड पौंडकी कमी पडी। इससे वहांके व्यापारियोंमें बडी घडडाहट फैली है।

यूरोपमें ४ लाख मनुष्य ऐसेसे है, जो मांसाहारी नहीं है। उन्हें विजेटेरियन हते हैं।

Reg. No. B. 719.

अब ४) रु. में किसीको भी नहिं भेजा जायगा।

रत्नकरंडश्रावकाचारकी वचनिका बडी।

यह महान ग्रन्थ दूसरी बार बम्बईके जगत्प्रसिद्ध निर्णयसागर छापखानेमें चिकने और पुष्ट कागजपर हाल ही छपकर तयार हुआ है। दो तीन मूल प्रतियोंपरसे इसका संशोधन किया गया है। पं० सदासुखजीने जिस भाषामें लिखा था, वैसा का वैसा है हमने अपनी तरफसे कुछ भी फेरफार नहीं करके छपाया है।

यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि, यह ग्रन्थ कैसा उपदेशजनक और धर्मके सम्मुख करनेवाला है। क्योंकि सारे देशमें इसका प्रचार है। सब ही लोग इससे परिचित हैं। प्रत्येक बातको अत्यन्त सरल भाषामें इस तरहसे लिखा है, और उसकी पुनरावृत्ति इतनी अधिक की है कि, बांचनेवाले और सुननेवालोंपर उसका असर हुए बिना नहीं रहता। वैराग्यका तो यह भंडार ही है। बालक वृद्ध लडकियां स्त्रियां सबही इसको पढ सकतीं है। प्रत्येक मन्दिरमें तथा प्रत्येक लिखे पढे कुटुम्बमें इसकी एक २ प्रति रहनी चाहिये। न्योछावर गत्तेवेष्टन सहित ५) रक्खी है परंतु ५ प्रति लेनेवालेलोको १ प्रति विनान्योछावरके भेजी जायगी। डांकखर्च ||) अलग। मन्दिरोंमें भेट करनेके लिये तथा शास्त्रदान करनेके लिये जो इकट्ठी १०—२० प्रतियां लेंगे, उन्हें और भी किफायतमें भेजा जायगा.

मिलनेका पता—**मैनेजर जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालय**

पोष्ट—गिरगांव (बंबई)